श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत-

बिनय पत्रिका।

शब्दार्थबोधनी टीकासहित।

टीकाकार—

साहित्याचार्य पं० रामेश्वरदत्त।

जिसको

बाबू हरिनारायण बर्म्मा

बुकसेलर, कचौड़ीगली बनारस सिटी ने

बंबई टाईप में

छपवाकर प्रकाशित किया।

महेशप्रसाद द्वारा-सत्यनाम प्रेस, मैदागिन

बनारस सिटी में मुद्रित।

प्रथमबार (१५००) १९२७ (मूल्य १॥।)
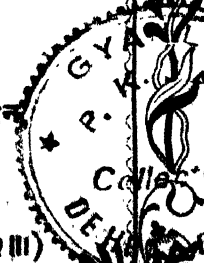
समर्पण।

चिरञ्जीव मित्र! तुम्हारेही उत्साह और प्रेम का फल है जो—

बिनय पत्रिका

जैसे—

यह अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की टीका

पं० रामेश्वर भट्ट आगरा निवासी

शिव प्रकाश लाल डुमरांव निवासी

बैजनाथजी

वियोगी हरि

श्रीमान् महाराजा श्री १०८ रीवाँ नरेश

इत्यादि महानुभावों के रहते भी "सरल हिन्दी" टीका की रचना इस कारण की जिससे सुलभ मूल्य में लोग पासकें। तुम्हारे स्नेह का मीठा फल तुम्हीं को सादर समर्पित है।

विनीत—

रामेश्वर दत्त

विनय पत्रिका सटीक

महाकवि तुलसीदास ।

जंगम तुलसी-तरु लसै, आनंद कानन खेत ।
जाकी कविता-मंजरी राम भँवर रस लेत ॥

प्रकाशक—

बाबू हरिनारायण वर्म्मा बुकसेलर,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

विनयपत्रिका की विषयानुक्रमणिका।

इति।

श्रीगणेशाय नमः ॥

विनयपत्रिका ॥

भाषाटीका सहित ।

राग बिलावल ।

गाइये गणपति जगवन्दन । शंकरसुवन भवानी के नन्दन ॥ सिद्धिसदन गजवदन विनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सबलायक ॥ मोदकप्रिय मुदमंगलदाता । विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ॥ मांगत तुलसिदास करजोरे । बसहिं राम सिय मानस मोरे ॥ १ ॥

कार्यकी सिद्धि तभी होसकती है जब किसी समर्थसे प्रार्थना की जावे । कार्यकी सिद्धि करनेवाले दयासे पूर्ण सब प्रकारसे श्रेष्ठ गणेशजी हैं जो अनेक प्रकार के विघ्नोंको रोकने वाले हैं और बुद्धिमान् विद्वान और सतोगुणी हैं । तथा दानी हैं इसीलिये तुलसीदास जी इन गुणों से युक्त शिवपार्वती को आनन्द देनेवाले जगत्पूज्य श्रीगणेशजी से अपने कार्यसिद्धि के लिये वरदान मांगते हैं ॥ १ ॥

दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥ हिमतमकरि केहरि करमाली । दहन दोष दुख दुरित रुजाली ॥ कोक कोकनद लोक प्रकाशी । तेज प्रताप रूप रस राशी ॥ सारथि पंगु दिव्य रथगामी । हरि शंकरविधिमूरति स्वामी ॥ वेद पुराण प्रकट यश जागै । तुलसी रामभक्ति वर मांगै ॥ २ ॥

शुभ कर्मका अधिकार दिनमेंहीं होता है इसलिये तुलसीदास

जी दिन के करनेवाले सूर्यनारायण से प्रार्थना करते हैं। यह ब्रह्मा विष्णु शिवरूप हैं। शिवस्वरूप से शीत अँधेरा दुःख दोष आदि का संहार करनेवाले हैं इससे जड़ता अज्ञान त्रिविध ताप दुःख कलुषता आदि को संहार कीजिये। ब्रह्मा के स्वरूप से आप जगत् को उत्पन्न करते और कमलों को फुलाते तथा चक्रवाक से संयोग कराते हैं इससे जगत् के स्वामी श्रीरामजीसे मेरा संयोग कराके कमल के समान हमारे हृदय रूपी कमलको प्रसन्न कीजिये विष्णु रूप से आप अपने तेज से संसार की स्थिति करते हैं और रसकी वर्षा से स्थावर जंगम का पालन करते हैं इससे श्रीराम चन्द्रजीके स्वरूपका दर्शन देकर भक्ति रूपी रससे मेरा पालन कीजिये आप दीनदयालु हैं पंगुले अपने सारथी पर दया करने वाले हैं इससे मुझ कर्मपंगु पर दया करिये आपका यश वेद में प्रगट है और उस तेज को सभी लोग भजते हैं इससे मुझको रामभक्ति का बरदान दीजिये ॥२॥

राग धनाश्री।

को जाचिये शम्भु तजि आन। दीनदयालु भक्त आरत-हर सब प्रकार समरथ भगवान ॥ कालकूटज्वर जरत सुरासुर निजपन लागि कियो विष पान। दारुण दनुज जगतदुख-दायक मारेउ त्रिपुर एकही बान ॥ जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत सन्त श्रुति सकल पुरान। सो गति मरनकाल अपने पुर देत सदाशिव सबहिं समान ॥ सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवतीपति परमसुजान। देहु कामरिपु रामचरण रति तुलसिदास कहं कृपानिधान ॥ ३ ॥

बिना शिवजी की कृपा के श्रीरामजीकी भक्ति नहीं होती इससे तुलसीदासजीने इनका विनय विशेषता से किया है कि शिवजी को छोड़कर दूसरे से किससे मांगें। जो दीन पर दया करने

वाले भक्तों के दुःख को नाश करनेवाले छओं ऐश्वर्य से युक्त सब प्रकार से समरथ हैं। विष रूपी ज्वर से जलते हुए देवता और दैत्य तथा अपनी प्रतिज्ञा में लगे उन्हें देखकर उस विष को पान कर गये। संसार को दुःख देनेवाले कठिन दैत्य त्रिपुरासुर को एकही बाण से भस्म किये। जिस गति को वेदशास्त्र ऋषि मुनि दुर्लभ कहते हैं वही गति मरते समय काशी में आप शिव जी सबको बराबर देते हैं। सेवा भक्ति से सुलभ कल्पवृक्ष के समान उदार पार्वती के स्वामी आप परम विज्ञानी हैं। हे कामदेव के शत्रु दया के भवन तुलसीदास को श्रीरामचन्द्र जीके चरणों में प्रेम दीजिये ॥ ३ ॥

दानी कहुं शंकर सम नाहीं । दीनदयालु दिबोई भावै याचक सदा सुहाहीं ॥ मारिकै मार थप्यौ जग में जाकी प्रथमरेख भटमाहीं । ता ठाकुर को रीझि निवाजिवो कह्यो क्यों परत मो पाहीं ॥ योग कोटि करि जो गति हरिसों मुनि मांगत सकुचाहीं । वेदविदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं ॥ ईश उदार उमापति परिहरि अनत जे याचन जाहीं । तुलसिदास ते मूढ़ मांगने कबहुं न पेट अघाहीं ॥ ४ ॥

शिव के समान कहीं कोई दानी नहीं है। दीन पर दया करने वाले को देना और मांगनेवाले अच्छे लगते हैं। संसार के वीरों में जिसका पहले नाम है ऐसे कामदेव को जलाकर फिरभी जिला दिये। उस ईश्वर को प्रसन्न हो दया करना मुझसे कैसे कहा जावे। जिस पद को मुनीश्वर करोड़ों वर्ष तपस्या करके विष्णु से मांगने में संकोच करते हैं यह वेदों में प्रकट है उसी पद पर काशी में रहने वाले कीड़े पतंगे पहुंचते हैं। ऐसे दानी शिवजी को छोड़कर जो

दूसरी जगह मांगने जाते हैं उन्हें तुलसीदास जी मूढ़ कहते हैं उनका पेट कभी नहीं भरता ॥ ४ ॥

बावरो रावरो नाह भवानी । दानि बड़ो दिन देत दये-बिनु वेद बड़ाई भानी ॥ निज घर की बर बात विलोकहु हौ तुम परम सयानी ॥ शिवकी दई सम्पदा देखत श्रीशारदा सिहानी ॥ जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निशानी । तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकवानी ॥ दुखी दीनता दुखियन के दुख याचकता अकुलानी । यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी ॥ प्रेमप्रशंसा विनय व्यंग्य युत सुनि विधि की वर बानी । तुलसी मुदित महेश मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी ॥५॥

हे पार्वतीजी ! आपके पति बड़े दानी व बावले हैं । वेद की बड़ाई को नीचा करके विना दियेको राज देते हैं । तुमतो बड़ी चतुर हो अपने घर की बड़ी बात को देखो । जोकि शिवजीकी दी हुई सम्पत्ति को देखकर लक्ष्मी और सरस्वती जी सकुचाती हैं । जिनके ललाट में लिखे विधाता के अक्षरों से सुखका चिन्ह भी नहीं ऐसे उन दरिद्रियों को इन्द्र के समान बना देते हैं । शिवजी की ऐसी दया से दुखियों के दुःख और गरीबी स्वयं दुःखी हो गये हैं और याचकता [भीख] व्याकुल हो गई है और मेरे नाकोंदम आ गया है । यह अधिकार किसी दूसरे को दीजिये मैं भीखही भली जानता हूं । ब्रह्माजी की यह स्तुति सुनकर शिवजी मनहींमें प्रसन्न हुए किन्तु पार्वती जी मुसकाने लगीं ॥ ५ ॥

राग रामकली ।

याचिये गिरिजापति कासो । जासु भवन अणिमादिक दासी ॥ अवढर दानि द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन

करजोरे ॥ सुख सम्पति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ शंकर सेवकाई ॥ गये शरण आरतके लीन्हें। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें ॥ तुलसिदास याचक यश गावै। विमल भक्ति रघुपति की पावै ॥ ६ ॥

जिनका घर काशी है ऐसे शिवजी से काशी मांगिये। जिनके यहां आठों सिद्धियां दासी रहती हैं। और वह सर्वस्व के दाता हैं। थोड़ेही में पसीजते हैं, दुखियोंको तो हाथ जोड़े देखही नहीं सकते हैं शिवजी आपकी सेवामें सुख संपत्ति बुद्धि मुक्ति आदि सभी सरल होती है। शरण जाने से भक्त को आरत देख के पल भर में निहाल करते हो। भिक्षुक आपके यश को गाते हैं। तुलसीदासजी भी श्रीरघुनाथजी की निर्मल भक्ति पावें ॥ ६ ॥

कस न दीनपर द्रवहु उमावर। दारुण विपति हरण करुणाकर ॥ वेद पुराण कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयहु कृपणतर ॥ कवनि भक्ति कीन्हीं गुणनिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेउ शिव पद निज ॥ जो गति अगम महामुनि गावहि। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥ देहु कामरिपु रामचरण रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेदमति ॥ ७ ॥

कठिन दुःखों के नाश करनेवाले दयालु शिवजी गरीब पर क्यों नहीं दया करते। हमारी बेर क्यों महासूम हुए हो। वेद पुराण से प्रसिद्ध है कि शिवजी दानी है। गुणनिधि ब्राह्मणने कौन भक्ति की थी कि जिसे प्रसन्न होकर अपना स्थान दिये। महर्षियों ने जो गति दुर्लभ कही है वह कीड़े पतंगे काशी में पाते हैं हेकाम को भस्म करनेवाले प्रभु! श्रीतुलसीदास को श्रीरामजीके चरण में अनुराग दो और संशय को हरो ॥ ७ ॥

देव बड़े दाता बड़े शङ्कर बड़े भोरे। किये दूरि दुख

सबनके जिन जिन कर जोरे ॥ सेवा सुमिरन पूजिबो पात अक्षत थोरे। दियो जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ घोरे। गाँव बसत वामदेव मैं कबहूं न निहोरे। अधिभौतिक बाधा भई ते किङ्कर तोरे ॥ बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे। तुलसी दलि रूंधो चहैं शठ शाख सहोरे ॥ ८ ॥

महादेवजी महादानी महासीधे हैं जिस जिसने हाथ जोड़े सबों के दुःख को दूर किये। थोड़े चावल बेलपत्र से पूजा करने से संसार में जहाँ तक हाथी घोड़े रथ आदि सुख सामग्री हैं सो सभी दिये। हे शिव? मैं काशी में रहता हूँ लेकिन कभी निहोरा न किया। दुष्ट और कठोर कर्म इच्छा द्वेष आदि क्लेश देते हैं, जो कि आपके दास हैं। उन्हें जल्दी बुलाकर डांट दीजिये वे तुलसी को उखाड़ कर सेंहुडे की डाली को लगाना चाहते हैं ॥ ८ ॥

शिव शिव होइ प्रसन्न करु दाया। करुणामय उदार कीरति बलि जाउँ हरहु निज माया ॥ जलजनयन गुण अयन मयनरिपु महिमा जान न कोई। बिनु तव कृपा रामपदपंकज सपनेहु भक्ति न होई ॥ ऋषी सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं। तव पदविमुख न पार पाव कोउ कल्प कोटि चलि जाहीं ॥ अहिभूषण दूषणरिपु सेवक देवदेव त्रिपुरारी। मोहिंनिहारदिवाकर शंकर शरणशोक भयहारी ॥ गिरिजामनमानसमराल काशी शमशान निवासी। तुलसिदास हरिचरणकमल वर देहु भक्ति अविनाशी ॥ ९ ॥

हे मंगल के देनेवाले शिवजी! प्रसन्न होकर कृपा करिये। हे दया रूप उत्तम यशवाले! बलिहारी जाऊं। अपनी माया को दूर करिये।

हे कमलनयन। गुणों के भवन काम के शत्रु आपकी महिमा को कोई नहीं जानता। तुम्हारी बिना कृपा स्वप्न में भी श्रीरामजी के चरण कमल में भक्ति नहीं होती। ऋषि सिद्ध मुनि मनुष्य दैत्य देवता दूसरे कोई जीव तुम्हारे चरण को छोड़ करोड़ों कल्प बीत-जानें पर भी संसार का अन्त नहीं पाते। सर्पों से भूषित रामोपा-पासक देवोंके देव त्रिपुरारी मोह को नाश करनेवाले श्रीपार्वतीजीके मन रूपी मानसरोवर के हंस काशी के स्वामी श्मशान पर रहने वाले महादेव जी तुलसीदास ? को रामपद कमल में अटल भक्ति का बरदान दीजिये ॥ ६ ॥

राग धनाश्री।

मोहतमतरणिहर रुद्र शङ्कर शरण हरण मम शोक लोकाभिरामं। बालशशिभालसुविशाल लोचनकमल काम शतकोटिलावण्यधामं ॥ कम्बुकुन्देन्दुकर्पूरविग्रहरुचिर तरुण रविकोटि तनु तेज भ्राजै। भस्म सर्वांग अर्द्धांग शैलात्मजा व्यालनृकपालमाला विराजै ॥ मौलिसंकुल जटामुटकु विद्युच्छटा तटिनिवरवारि हरिचरणपूतं। श्रवणकुण्डल गरल कंठ करुणाकन्द सच्चिदानन्द बन्देवधूतं ॥ शूल शायक पिनाकासिकर शत्रुवनदहन इव धूमध्वज बृषभयानं। व्याघ्र गजचर्मपरिधानविज्ञानघनसिद्धसुरमुनिमनुजसेव्यमानं ॥ तांडवितनृत्यपर डमरु डिमडिम प्रवर अशुभइव भांतिकल्याण राशी। महाकल्पांतब्रह्माण्डमण्डलदवन भवनकैलाश आसीनकाशी ॥ तज्ञसर्वज्ञ यज्ञेश अच्युत विभव विश्व भव-दंश संभव पुरारी। ब्रह्मेंद्रचंद्रार्कवरुणाग्नि वसु मरुत यम अर्च्य भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ॥ अकल निरुपाधि निर्गुण

निरंजन ब्रह्म कर्मपथमेकमज निर्विकारं। अखिलविग्रह उग्ररूप शिव भूपसुर सर्वगतसर्वसर्वोपकारं॥ ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्यसुखसुभग सौभाग्य शिव सानुकूलं। तदपि नरमूढ़ आरूढ़ संसारपथ भ्रमत भव विमुख तव पादमूलं॥ नष्टमति दुष्टअति कष्टरत खेदगत दासतुलसी शम्भु शरण आया। देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे भक्ति भवहरणि गत भेद माया॥ १०॥

अज्ञान रूपी अन्धकार तथा दुःख को नाश करनेवाले सुख को देनेवाले शिवजीकी शरण हूँ। अपने अच्छे मस्तक में छोटे चन्द्रमा को धारणं करनेवाले कमलनयन करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर शरीरवाले तथा शंख कुन्द चन्द्र और कपूर के समान गौर देहवाले करोड़ों सूर्य के समान चमकनेवाले भस्म को लगाये सर्पों का गहना और मुण्ड की माला पहिने हैं। शिश में जटा का मुकुट बांधे विष्णु भगवान के चरण से उत्पन्न पवित्र गंगाजीका जल विजली के समान चमकता है। कानों में कुण्डल पहिने कण्ठ में विष को धारण किये दया के राशि सच्चिदानन्द स्वरूप अवधून [योगेश्वरशिव] जी को नमस्कार है। हाथ में धनुष बाण खड्ग त्रिशूल आदि को धारण किये अग्निके समान शत्रु के बनको जलानेवाले सदा बैल पर सवार रहते हैं। व्याघ्र और हाथीका चमड़ा ओढ़ ब्रह्मज्ञान से भरे सिद्ध मुनि देवता और मनुष्य से सेवित डिंडिम नाच करते अशुभ से दर्शाते हुए भी मङ्गलों की राशि हैं। महाप्रलय में संसार मण्डल को भस्म करते कैलास के रहनेवाले काशी में बैठे हैं। उस ब्रह्म के ज्ञाता सब प्रकार की माया और भेद को जाननेवाले यज्ञों के स्वामी अक्षय ऐश्वर्यवाले आपके अंशसे संसार होता है हे त्रिपुरारि? ब्रह्मा इन्द्र चन्द्र सूर्य वरुण अग्नि वायु यम आपके चरण की पूजा करते हैं। सबकेप्रभू अद्वितीय शुद्ध गुणातीत माया से परे

कर्मों के प्रवर्तक जन्म मरण और विकारों से रहित है। केवल ब्रह्मरूप सब शरीरों का महारूप मंगलमूर्ति देवताओं के रक्षक सब में व्याप्त सर्व स्वरूप सर्वोपकारी शिव आपके सन्मुख से ज्ञान वैराग धन धर्म मोक्ष का सुख और सत् ऐश्वर्य मिलता है। तोभी मूर्ख मनुष्य तुम्हारे चरण को छोड़कर आवागमन में लगे रहते हैं। हे कामदेव के शत्रु शिवजी! अज्ञानी दुःखमें पड़ा हुआ तथा पछिताता हुआ महादुष्ट तुलसीदास आपकी शरण आया है। श्रीरामजी के चरण कमल में माया के भेद से रहित संसार से मुक्त करनेवाली भक्ति मुझे दीजिये॥ १०॥

भीषणाकार भैरव भयंकर भूतप्रेतप्रमथाधिपति विपतिहर्त्ता। मोह मूषकमार्जार संसार भयहरण तारणतरण अभय कर्त्ता॥ अतुलबल विपुलविस्तार विग्रहगौर अमल अति धवल धरणीधराभं। शिरसि संकुलित कलजूटपिंगलजटा पटल शतकोटिविद्युच्छटाभं॥ भ्राज विबुधापगा आप पावन परम मौलि मालेव शोभाविचित्रं। ललितलाल्लाट पर राज रजनीशकलकलाधर नौमि हर धनदमित्रं॥ इन्दु पावक भानु नयन मर्दनमयन ज्ञानगुण अयन विज्ञानरूपं। रवन गिरिजा भवनभूधराधिप सदा श्रवणकुण्डल वदनछवि अनूपं॥ चर्म असि शूल धर डमरु शरचापकर यान वृषभेश करुणानिधानं। जरत सुर असुर नर लोक शोकाकुलं मृदुल चित अजित कृतगरलपानं॥ भस्मतनुभूषनं व्याघ्र चर्माम्बरं उरग नरमौलि उरमालधारी। डाकिनी शाकिनी खेचरं भूचरं यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी॥ काल अतिकाल व्यालादिखग त्रिपुरमर्दन भीम कर्म भारी। सकललोकान्त कल्पान्त शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त गुण नृत्यकारी॥ पाप सन्ताप घनघोर संसृतिदीन

भ्रमत जगयोनि नहि कोपि त्राता। पाहि भैरवरूप रामरूपो रुद्र बंधु गुरु जनक जननो विधाता॥ यस्य गुणगण गणति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारो। शेष सर्वेश आसोन आनन्दवन प्रणत तुलसोदास त्रासहारी॥ ११॥

भयानक स्वरूप भयंकर भैरवजी भूत प्रेत रुद्रगणों के स्वामी और विपत्ति को नाश करनेवाले हैं। मोहरूपी मूसा को बिलाव के समान खानेवाले संसार के भय को हरण करनेवाले तारनेवाले मुक्तरूप अभय करनेवाले हैं। अतुल पराक्रमी लंबे चौड़े गौर शरीर वाले निर्मल अति उजले हिमालयके समान शोभावाले शिर में सैकड़ों करोड़ों बिजली की दमकसी सघन पीली जटा समूह की चोटी बांधे। मांथे में अति पवित्र गंगा के मालाकार जल से सुशोभित हैं। सुन्दर मस्तक में अच्छी कलाधारी चन्द्रमा से विराजमान विचित्र वेष मे सुन्दर कुबेर के मित्र हैं। ऐसे शिवजी को प्रणाम करते हैं। सूर्य अग्नि चन्द्रमा के समान नेत्र वाले कामदेव के शत्रु ज्ञान गुण के धाम ब्रह्मस्वरूप हैं। पार्वती के पति कैलास में निवास करनेवाले कानों मे कुण्डल पहिने मुख की अनुपम शोभा धारण करनेवाले हैं। ढाल तलवार त्रिशूल डमरू बाण धनुष को हाथों में धारण किये नन्दीपर सवार करुणा के निधान हैं। कोमल चित्त-वाले अजेय विषकी ज्वाला मे जलते हुए देवता दैत्य मनुष्यों की रक्षा के लिये उस विषको पीनेवाले हैं। भस्म से भूषित शरीरवाले बाघम्बर ओढ़े सर्प और मनुष्यों के मुण्डमाला को पहिने हैं। डाकिनी शाकिनी आकाशचारी पृथिवीचारी यन्त्र मन्त्र को नाश करनेवाले और बड़े भारी पापों को भी नाश करनेवाले हैं। दीर्घ समयवाले काल के समान कलिकाल स्वरूप सर्प को खाने में गरुड़ के समान त्रिपुरासुर को नाश करनेवाले बड़े भयंकर कर्म करने वाले हैं। सब लोकों के संहार के समय कल्पान्त में शूल की नोक में दिग्गजों को रखकर नांच करनेवाले हैं। पापरूपी सन्ताप को बुझाने के लिये मेघ के समान कठिन सृष्टि से दुःखी संसार की नाना योनियों में

घूमते हुए का कोई रक्षक नहीं है। हे रामरूपी भैरवस्वरूप शिवजी! मेरी रक्षा कीजिये, भाई गुरु पिता माता और दैव तुमही हो। निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती वेद नारद आदि ब्रह्मचारी भी सनकादि शेषजी भी जिसके गुण को गाते हैं। उस काशीवासी सर्वेश्वर के शरण तुलसीदास है इसका दुःख दूर कीजिये ॥ ११ ॥

शंकरं संप्रदं सज्जनानंददं शैलकन्यावरं परमरम्यं। काम मद-मोचनं तामरसलोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं ॥ कम्बु कुदेंदु कर्पूरगौरं शिवं सुन्दरं सच्चिदानन्दकन्दं। सिद्धसनकादि यो-गीन्द्रवृन्दारका विष्णुविधिवंद्य चरणारविन्दं ॥ ब्रह्मकुलबल्लभं सुलभमतिदुर्लभं विकटवेषं विभुं वेदपारं। नौमि करुणाकरं गर-लगंगाधरं निर्मलं निर्गुणं निर्विकारं ॥ लोकनाथं शोकशूल-निर्मूलिनं शूलिनं मोहतमभूरिभानुं। कालकालं कलातीतम-जरंहरं कठिनकलिकालकाननकृशानुं ॥ तज्ञमज्ञान पाथोधिघ-टसंभवं सर्वगं सर्वसौभाग्यमूलं। प्रचुरभवभंजनं प्रणतजनरंजनं दासतुलसीशरण सानुकूलं ॥ १२ ॥

मंगलकर्ता मंगल देनेवाले सज्जनों को सुख देनेवाले पार्वती के पति अति मनोहर हैं। काम मद के नाशक कमल के समान नेत्र-वाले और भक्ति से मिलनेवाले हैं। सुन्दर शरीरवाले शंख कुन्द चन्द्रमा और कर्पूर के समान गौरवर्णवाले सत्य ज्ञान और सुख के मूल हैं। सिद्ध सनकादि योगियों के समूह ब्रह्मा विष्णु आदि से वन्दित चरणकमलवाले वामदेव शिवजी की सेवा करता हूं। ब्राह्मणों के प्रिय सुलभ और महादुर्लभ करालवेषधारी व्यापक और वेद से भी परे हैं। दया के निधि विष और गंगाजी को धारण करनेवाले पापों से रहित और गुणों से परे। विकारों से रहित हैं। संसार के स्वामी दुःख और क्लेशों को नाश करनेवाले शिवजी मोहरूप अन्धकार को नाश करने में सूर्य के समान हैं। काल के भी काल अद्वितीय जरा मरण से रहित कराल कलियुग-

रूपी बनको भस्म करने में अग्नि के समान हैं। ईश्वर को पहिचानने वाले सब में व्याप्त अज्ञानरूपी समुद्रको सुखाने में अगस्त्य के समान सब प्रकार के ऐश्वर्य के निधि हैं। अपार संसार को नाश करनेवाले शरणागत के स्नेही शरण से अनुकूल त्रिशूलधारी शिव को मैं [तुलसीदास] प्रणाम करता हूं ॥ १२ ॥

राग बसन्त ।

सेवहु शिवचरण सरोजरेनु। कल्याण अखिलप्रद कामधेनु ॥ कर्पूरगौर करुणाउदार। संसारसार भुजगेंद्र हार ॥ सुखजन्मभूमि महिमाअपार। निर्गुणगुणनायक निराकार ॥ त्रयनयन मयनमर्दन महेश। अहंकारनिहार उदितदिनेश ॥ वरबालनिशाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक्य शोकहर प्रमथराज ॥ जिन कहँ विधि सुगति न लिखी भाल। तिनको गति काशीपति कृपाल ॥ उपकारी कोऽपर हर समान। नर असुर जरत कृत गरलपान ॥ बहु कल्प उपायन करि अनेक। बिन शम्भुकृपा नहिं भो विवेक ॥ विज्ञानभुवन गिरिसुतारमन। कह तुलसिदास मम त्रास शमन ॥१३॥

कर्पूर के समान गौरवर्ण दयाकी खानि संसार के सार हैं। और सर्पों की माला को पहने हैं। सुख की जन्मभूमि अपार महिमावाले गुणों से रहित और तीनों गुणों के स्वामी रूप से रहित हैं ॥ तीन नयनवाले कामदेव का नाश करनेवाले सब के स्वामी हैं अहंकाररूपी कुहरे को सूर्य के समान हटाने वाले हैं। द्वितीया के श्रेष्ठ चन्द्रमा जिसके ललाट में विराजमान है तीनों लोक के दुःख को हरण करनेवाले प्रमथ आदि रुद्रगणों के स्वामी हैं। शिवजी के चरणरज को सेवन करिये जो सब मंगलों को देने में कामधेनु के समान हैं। जिनके ललाट में विधाता ने मुक्ति नहीं लिखी है उनकी भी कर्म गति को टालनेवाले साक्षात् दयावान काशीपति शिवजी हैं।

शिवजी के समान कौन दूसरा उपकारी है जो देवता और दैत्यों को जलते हुए देखकर महाभयंकर विष को पीलिया। अनेकों युगों तक हजारों उपाय करने पर भी बिना शिवजी की कृपा संसार को ज्ञान नहीं होता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हमारे दुःखों को नाश करनेवाले तथा ब्रह्मज्ञान को देनेवाले पार्वतीजी के पति शिवही हैं ॥ १३ ॥

देखो देखो बन बन्यो आज उमाकन्त। मानो देखन तुहि आई ऋतु बसन्त ॥ मानो तनद्युति चम्पक कुसुममाल। वरवसननील नूतनतमाल ॥ कलकदलि जंघ पदकमललाल सूचक कटिकेहरि गतिमराल ॥ भूपण प्रसून बहु विविध रङ्ग। नूपुर किंकिणि कलरव विहङ्ग ॥ नवल बकुल पल्लव रसाल। श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल ॥ आननसरोज कच मधुप-पुंज। लोचनविशाल नवनीलकंज ॥ पिकवचन चरित वर-बरहि कीर। सित सुमन हास लीला समीर ॥ कह तुलसि-दास सुनु शिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचे पंचबान ॥ करि कृपा हरिय भ्रमफंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखराशि राम ॥ १४ ॥

देखो आज शिवजी ने बनको रूप बनाया है। देखो तुम बनको देखने (पार्वती) मानो बसन्त ऋतु आई है। पार्वती के देह की शोभा चम्पाफूल के शशि के समान है उत्तम नील वस्त्र मानों नये तमाल के वृक्ष हैं। उन की जंघा सुन्दर केला के खंभ के समान है। चरण लाल कमल है। कमर सिंह की कमर के समान है। तरह तरह के फूल गहने के समान है। पक्षियों के सुन्दर शब्द करधनी के समान हैं। हाथ मौलसिरी वा आमके पत्ते हैं। स्तन नारियल का फल है। बेली की जाल चोली के समान है। मुख कमल के सदृश केश भौंरों के समान नयन नीलकमल के पत्ते

हैं। कोयल का बोलना (पार्वतीजी का) बोलना उत्तम चरित्र मोर और तोता हैं। खिले हुए सफेद फूल हँसना उनकी चंचलता वायु है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे ज्ञानस्वरूपशिव सुनिये! हृदय में रहनेवाला कामदेव अपना प्रपंच रचता है। कृपाकरके झूठे काम के बन्धन से छुड़ाइये जिसमें सुख की राशि राम का हृदय में वास सदा रहे ॥ १४ ॥

राग मारू।

दुसहदोषदुखदलनि करु देवि दाया। विश्वमूलासि जन सानुकूलासि शरशूलधारिणि महामूल माया ॥ तड़ित गर्भांगसर्वांगसुन्दरलसत दिव्यपटभव्यभूषण विराजै। बाल मृगमंजुखंजनविलोचनि चन्द्रवदनि लखि कोटि रति मार लाजै ॥ रूपसुखशीलसीमासि भीमासि रामासि वामासि वर-बुद्धि बानी। छमुखहेरम्बअम्बासि जगदम्बिके शम्भुजायासि जय जय भवानी ॥ चंडभुजदंडखंडनि विहंडनिमुंड महिषमद-भंगकर अंगतोरे। शुम्भनिःशुंभकुंभीश रणकेशरिणि क्रोधवा-रिधिवैरिवृन्द बोरे ॥ निगम आगम अगम गुर्वि तव गुण कथन उर्विधर कहत जेहि सहसजीहा। देहि मां मोहि प्रण प्रेम निज नेम यह राम घनश्याम तुलसोपपीहा ॥ १५ ॥

हे देवि! दया करो। हे दुःसह दुःख दोष को हटानेवाली देवी! दया करो। संसार तुम से उत्पन्न है सदा भक्तों के अनुकूल रहती हो बाण और त्रिशूल को धारण करनेवाली महामाया की मूल हो। बिजली के भीतरी अंग के समान सब अंग सुन्दर हैं चमकते वस्त्र और आभूषण से शोभित हैं।

हरिण शावक के समान चंचल खड़रैच के समान श्यामनयन और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख जिसे देख करोड़ों रति और काम लजाते हैं। रूप सुख और शील की सीमा हो तौ भी दुष्टों

को भय देनेवाली हो सीता हो पार्वती हो और उत्तम बुद्धिवाली सरस्वती हो। स्वामिकार्तिक और गणेश की माता हो संसार की माता हौ। शिव की प्रिया हौ हे भवानी जय हो जय हो। चण्ड के दण्ड रूपी भुजाओं को तोड़नेवाली मुण्ड को नाश करनेवाली महिषासुर के गर्व को तोड़ना तुम्हारा अंग है। शुम्भ निशुम्भ रूप गजेन्द्र को युद्ध में भक्षण करने के लिये सिंह हो और अपने क्रोध रूपी समुद्र में शत्रुओं की सेना को डुबाने वाली हो। वेद पुराण और हजार जीभ रखने वाले शेषजी को भी तुम्हारा गुण गाना अथाह है अर्थात् वे तुम्हारे गुणों का पार नहीं पा सकते। हे माता! मुझे यह नेम और प्रेम से प्रण हो कि अपने रामरूप काले मेघ में तुलसीदास पपीहा के समान हो जावे ॥१५॥

राग सारंग।

जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि भक्तिमुक्ति दायिनि भयहरणि कालिका। मङ्गल मुदसिद्धिसदनि पर्वशर्वरीशवदनि तापतिमिरतरुणतरणिकिरणमालिका ॥ वर्म चर्म करि कृपाण शूल सेल धनुष बाण धरणि दलनि दानवदल रणकरालिका। पूतना पिशाच प्रेत डाकिनिशाकिनि समेत भूत ग्रह वेताल खग मृगालिजालिका ॥ जय महेशभामिनी अनेकरूप नामिनी समस्तलोकस्वामिनी हिमशैलबालिका। रघुपतिपदपरमप्रेम तुलसी चह अचल नेम देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणतपालिका ॥ १६ ॥

हे कालिका देवि! जय जय देवता दैत्य और मनुष्यों से भरे संसार की माता हो और संसार के भय को नाश करनेवाली हो। भक्ति मुक्ति को देनेवाली मंगल सुख सिद्धि के स्थान हो और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख है और संताप रूपी अंधेरे को दूर करने में मध्यान्ह के सूर्यके किरणों की माला के

समान हो। कवच(बक्तर)पहिने हाथ में खड्ग ढाल त्रिशूल सांगी धनुष बाण लिये युद्ध में दैत्यों की सेना को मारने के लिये कालके समान हो। बालग्रह पिशाच प्रेत महामारी आदि के सहित भूत ग्रह वेताल रूप पक्षी मृगझुण्डों का जाल के समान हो और हिमालय की पुत्री हो। लोकों की स्वामिनी हो और तुम्हारे अनेक नाम और रूप भी हैं शिवजी की प्रिया हो शरण में आये हुए की रक्षा करने वाली हो तुम्हारी जयहो। तुलसीदासकी रक्षा करो और श्रीरामजी के चरणों नेम प्रेम चाहता है उसे प्रसन्न होकर दीजिये॥ १६॥

जय जय भगीरथनंदिनी मुनिचयचकोरचंदिनी नरनाग विबुधवंदिनी जय जह्नुबालिका। विष्णुपदसरोजजासि ईश शीशपर विभासि त्रिपथगासि पुण्यरासि पापछालिका॥ विमल विपुल बहसि वारि शीतल त्रयतापहारि भँवरवरविभंग तर तरंगमालिका। पुरजन पूजोपहार शोभित शशिधवलधार भंजनि भवभार भक्तकल्पथालिका॥ निज तटवासी विहंग जल थल चर पशु पतंग कीट जटिल तापस सब सरिसपालिका। तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंशवीर विचरत मति देहु मोहिं महिपकालिका॥ १७॥

सब नद नदियों को छोड़ कर गंगाजी की स्तुति इस वास्ते है कि गंगाजीसंसारी माया में फंसे जीवों की रक्षा सबसे अधिक करतीहैं। चकोररूपी मुनियों के लिये चन्द्रमा हो तथा देवता मनुष्य और नाग गण सेवित जह्नु ऋषि की कन्या भागीरथी की नन्दिनी तुम्हारी जय हो। विष्णु के चरण कमल से उत्पन्न हो शिवजी के मस्तक में विराजमान हो और तीनों लोक में बहनेवाली हो पुण्य की राशि और पापों को नाश करनेवाली हो। शीतल और निर्मल जलसे युक्त हो और गंभीरता से बहने वाली और तीनों तापों को नाश करनेवाली उत्तम भंवरसे युक्त हो चंचल तरंगों से चलनेवाली

हो । नगरवासी लोगों की पूजा के भेंट से आपकी उज्वल धारा चन्द्रमा की समान शोभित है और संसार के भार को नाश करने के लिये भक्तरूप कल्पबृत्त की थाल्हा हो । अपने किनारे के रहनेवाले पशु-पत्ती जलचर थलचर पतंग कीड़े जटाधारी तपस्वी आदि सभी को बराबर पालती हो । मोहरूप महिषासुर को मारनेवाली भगवती का तुलसीदास ध्यान करता हुआ तुम्हारे तीर तीर घूमता फिरे ऐसी बुद्धि दीजिये ॥ १७ ॥

राग रामकली ।

जयति जय सुरसरी जगदखिलपावनी । विष्णुपदकंज मकरन्द इव अम्बुवर बहसि दुखदहसि अघवृन्द विद्राविनी ॥ मिलित जलपात्र अज युक्त हरिचरण रज विरज वर वारि त्रिपु-रारि शिर धामिनी । जह्नु कन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत भूधरद्रोणि बिहरनि बहुनामिनी ॥ यक्ष गन्धर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृत पुंज युत कामिनी । स्वर्गसोपान विज्ञानज्ञानप्रदे मोहमदमदनपाथोज हिमयामिनी ॥ हरित गम्भीर बानीर दुहुँ तीर वर मध्य धारा विशवअभिरामिनी । नीलपर्यंककृतशयन सर्पेश जनु सहसशीशावली स्रोतसुरस्वा-मिनी ॥ अमित महिमा अमितरूप भूपावलीमुकुटमणि वंदि त्रैलोक्यपथगामिनी । देहि रघुवीरपदप्रीति निर्भर मातु दास-तुलसि त्रासहरणि भवभामिनी ॥ १८ ॥

हे गंगे! सकल संसार को शुद्ध करती हो इससे तुम्हारी जय हो जय हो ।

बिष्णु के चरण के रसके समान उत्तम जल को बहती हो दुःखों को भस्म करती हो और पापों के ढेर को बहाती हो । विष्णु के चरण की धूरि के सहित ब्रह्मा के कमण्डलु के जल में मिलकर अपने निर्मल और उत्तम जल से शिव के शिर में रहती हो । हे

जह्नुकन्या ! धन्य हो हिमालय के कंगूरे को तोड़कर अपने नाम को बढ़ाई हो। यक्ष गंधर्व मुनश्विर किन्नर सर्प दैत्य और पुण्य-वान् मनुष्य स्त्रियों सहित स्नान करते हैं। उनके लिये स्वर्ग की सीढ़ी हो हे ज्ञान विज्ञान को देनेवाली और मोह ईर्षा कामरूपी कमल के लिये पाला की रात्रि हो। दोनों उत्तम किनारों में हरे घने खेतों के बीच में संसार को सुख देनेवाली निर्मल धारा से शोभित हो। जैसे नीले सेजपर शेषजी शयन करते हैं और जैसे हजार फण से शेषजी की शोभा होती है वैसे ही तुम्हारे भी हजारों सोते हैं और तुम देवताओं की स्वामिनी हो। तुम्हारी अपार महिमा है और तुम्हारे अनेक रूप हैं और बहुत से राजाओं के शिरोमुकुट के रत्नों से नन्दनीय हो और तीनों लोक में बहती हो। दुःखों को दूर करनेवाली हो शिवजी की प्यारी हो हे माता तुलसीदासको रामके चरणों में अत्यन्त प्रेम देओ ॥ १८ ॥

हरणि पाप त्रिविधताप सुमिरत सुरसरित विलसति महि कल्पबेलि मुद मनोरथ फरित ॥ सोहति शशिधवलधार सुधास लिल भरित। विमलतरतरंग लसत रघुवरकेसे चरित ॥ तो बिनु जगदम्ब गङ्ग कलियुग का करित। घोर भव अपार सिंधु तुलसी कैसे तरित ॥१९॥

गंगाजी के ध्यान से तीनों ताप व पाप दूर होते हैं। सुख और मनोरथ रूप फल से फरी कल्पलता के समान पृथ्वी में सुशोभित हो। अमृत के समान जल से पूर्ण चन्द्रमा के समान उज्वल धारा से सुशोभित हो। श्रीरामजी के रामायण के समान निर्मल और ठंढी तरङ्गे विराजमान हैं। हे जगदम्बिके गङ्गे ! तुम्हारे बिना कलि-युग क्या करता और तुलसीदास इस महा अथाह संसार सागर को कैसे तर सकता ॥ १९ ॥

ईश शीश बससि त्रिपथ लससि नभपताल धरनि। मुनि सुर नर नाग सिद्ध सुजन मंगल करनि ॥ देखत दुख दोष

दुरित दाह दारिद दरनि। सगर सुवनसाँसतिशमनि जल निधिजलभरनि ॥ महिमा को अवधि करसि बहु विधि हरि हरनि। तुलसी करु बानि विमल विमल वारिवरनि ॥ २० ॥

श्री शिवजी के मस्तक में रहती हो और आकाश पाताल पृथिवी होकर बहती हो। मुनि देवता मनुष्य नाग सिद्ध और साधुवों का मंगल करनेवाली हो।

दुःख दोष पाप ताप और दरिद्रता को देखते ही चूर्ण कर देती हो। सगर के पुत्रों की यमयातना नष्टकर समुद्र में अपना जल डालती हो। ब्रह्मा विष्णु शिव के महिमा की मर्याद को अधिक बढ़ाती हो। हे निर्मल जलके रूपवाली तुलसीदास की बाणी को निर्मल कीजिये ॥२०॥

राग विलावल।

यमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहु काढ़न ॥ ज्यों ज्यों जलमलीन त्यों त्यों यमगण मुख मलीन है आढ़न। तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लागे डाढ़न ॥ २१ ॥

जैसे जैसे यमुना बढ़ने लगी वैसे वैसे पुण्य के योद्धा राजा कलियुग को बहुत निरादर कर निकालने लगे। जैसे जैसे जल मैला हुआ वैसे वैसे यमराज के दूतों के मुख मलीन होगये। तुलसीदास कहते हैं जैसे जैसे मेघ जवासे को जलाने लगते हैं वैसे ही पुण्य संसार के पापों का नाश करने लगा ॥ २१ ॥

राग भैरव।

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकासी। शमनि शोक संताप पाप रुज सकल सुमंगलरासी॥ मर्यादा चहुँ ओर चरन वर सेवत सुरपुरबासी। तीरथ सब शुभ अङ्ग

रोम शिव लिङ्ग अमित अविनासी ॥ अन्तरअयन अयन भल थल फलवच्छ बेद विश्वासी । गलकम्बल वरुणा विभाति जनु मूल लसत सरितासी ॥ दण्डपाणि भैरव विषाण मल रुचि खल गण भयदासी । लोलदिनेश त्रिलोचन लोचन करणघण्ट घण्टासी ॥ मणिकर्णिका वदनशशिसुन्दर सुरसरि सुख सुखमासी । स्वारथ परमारथ परिपूरण पंचक्रोश महिमासी ॥ विश्वनाथ पालक कृपालु चित लालति नित गिरिजासी । सिद्धि शची शारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमासी ॥ पंचाक्षरी प्राण मुद माधव गव्य सुपंचनदासी । ब्रह्म जीव सम राम नाम युग आखर विश्वविकासी ॥ चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी । लहतपरमपदपयपावन जेहि चहत प्रपंच उदासो ॥ कहत पुराण रचो केशव निज कर करतूति कलासी । तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासो ॥ २२ ॥

कलियुगमें जीवन पर्यन्त कामधेनु के समान काशी की सेवा करो । दुःख तीनों ताप और पाप तथा रोगों को नष्ट करनेवाली सब मंगलों की राशि है । देवता के समान नगरवासी हैं उत्तम खुर सरिखे चारों ओर की मर्यादा का सेवन करते हैं । सब तीर्थ ही अच्छे अंग हैं शिवलिंगही शरीर के रोम हैं । भीतर का हृदय ही अच्छा स्थान है, अर्थ धर्म काम मोक्ष ये चारों फल जिनके स्तन हैं और वेदमें विश्वास करनेवाले जिसके बछड़े हैं । और गले की लटकती ग्वाल बरुणा के समान शोभित है और असी नदी उसकी पूंछ है । दण्डपाणि और काल भैरव ये दोनों सींग हैं और पाप करनेवाले दुष्टों को भय देनेवाले हैं । लोलार्क और त्रिलोचन यह दोनों नेत्र हैं और कर्णघंटा गलेका घंटा है । माणिकार्णिकाही चन्द्रमुख है और गंगाजी से सुख होनाही सुन्दरता

है। जीवन का सुख और बन्धनों से मोक्ष की पूर्णताही पंचक्रोशी की महिमा है। चरानेवाले दयालु विश्वनाथ हैं नित्य प्रेम करने वाली श्री पार्वतीजी हैं। सिद्धि इन्द्राणी सरस्वती इनको पूजती हैं और लक्ष्मीजी दोनों की रक्षा करती हैं। पंचाक्षरी मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) ही जिस का प्राण है विन्दुमाधव सुख हैं पंचनद पंचगव्य है। संसार को प्रकाश करनेवाले राम नाम के दोनों अक्षर ब्रह्म और जीव के समान हैं। घासके समान जीवगण हैं जो कि शुभ अशुभ कर्म करके मरते हैं वही चरही में चरती हैं। विषयों से उदासीन हो जिसको चाहती हैं वह शुद्ध दूध के समान मोक्षका लाभ है। पुराण कहते हैं कि भगवान ने अपने हाथ की कुशलता से इसे बनाये हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जो सुखी हुआ चाहो तो काशी में रहकर राम मन्त्र का जप करो ॥ २२ ॥

राग बसन्त।

सब सोचविमोचन चित्रकूट। कलि हरन करन कल्याण बूट ॥ शुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन विचित्र वारी विशाल ॥ मन्दाकिनि मालिनि सदा सींच। वरवारि विषम नर नारि नीच ॥ शाखा सुशृङ्ग भूरुह सुपात। निर्झर मधुकर मृदु मलय बात ॥ शुक पिक मधुकर मुनिवर विहारु साधन प्रसून फल चारि चारु ॥ भव घोर घाम हर सुखद छाँह। थाप्यो थिरप्रभाव जानकोनाह ॥ साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥ रस एक रहित गुण कर्म काल। सियाराम लषण पालक कृपाल। तुलसी जो रामपद चहसि प्रेम। सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥ २३ ॥

चित्रकूट पर्वत सब प्रकार के शोचको मिटानेवाला है। और कलिकाल को हरनेवाला और कल्याण को देनेवाला मंगलकारी वृक्ष है। पवित्र सुहावनी वह भूमि थाला है और अनेक प्रकार का

बनही फुलवाड़ी है मन्दाकिनी नदी उस बनकी मालिन है । नीचे स्त्री पुरुषों की विषमता ही उत्तम जलको नित्य सींचना हैं, और पर्वत के बड़े कंगूरे शाखा हैं । वहां के वृक्षही सुन्दर पत्ते हैं झरने ही वहांके उत्तम रस हैं सुगन्धित वायु कोमलता है । मुनियों का घूमना तोता पपीहा और भौंरे हैं साधना करना ही फूल हैं चारो पदार्थ फलहैं । छाया सुख देनेवाली है वह छाया संसार रूपी घोर घामको हरनेवाली है । इस बनका प्रताप श्रीरामजी ने थिरकर गाड़ दिया है । साधनावाले यहां के राही हैं बड़े भाग्य से यहां आकर बहुत प्रकार के अभिलाषा के फलको पाते हैं । तीनों गुण शुभकर्म समय दोष से रहित एकसा रहता है । कृपालु सीतारामं लक्ष्मण इस बनके रक्षक हैं । हे तुलसी ! जो तू श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हो तो अनन्यभावना का नियम करके चित्र-कूट का सेवन करो ॥ २३ ॥

राग कान्हरा ।

अब चित चेति चित्रकूटहि चल । कोपित कलि लोपित मङ्गलमग बिलसत बढ़त मोह माया मल ॥ भूमि बिलोक रामपद अंकित वन बिलोक रघुबर बिहारथल । शैल शृंग भवभंग हेतु खल दलन कपट पाखण्ड दम्भ दल ॥ जहँ जनमे जगजनक जगतपति विधि हरि हर परिहरि प्रपञ्च छल । सकृत प्रवेश करत जेहि आश्रम बिगत बिषाद भये पारथ नल ॥ न करु बिलंब बिचारु चारुमति वर्ष पाछिले सम अगिलोपल । मंत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे अजर अमर हर अंचे हलाहल ॥ राम नाम जप याग करत नित मज्जत पय पावन पीवत जल । करिहैं राम भावतो मनको सुखसा-धन अनयास महाफल ॥ कामदमणि कामताकल्पतरु सो

युग युग जागत जगतीतल । तुलसी तोहिं विशेष बूझिये एक प्रतीति प्रीति एकै बल ॥ २४ ॥

हे चित्त ! अब चेतकर चित्रकूट ही को चल । क्यों कलियुग को पकड़ मंगल के मार्ग को बन्द कर मोह माया मलीनता बढ़ाकर बिहार करता है । राम के चरण से अंकित पृथिवी को देखो, और श्रीरामजीके बिहार करने का स्थान चित्रकूट देखो । खल पाखंड घमंड की सेनाओं के नाशक संसार के चक्र को तोड़ने वाले पहाड़ों के शिखर को देखो । संसार के स्वामी ब्रह्मा विष्णु शिव प्रपंच और छल छोड़कर जहाँ उत्पन्न हुए और अर्जुन तथा नल इस बन में प्रवेश करते हुए दुःखों से छूट गये शुद्ध बुद्धि से बिचार और पीछे गया समय बर्षों समान और आगे आनेवाला समय पलमात्र है । जाके वही मन्त्र जपो जिसे जपतेही शिवजी विष पीकर अजर अमर हुए हैं । सदा राम नाम का जप यज्ञ करता पवित्र जल नहाता जल पीता हुआ सरल साधना से विना परिश्रम महा फल मिलता है मन की रुचि भी श्रीरामचन्द्रजी करैंगे । पृथिवीतल में वह कामदा गिरि कामनाओं की देनेवाली मणि कल्प वृक्ष है औ युग युग में उगा रहता है । हे तुलसी ! तुझे तो अधिक सूझना चाहिये क्योंकि एक की प्रीति का विश्वास एक ही राम का बल है ॥ २४ ॥

राग धनाश्री ।

जयति अंजनीगर्भअम्भोधिसंभूतविधुविबुधकुलकैरवानंदकारी । केसरीचारुलोचनचकोरकसुखदलोकगण शोकसंतापहारी । जयति जय बालकपिकेलिकौतुकउदित चण्डकरमण्डल ग्रासकर्त्ता । राहु रविशक्र पवि गर्व खर्बीकरण शरण भयहरण जय भुवनभर्त्ता । जयति रणधीर रघुवीर हित देवमणि रुद्रअवतार संसारपाता । विप्र सुर सिद्ध मुनि आशिषा

करवपुष विमलगुण बुद्धिवारिधि विधाता । जयति सुग्रीव शिक्षादि रक्षण निपुण बालि बल शालि बध मुख्य हेतु । जलधि लंघन सिंह सिंहिकामदमथन रजनिचरनगर उत्पात केतु । जयति भूनंदिनीशोचमोचन विपिनदलन घननादवश विगतशङ्का । लूमलीलानलज्वालमालाकुलित होलिकाकरण लंकेश लंका । जयति सौमित्रि रघुनन्दनानन्दकर ऋक्ष कपि कटकसंघट विरेधायी । बद्धवारिधिसेतु अमर मंगल हेतु भानु कुलकेतु रण विजयदायी । जयति जय वज्रतनु दशन नख मुख विकट चण्ड भुजदण्ड तरु शैल पानी । समरतैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरिडारे सुभट घालि घानी । जयति दशकण्ठ घटकरण वारिदनाद कदन कारण कालनेमि हंता । अघटघटनासुघट बिघटन विकट भूमिपाताल जल गगन गंता । जयति विश्व विख्यात बानैतविरदावली विदुष वरणत वेद विमलबानी । दासतुलसी त्रास शमन सीतारमन सङ्ग शोभित रामराजधानी ॥ २५ ॥

अंजनी के गर्भरूपी समुद्र में चन्द्रमा के समान हो और देवताओं के वंशरूपी कमल को सुख देनेवाले हो । केसरी के सुन्दर नयन रूपी चकोर को सुख देनेवाले हो और संसार समूह के तपनिरूप दुःख को हरनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो । बालबानरी खेल से लीला पूर्वक उगे हुए प्रचण्ड किरण से युक्त सूर्यमण्डल को कवल करनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो जय हो । राहु सूर्य इन्द्र के बज्र के घमण्ड को छोटा करनेवाले और शरणागतके भय को हरनेवाले हो । हे संसार के स्वामी जय हो, युद्धमें धीर रामके लिये देवताओं के रत्न शिवजी के अवतार हो । हे संसार के रक्षक! तुम्हारी जय हो । ब्राह्मण देवता सिद्ध मुनियोंके आशी-

वीदरूपी शरीरवाले हो निर्मल गुण बुद्धिके, समुद्र और उत्पन्न करनेवाले हो। सुग्रीव को अपनी सलाह से रक्षित रक्खा इससे चतुर हो। बलवान बालिको मारने में मुख्य कारण हो इससे जय हो। समुद्र लांघने के समय सिंहिका राक्षसी का मद नष्ट किया और निशाचरों के नगरमें उत्पात को बढ़ानेवाले केतु हो। सीता के शोचको मोचन करनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो जय हो और अशोकबन को नष्ट कर मेघनाद के जाल में फंस कर भी निःशंक होगये हो। रावण की लंकाको पूंछ लीलासे आग की ज्वालाके ढेरसे राक्षसों को व्याकुल कर होली कर दिया। हे रामलक्ष्मण को सुख देनेवाले! और देवताओं के मंगल के लिये ऋच्छ बानरों की सेना को इकट्ठा करनेवाले हो। समुद्र में सेतु को बांधकर देवताओं के कार्य के लिये सूर्यबंशकेतु श्रीरामचन्द्र जी को बिजय देनेवाले हो। हे वज्रदेह! जय हो जय हो। कराल दांत नख मुख प्रचण्ड भुजदण्डों से वृक्ष पर्वत आदिको हथेलियों में लेनेवाले हो। युद्ध रूप काल्हू में तिलरूपी राक्षसों की सेना को मेघनाद कुंभकर्ण आदि राक्षसों की घानी लगाकर पेरनेवाले हो। और रावण कुंभकर्ण तथा मेघनाद को युद्धमें नष्ट करनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो। अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी करनेवाले हो और पृथिवी आकाश पाताल और जलमें निःशंक चले जाते हो। संसार में प्रसिद्ध हो तुम्हारे निर्मल गुणों का यश विद्वान् निर्मल वेद के बाणी से गान करते है। अयोध्या में सीताराम के साथ सदा रहते हो तुलसीदास के क्लेशको नष्ट करो तुम्हारी जय हो॥ २५॥

जयति मर्कटाधीश मृगराजविक्रम महादेव मुदमङ्गलालय कपाली। मोह मद कोह कामादि खल संकुलाघोरसंसारनिशि किरणमाली। जयति लसदञ्जनादितिज कपि केशरी कश्यप प्रभव जगदार्तिहर्त्ता। लोकलोकप कोकनद शोकहरहंसहनुमान कल्याण कर्त्ता। जयति सुविशाल विकराल विकराल

विग्रह वज्रसारसर्वाङ्गभुजदण्डभारो । कुलिशनखदशन वर लसत बालधि बृहद् वैरि शस्त्रास्त्रधर कुधरधारी । जयति जानकीशोचसन्तापमोचन रामलक्ष्मणानन्दवारिज विकाशी। कीशकौतुक केलि लूमलंकादहन दलनकानन तरुण तेज-राशी । जयति पाथोधि पाषाण जलयानकर यातुधान प्रचुर-हर्षहाता । दुष्ट रावण कुंभकर्ण पाकारि जित मर्मभित्कर्मप-रिपाकदाता। जयति भुवनैकभूषण विभीषण वरद बिहित कृत रामसँग्रामशाका । पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीता सहित भानुकु-लभानुकीरति पताका । जयति परयंत्रमन्त्राभिचार ग्रसन कर्म रण कूट कृत्यादि हन्ता । शाकिनी डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ यूथ यन्ता । जयति वेदांतविद विविधविद्या विशद वेद वेदांगविद ब्रह्मवादी । ज्ञान वैराग्य विज्ञान भाजन विभो विमल गुण गणत शुक नारदादी । जयति काल गुण कर्म मायामथन निश्चल ज्ञान व्रत सत्यरत धर्म-चारी । सिद्ध सुरवृन्द योगीन्द्र सेवित सदा दास तुलसी प्रणत भयतमारी ॥ २६ ॥

हे बानरों के स्वामी ! सिंह के समान पराक्रमी हो आनन्द मंगल के भवन हो मुण्डमालाधारी शिव हो तुम्हारी जय हो। मोह अहंकार क्रोध काम आदि दुष्टों से भरे हुए कठिन रात्रि को सूर्य के समान नाशक हो। अदिति के समान शोभित अंजना में हुए कश्यपरूपी केसरी बानर के पुत्र हो। संसार के दुःख को हरनेवाले हो तुम्हारी जय हो। संसार के स्वामी कमलों को फुलानेवाले सूर्य के समान हो । हे हनुमान्! कल्याण करनेवाले बड़े भयानक शरीरवाले हो तुम्हारी जय हो। वज्र तथा लोह के समान तुम्हारे अंग हैं बहुत दीर्घ भुजायें हैं वज्र के समान नख उत्तम चमकनेवाले दांत और लंबी पूछ से विराजमान

हो शत्रुओं के लिये शस्त्र अस्त्र की जगह बड़े पर्वत को लिये हो। श्रीजानकी जी के शोकरूपी सन्ताप को हरनेवाले राम लक्ष्मण के मुखरूप कमल को फुलानेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो। बानरीलीला से खेलते समय पूंछ से लंकापुरी को भस्म किये हो और अशोक बन को तोड़नेवाले महातेज के राशि हो। समुद्र में पर्वतों से सेतु बांधकर राक्षसों का अत्यन्त सुख नष्ट किया इससे तुम्हारी जय हो जय हो। दुष्ट रावण कुंभकर्ण मेघनाद का गला काटकर कर्मों का फल दे दिया। संसार में एकही रत्नरूप विभीषण को वरदान दिया। राम के मनोरथ को पूरा करके युद्ध की शाखा चलाई इससे तुम्हारी जय हो। पुष्पक विमान पर चढ़े लक्ष्मण सीता सहित सूर्य वंश में सूर्य के पताका हो और शत्रुओं के यन्त्र मन्त्र अनिष्टों को खानेवाले हो और मारण आदि कर्मों से प्राप्त हत्या के नाशक हो। शाकिनी डाकिनी प्रेत वैताल भूत रुद्र गणों की सेना को हांकते हो इससे तुम्हारी जय हो। वेदान्त को जाननेवाले और अनेक प्रकार की विद्या तथा वेद वेदांग को जाननेवाले हो हे ब्रह्मवादिन्! तुम्हारी जय हो। ज्ञान वैराग्य और ब्रह्मज्ञान से भरे हुए पात्र हो शुकदेव नारद आदि तुम्हारे निर्मल यश को गाते हैं। काल कर्म गुण और माया को मथ कर निश्चल ज्ञान के उपासक हो सत्य में प्रेम पूर्वक रह कर धर्म करते हो। इससे तुम्हारी जय हो जय हो। देवता सिद्धों से सेवित हो प्रणाम करते हुए तुलसी का महाभय नष्ट करो ॥ २६ ॥

जयति मंगलागार संसारभारापहर बानराकारविग्रह पुरारी। रामरोषानल ज्वालमाला मिसध्वान्तचरशलभसंहारकारी। जयति मरुदंजनामोदमन्दिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैकबन्धो। यातुधानोद्धत क्रुद्धकालाग्निहर सिद्ध सुर सज्जनानन्द-सिन्धो जयति रुद्राग्रणी विश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भट चक्रवर्ती। सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्ती। जयति संग्रामजयराम संदेहहर कोशलाकुशलकल्याण

भाखो। रामविरहार्क संतप्त भरतादि नर नारि शीतलकरण कल्पसाखो। जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निरभर हरष नृत्यकारी। राम संभ्राज शोभा सहित सर्वदा तुलसी मानस रामपुर विहारी ॥ २७ ॥

मंगलों के मन्दिर संसार के भयको हरनेवाले बानर रूपी शिव स्वरूप हो जय हो। श्रीरामजीके क्रोधाग्नि की बहुत सी लपटोंका बहाना होके राक्षसों को पतंगों की समान संहार करनेवाले हो। पवन और अंजनी को सुखके स्थान हो नीची गर्दनवाले सुग्रीव के दुःख में एकही बन्धु हो। इससे तुम्हारी जय हो। उद्दण्ड राक्षसों को कालाग्नि रूप क्रोध में नाश करते हो और सिद्ध देवता साधुओं को आनन्द के समुद्र हो। रुद्रों में उत्तम संसार में मुख्य विद्वान् जगत् में प्रसिद्ध हो हे वीरों में चक्रवर्ती ! तुम्हारी जय हो। साम-वेद को गाने में मुख्य काम को जीतने में शूरवीर राम के हितैषी राम के भक्तोंको दाहिने हो। राम के युद्ध विजय का संदेश ले अयोध्या में कुशल मंगल सबसे कहा इससे तुम्हारी जय हो। राम के वियोगरूपी सूर्य के ताप से तपे हुए भरत आदिको शीतल करनेवालों में कल्पवृक्ष के समान हो। सिंहासन में बिराजमान श्रीरामजीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न नाचनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो जय हो। तुलसीदास के हृदय में अयोध्या के समान विहार करते श्रीरामजी शोभा के साथ सदैव बिराजमान होवें॥ २७॥

जयति बातसंजात विख्यातविक्रमबृहद्बाहु बलविपुल-बालधि विशाल। जातरूपाचलाकारविग्रह लसतलोम विद्यु-ल्लताज्वालमाला। जयति बालार्कवरवदन पिंगलनयन कपिश कर्कस जटाजूटधारी। विकटभृकुटी बज्रदशन नखवैरिमदम-त्तकुंजरपुंजकुंजरारी। जयति भीमार्जुन व्याल सूदन गर्वहर धनंजयरथत्राणकेतू। भीष्म द्रोणकरणादि पालित कालदृक् सुयोधनचमूनिधनहेतू। जयति गतराज्यदातार हंतार संसार-

संकट दनुजदर्पहारी। ईति अति भीति ग्रह प्रेत चौरानलव्याधि बाधा शमन घोर मारा। जयति निगमागम व्याकरण करणलिपि काव्य कौतुककला कोटि सिन्धो। सामगायक भक्तकामदायक वामदेव श्रीरामप्रिय प्रेमबन्धो। जयति घर्मांशुसंदग्धसंपाति नवपक्षलोचन दिव्यदेहदाता। कालकलिपापसंतापसंकुल सदाप्रणत तुलसीदास तात माता ॥ २८ ॥

प्रसिद्ध पराक्रमी लम्बी भुजावाले महाबली दीर्घ पूंछवाले और पवन के पुत्रहो इससे तुम्हारी जयहो। स्वर्ण पर्वत के स्वरूप के समान देहकी कान्तिवाले और बिजली के समान चमचमाते रोमवाले हैं। सूर्य के समान उत्तम मुखवाले और पीले नेत्रवाले भूर और कठोर जटाको धारण किये हो इससे तुम्हारी जय हो। तिरछी भौंहवाले वज्र के समान दांतवाले नखरूपी शस्त्ररूप शस्त्र मतवाले हाथियों के झुंड के सिंह हैं। भीमसेन अर्जुन और गरुड़ के घमण्डको हर लिया और अर्जुन के रथ के रक्षक और पताका हो। भीष्म द्रोणाचार्य कर्ण आदि से रक्षित काल के समान दीखती दुर्योधनकी सेना के नाशके हेतु हो। नष्ट हुए राज्यको देनेवाले संसारी क्लेशों के नाशक और दैत्यों के घमण्डको हरनेवाले हो इससे तुम्हारी जयहो। अकाल आदि महाभयको ग्रह प्रेत चोर अग्नि और रोगोंकी बाधाका नाश करनेवाले हो। वेद शास्त्र व्याकरण के अक्षरों के कर्ता हो और काव्य नाट्य और चौसठ कला के करोड़ों समुद्र हो। इससे तुम्हारी जय हो। सामवेदको गानेवाले और भक्तोंकी कामनाको देनेवाले श्रीरामजीकी प्यारी भक्तिके भाई शिवके स्वरूप हो। सूर्य से जले हुए संपाति के नये पखने नेत्र सुन्दर देह के दाता हो इससे तुम्हारी जयहो। कलियुग के पापोंकी तपनिसे भरे हुए सदैव प्रणाम करते तुलसीदास के सदैव माता पिताहो ॥२८॥

कथा १

इस भजन के तीन पद में हनुमानजी का ध्यान वर्णन किया है। पाण्डवों के बनवास में एक समय द्रौपदी के पास एक सुन्दर

फूल आन गिरा तो महारानी द्रौपदी के कहने से भीमसेन वैसेही फूल ढूंढ़ने जाते थे। देखा कि मार्गको रोककर एक बूढ़ा बन्दर सोया है। भीमसेन बड़े जोर से गर्जकर राह मांगा बन्दर ने कहाकि मैं बूढ़ा हूं उठ नहीं सकता मेरी पूंछ खिसका के चलेन जाओ, भीमसेन ने चाहा कि इसकी पूंछ पकड़कर दूर फेंक दें ऐसा सोचकर बहुत जोर किया परन्तु पूंछ हटाए न हटी बलकर सारा घमण्ड भूल गया। तब भीमसेनने हाथ जोड़कर पूंछा स्वामिन्! बन्दर के वेषमें आप कौन हैं? तब हनुमानजी ने अपना परिचय दिया और बतलाया कि ये फूल कुबेर के सरोवर में होते हैं भीमसेन उनको प्रणामकर उस सरोवरको गये और यक्षोंको विजयकर फूल लाये॥१॥

जयति निर्भरानन्दसन्दोहकपिकेशरी केशरीसुवन भुवनैकभर्त्ता। दिव्यभूम्यंजनामंजुलाकरमणे भक्तसन्तापचिन्तापहर्त्ता। जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादिवैभवविरागी। वचन मानस करम सत्यधर्मव्रत जानकीनाथचरणानुरागी। जयति विहगेश बलबुद्धिवेगातिमदमथन मन्मथमथन ऊर्ध्वरेता। महानाटकनिपुण कोटिकविकुलतिलकगानगुणगर्वगन्धर्वजेता। जयति मन्दोदरीकेशकर्षण विद्यमान दशकंठ भट मुकुटमानी। भूमिजादुःखसंजातरोषांतकृत यातनाजंतुकृतयातुधानी। जयति रामायणश्रवणसंजातरोमांच लोचनसजल शिथिलबानी। रामपदपद्ममकरन्दमधुकर पाहि दासतुलसी शरण शूलपानी॥ २६ ॥

अत्यन्त सुख के समूह बानरों में सिंह केसरी के पुत्र संसार के मुख्य स्वामी हो इससे तुम्हारी जय हो। दिव्य पृथिवी रूपी अंजना के पेटरूपी सुन्दर खानि से हुए चिन्तामणि के समान हो और भक्तों के संसारी ताप और चिन्ताको हरनेवाले हो। धर्म अर्थ काम मोक्ष को देनेवाले हो और ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यसे वैराग्यवान् हो इससे तुम्हारी जय हो मन बचन काम से सत्यधर्म कोपालन

करनेवाले सीतापति के चरणों में प्रेमकरनेवाले हो। गरुड़ के भी बल बुद्धिके अतिवेगके घमण्डको मथनेवाले और कामदेव को मथकर शिरमें बीर्य चढ़ानेवाले हो अर्थात् बालब्रह्मचारी हो। इससे तुम्हारी जय हो। बड़े बड़े नाटकों में दक्ष करोड़ों कवियोंमें शिरोमणि गाने मे चतुर गन्धर्वों के गुरु रावण के रहते हुए केश पकड़ कर मन्दोदरी को खींचा है इससे तुम्हारी जय हो। राक्षसों को नारकी जीव जानकर सीताके दुःखों से उत्पन्न हुए क्रोधरूपी यमराज हो। रामायण सुनकर नेत्र से जल गिराते हो और करुणा के मारे बोलने से शिथिलता होतीहै इससे तुम्हारी जयहो। रामके चरणकमलों के रसमें भौंरे के समान रहते हो हे त्रिशूलधारी! शिवस्वरूप तुलसीदास तुम्हारो शरण है रक्षा कीजिये ॥ २९ ॥

राग सारंग।

जाके गति है हनुमान की। ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिषपपान की॥ अघटित घटन सुघट बिघटन ऐसो बिरदावली नहिं आनकी। सुमिरत संकट सोच विमोचन मूरति मोदनिधानकी॥ तापर सानुकूल गिरिजा हर लषण राम अरु जानकी। तुलसी कपि को कृपा विलोकनि खानि सकल कल्यान की॥ ३०॥

हनुमान की शरण जिसको है उस पर पार्वती शिव राम लक्ष्मण सीताजी अनुकूल रहते हैं। उसकी संसारी चाल पूरी हो आई है यह रेखा वज्र व पत्थर की है। अनहोनी को होनी करना और होनी को अनहोनी करना ऐसी दूसरे की कीर्ति नहीं है। ध्यान करते ही कष्ट और दुःख से छुड़ानेवाले सुख केस्थान की मूर्ति हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमान की कृपादृष्टि सब प्रकार के मंगलों की खानि है॥ इस पद में भक्तों की दृढ़ता के लिये सबको छोड़ एक हनुमानजीकी शरण बतलाई गई है॥३०॥

राग गौरी ।

ताकिहै तमकि ताकी ओर को । जाको है सबभांति भरोसो कपि केसरीकिशोर को ॥ जनरंजन अरिगण गंजन मुखभंजन खल बरजोर को । वेद पुराण प्रकट पुरुषारथ सकल सुभट शिर मोर को ॥ उथपेथपन थप्यो उथपनपन विबुध वृन्दबन्दिछोर को । जलधि लांघ दहि लंक प्रबल दलदलन निशाचर घोर को ॥ जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को । जाकी चिबुक चोट चूरण किय रदमद कुलिश कठोर को ॥ लोकपाल अनुकूल विलोकिवो चहत विलोचनकोर को । सदा अभय जय मुद मंगलमय जो सेवक रणरोर को ॥ भक्तकामतरु राम नाम परिपूरण चन्द्रचकोर को । तुलसी फल चारों करतल यश गावत गई बहोर को ॥ २१ ॥

उसकी ओर क्रोध से कौन देखेगा जिसको सब भांति केशरी बानर के पुत्रका भरोसा होगा । पुत्रोंको प्यार करनेवाले शत्रुका नाश करनेवाले दुष्टोंका मुख तोड़नेवाले बल जोरावर कौन हो और सब बीरों में सिर मौर हो । सब बीरों में सिरमौर का पराक्रम वेद पुराणों में प्रगट है । उचटे को थिर और थिर को उचाटन करना और देवताओं के बन्दी को काटनेवाले हो । जिसने समुद्र लांघ लंका को जलाकर निशाचरों की घोर सेना का नाश करनेवाले हो । जिसकी बाललीला मन में समझकर प्रातःकाल के सूर्य डरते हैं । जिसकी दाढ़ी के टक्कर से कठोर वज्र के दांतों के घमंड को चूर्ण कर दिया । जिसकी कमलरूपी नेत्र की कृपा से देखना लोकपल चाहते हैं । और जो सदा युद्ध में तत्पर रहते हैं । राम के सेवक हैं वह सदैव निर्भय बिजयी सुखी और मंगलों से भरा रहता है । पूर्ण चन्द्रमा के समान राम नाम में चकोर के

समान हनुमान भक्त कल्पवृक्षके समान हैं। तुलसीदास कहते हैं कि गयेहुए को फेरनेवाले का यश कहतेहो चारों फल हाथ आते हैं ॥ ३१ ॥

राग बिलावल।

ऐसी तोहिं न बूझिये हनुमान हठीले। साहब कहूं न राम से तोसे न वसीले॥ तेरे देखत सिंह के शिशु मेढक लीले। जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुण गण कोले॥ हांक सुनत दशकंध के भये बन्धन ढोले। सो बल गयो किधौं भये अब गर्वगहीले॥ सेवक को परदा फटे तू समरथसीले। अधिक आपते अपनो सुनि मानसहीले॥ सांसति तुलसीदास की सुनि सुयश तुहीले। तिहूं काल तिनको भलो जे राम-रंगीले॥ ३२ ॥

हे हठीले हनुमान! तुझ में ऐसी समझ न चाहिये। श्रीरामजी के समान प्रभु और तुमारे समान वसीला कहीं नहीं है। परन्तु तुम्हारे देखते हुए सिंह के बच्चेको मेढक लील गया। मैं जानता हूं कि तुम्हारे भी अच्छे २ गुण समुदायको कालियुग ने कील दिया है। क्योंकि तुम्हारी हांक सुनतेही रावण के जोड़ ढीले होगये वह बल गया या कि अब गहरे गरूरी होगये। तुझ सामर्थ्य-शील के होते हुए भी सेवक का पर्दा फट जावे। अपनी बढ़ती आपसे सुन ठीक मान लिया। कि जो राम के प्रेमी हैं उनको तीनों काल में भलाई है। तुलसीदासकी पीड़ा सुनकर तुम्हीं सुयश लो॥ ३२ ॥

समरथ सुवनसमीर के रघुवीर पियारे। मोपर कोबे तोहिं जो करिलेहो भियारे॥ तेरी महिमा ते चलै चिंचिनीयारे। अंधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे॥ केहि कारण जन जानिके सनमान कियारे। केहि अघ अवगुण आपनो

करि डार दिया रे ॥ खाये खोंचो मांगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे ॥ जो तोसों होतो फिरो मेरो हेतु हियारे। तौ क्यों वदन देखाव तो कहि बचन इयारे ॥ तोसों ज्ञाननिधान को सर्वज्ञ बिया रे ॥ हौं समुझत साईं द्रोह को गति छार छिया रे ॥ तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे। तहं तुलसो को कौन को काको तकिया रे ॥ ३३ ॥

राम के प्यारे सामर्थ्यवान् वायु के पुत्र हो। अरे भैया! जो तुझे करना हो मुझपर कर ले। तुमारी महिमा से इमली का बीज भी चलता है। हे त्रैलोक्यको उजियाला करनेवाले! मेरी बार क्यों अंधेरा किया है। किस कर्म से जन जानि के आदर किये, फिर किस पाप और अवगुण से अपना कर छोड़ दिये। मैं तेराही नाम ले चुटकी मांग खाया, बलि जाऊं तुमारे ही नामपर आज तक संसार में जीता जागता रहा। जो मैं तुम से विमुख होऊं तो मेरा हृदय साखी है। तो यारों के समान बचन कह के क्यों मुख दिखाते हो। तुम से बढ़कर ज्ञानी कौन है तुम तो सब ज्ञानी के बीज हो। मैं समझता हूं कि स्वामी के बैर की गति धूर हो नष्ट होना है। श्री रामजी के समान तुम्हारा स्वामी और सीता के समान स्वामिनी हैं। अरे वहां तुलसी को सिरकी तकिया कौन है कौन किस को है। इस पद से भक्त की साधनावस्था में क्रोध की दशा बतलाई है ॥ ३३ ॥

आत आरत अतिस्वारथी अतिदीन दुखारी। इनको बिलग न मानिये बोलहिं न बिचारी ॥ लोकरीति देखी सुनी व्याकुल नरनारी। अतिबरषे अनबरषेहू देहिं देवहि गारी ॥ ना कहि आये नाथसों सांसति भै भारी। कहिआये कीबी क्षमा निज ओर निहारी ॥ समय सांकरे सुमिरिये समरथ

हितकारी। सोउ सब विधि ऊपर करै अपराध बिसारी ॥ बिगरी सेवक को सदा साहिबहि सुधारी। तुलसीपर तेरो कृपा निरुपाधि निरारी ॥ ३४ ॥

महापीड़ित महास्वार्थी महागरीब और दुःखी इनका मांख न मानिये यह सोचकर नहीं बोलते हैं। लोक की रीति भी देखी सुनी है कि व्याकुल हो स्त्री पुरुष बहुत बरसने पर और न बरसने पर दैवही को गाली देते हैं। नाकमें दम आया महाकष्ट हुआ तो प्रभु से कहना पड़ा कि अपनी ओर देखकर क्षमा कीजिये। कष्ट के समय समर्थ और हितैषी याद किया जाता है वह सब प्रकार से अपराध को भुलाकर उबार लेता है। सेवक की भूल स्वामीही ने सदा ठीक किया है तुलसी पर तुम्हारी कृपा बिना लाग निराली है साधक का विघ्न दूर होने पर ये स्तुति का यह क्षमापन है ॥३४॥

कटु कहिये गाढे परे सुन समुझि सुसांई। करहि अनभले को भलो आपनी भलाई ॥ समरथ शुभी जो पाइये वीर पीर पराई। ताहि तकै सब ज्यो नदी वारिधि न बुलाई ॥ अपने अपने को भलो चहै लोग लोगाई। भावै जो जहि तेहि भजे शुभ अशुभ सगाई ॥ बांह बोल दै थाकिये जो निज बरिआई। बिनु सेवा सो पालिये सेवक की नाई ॥ चूक चपलता मेरिय तू बड़ो बड़ाई। होत आदरे ढीठ है अतिनीच निचाई ॥ बन्दिछोर बिरदवालो निगमागम गाई। नीको तुलसीदास को तेरिहो निकाई ॥ ३५ ॥

कष्ट पड़नेपर कटुवचन निकलता ही है। परन्तु अच्छे स्वामी उसे सुन समुझ के अपनी भलमंसी से अनभले की भलाई कर देते हैं। जो सामार्थ्यवान् अच्छा बीर मिले तो पीड़ा भग जाती है, उसे सभी तकते हैं जैसे बिना बुलाई भी नदी समुद्र तक पहुंचती है। सभी पुरुष स्त्री अपने अपने को भलाई चाहते हैं परन्तु

शुभ अशुभ कर्मों के संबन्ध से जिसे जो अच्छा लगता है उसे भजता है। जो जबरदस्ती अपनी बांह बल देके रखा जाता है वह सेवक की भांति बिना सेवा के भी रक्षाही किया जाता है। भूल और चंचलता तो मेरी है ही तुम बड़े हो बड़ाइही चाहिये। महा नीच प्रतिष्ठा पा के अपनी नीचता से ढीठा हो जाता है। बन्धन से छुड़ाने का तुम्हारा यश वेद शास्त्र गाते हैं। तुम्हारी अच्छाई से तुलसीदास को भी अच्छा है ॥ ३५ ॥

राग गौरी।

मंगलमूरति मारुतनन्दन। सकल अमंगलमूलनिकन्दन ॥ पवनतनय सन्तनहितकारी। हृदय विराजत अवध विहारी ॥ मातु पिता गुरु गणपति शारद। शिवा समेत शम्भु शुक नारद ॥ चरण वन्दि बिनवौं सब काहू। देहु रामपदनेह निबाहू ॥ बन्दौं राम लषण वैदेही। जो तुलसीके परमसनेही ॥ ३६ ॥

मंगलों की मूर्ति वायुको सुख देनेवाले और सब प्रकार के अशुभों के मूल नाशक हो। सन्तों के हितैषी वायु के पुत्र जिनके हृदय में श्रीरामजी बिराजते हैं। माता पिता गुरु गणेश सरस्वती पार्वती शिव शुकदेव नारद सहित सभी के, चरणों की वन्दना कर बिनती करता हूं कि राम के चरणों में प्रेमका निर्वाह हो यह दो अब राम लक्ष्मण सीता की वन्दना करता हूं जो कि श्री रामजी के परम स्नेही हैं ॥ ३६ ॥

दंडक।

लाल लाड़िले लषण हित हौ जन के। सुमिरे संकटहारी सकल सुमंगलकारी पालक कृपाल अपने पन के ॥ धरणी धरणहार भञ्जन भुवनभार अवतार साहसी सहसफन

के। सत्यसन्ध सत्यव्रत परमधर्मरत निर्मल कर्म वचन मन के ॥ रूपके निधान धनु बाण पाणि तूण कटि महावीर बिदित जितैया बड़े रन के। सेवकसुखदायक सबल सब लायक गायक जानकीनाथगुणगण के ॥ भावते भरत के सुमित्रा सीता के दुलारे चातक चतुर रामश्याम घन के। वल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहवश धनी धन तुलसी से निरधन के ॥ ३७ ॥

प्यारे लषनलाल भक्तों के हितैषी हो, ध्यान से कष्ट को हरनेवाले तथा सब प्रकार के मंगल करनवाले हो। अपनी प्रतिज्ञा के पालक और दयावान् हो। पृथिवी को धारण करनेवाले संसार के भार को हटानेवाले शेषजी के अवतार बड़े पुरुषार्थी हो। निर्मल कर्म बचन मनकी सचाई में लगे सच्चा नियम करते हो और मोक्ष धर्म में आसक्त हो। तेज के स्थान हाथों में धनुष बाण कमर में तरकस को लगाये महाशूर बीर हो। महासंग्राम के जीतने में प्रसिद्ध भक्तों को सुख देनेवाले महाबली और सब में समर्थ हो। श्रीरामजी के गुण समूह को गाते और भरतजी को भावते सुमित्रा और सीता के प्यारे हो। काल मेघ के समान राम के चतुर पपीहा हो उर्मिला के प्रिय प्रेम के वश हो के सुलभ हो। तुलसी ऐसे कंगालों के लिये तो धनियों के धन हो ॥ ३७ ॥

राग धनाश्री।

जयति लक्ष्मणानन्त भगवन्त भूधर भुजगराज भुवनेश भूभारहारी। प्रबलपावकमहाज्वालमालावमन शमन सन्ताप लीलावतारी ॥ जयति दाशरथि समरसमरथ सुमित्रासुवन शत्रुसूदनरामभरतबन्धो। चारुचम्पकबरन बसन भूषण धरन दिव्यतर भव्य लावण्यसिन्धो ॥ जयति गाधेय गौतम जनक

सुखजनक विश्वकण्टक कुटिलकोटिहन्ता। वचनचयचातुरी परशुधर गर्वहर सर्वदा रामभद्रानुगन्ता॥ जयति सीतेश-सेवा सरस विषयरस निरस निरुपाधि धुरधर्मधारी। विपुलबल मूल शार्दूलविक्रम जलदनादमर्दन महावीर भारी॥ जयति संग्रामसागरभयङ्करतरण रामहितकरणवर बाहुसेतू। उर्मिलार मन कल्याणमंगल भवन दासतुलसी दोषदवन हेतू॥ ३८॥

पृथ्वी के भार को हरनेवाले संसार के स्वामी पृथिवी को धारण करनेवाले सर्पों के राजा भगवान् शेषरूप लक्ष्मण की जय हो। प्रलय के अग्नि की बहुत सी बड़ी बड़ी लपटैं उगिलनेवाले सन्ताप को नाश करने की लीला में अवतार धारण करनेवाले हो। दश-रथ के पुत्र हो युद्ध में समर्थ सुमित्रा से उत्पन्न शत्रुघ्न राम और भरत के भाई हो इससे तुम्हारी जय हो सुन्दर चम्पा पुष्प के समान कान्तिवाले अति दिव्य वस्त्र आभूषण को धारण करने-वाले तेज और सुन्दरता के समुद्र हो। विश्वामित्र गौतम जनक को सुख देनेवाले संसार के कांटा स्वरूप करोड़ों दुष्टों को मारने वाले हो इससे तुम्हारी जय हो। बातों की बहुत चतुरता से पर-शुराम का घमण्ड दूर किया सदैव राम की आज्ञा के पीछे चलते हो इससे तुम्हारी जय हो राम की सेवा में रसीले विषय रस से सूखे सामान्य धर्म को धारण करने में अगुआ हो इससे तुम्हारी जय हो। महाबल के मूल सिंह के सरीखे पराक्रमी मेघनाद के नाशक बड़े भारी शूरबीर हो। युद्धरूप भयंकर समुद्र को पार कर श्रीरामजी के हित करने के लिये तुम्हारी उत्तम भुजायें पुल के समान हैं इससे तुम्हारी जय हो। हे उर्मिला के पति! कल्याण मंगल के घर हो तुलसीदास के दोषों को तो भस्म करने के कारण ही हो॥ ३८॥

जयति भूमिजारमणपदकञ्जमकरंदरसरसिकमधुकर भरत भूरिभागी। भवनभूषन भानुवंशभूषणभूमिपालमणि रामचन्द्रा-

नुरागो ॥ जयति विबुधेश धनादि दुर्लभ महाराजसम्भ्राज सुखपद विरागी । खड्गधाराव्रती प्रथम रेखा प्रकट शुद्धमति-युवति पतिप्रेमपागी ॥ जयति निरुपाधि भक्ति भावयन्त्रित हृदय बन्धुहित चित्रकूटाद्रिचारो । पादुका नृपसचिव पुहुमि-पालक परमधर्मधुरधीर वरवीर भारी ॥ जयति संजीवनो समय संकट हनूमान धनुबान महिमा बखानी । बाहुबल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़गति जानकीजान जानी ॥ जयति रणअजिर गन्धर्वगणगर्वहर फिर किय राम गुणगाथगाता । माण्डवीचित्तचातकनवाम्बुदवरण शरण तुलसीदास अभय-दाता ॥ ३९ ॥

सीतापति के चरण कमल की धूर के रस में लुभानेवाले भौंरे के समान बड़े भाग्यशाली भरत की जय हो । संसार में भूषण स्वरूप सूर्य वंश के आभूषण राजाओं में मणि और राम के भक्त हो । इन्द्र कुबेर आदि को भी दुर्लभ चक्रवर्ती राज्यपद के सुख से विरागी तुम्हारी जय हो । तरवार के धार सरीखे व्रत करनेवालों में तुम्हारी प्रथम रेख हुई अपनी शुद्ध बुद्धि को स्त्री पति के समान प्रेम रूप राम में मिला दिया। निश्चल भक्ति के भाव में कसे हुए हृदय से श्रीराम जी के लिये चित्रकूट में घूमें इससे तुम्हारी जय हो । राजा स्वरूप खड़ाऊं के मन्त्री होकर पृथ्वी की रक्षा की और उत्तम धर्म के जुए में धैर्य रखकर बड़ी श्रेष्ठ वीरता किये संजीवनी लाने के समय दुःखित हनुमान ने तुम्हारे धनुष बाण की महिमा को वर्णन किये इससे तुम्हारी जय हो । भुजाओं के अत्यन्त बल का प्रमाण अतोल पराक्रम और गुप्त आचरण को राम ही जानते हैं । युद्ध के बीचमें गंधर्वों की सेना का घमण्ड दूर कर फिर राम के गुणों की कथा को गान करनेवाले कर दिया इससे जय हो । माण्डवी के चित्त रूपी चकोर को नये मेघ के समान हो इससे शरण आये तुलसी को अभयदान दीजिये ॥ ३९ ॥

जयति जय शत्रुकरि केशरि शत्रुहन शत्रुतम तुहिनहर किरणकेतू । देव महिदेव महिधेनु सेवक सुजन सिद्ध मुनि सकल कल्याणहेतू ॥ जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रा सुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी । वर्म चर्मासि धनु बाण तूणीरधर शत्रुसङ्कटशमन तव प्रणामी ॥ जयतिलवणाम्बुनिधिकुम्भसम्भव महादनुजदुर्जनदवन दुरितहारी । लक्ष्मणानुज भरतरामसीतारामचरणरेणुभूषितभालतिलकधारी । जयति श्रुतिकीर्तिवल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमित नर्म्मद भक्तभक्तिदाता । दासतुलसी चरण शरण सीदत विभो पाहि दीनार्तसन्तापहर्ता ॥ ४० ॥

शत्रुरूपी अंधेरा और पालाको नाश करने में सूर्य हो, शत्रुरूपी हाथी के लिये सिंह हो हे शत्रुघ्न ! जो तुम्हारी जय हो देवता ब्राह्मण पृथिवी गो भक्त साधु सिद्ध मुनि सब के कल्याण के हेतु हो । सर्वाङ्ग सुन्दर संसार में विख्यात भरत के आज्ञाकारी सुमित्रा के पुत्र हो इससे तुम्हारी जय हो। कवच ढाल खड्ग धनुष बाण तरकस को धारण किये जो शत्रुओं के कष्टनाशक हैं उन शत्रुघ्न को प्रणाम करता हूं । लवणासुर रूपी समुद्र को अगस्त्य के समान हो बहुत बड़े दैत्य व दुष्टों के नाशक हो हे पापों के हरने वाले तुम्हारी जय हो । भरत वे सीताराम के चरणों की धूल से शोभित माथे में तिलक दिये लक्ष्मण के भाई हो । श्रुतकीर्ति के प्यारे हो और दुर्लभ का सुलभ करनेवाले नम्र जनों को सुखदायी और भक्तों को भक्ति देनेवाले हो इससे तुम्हारी जय हो । गरीबों के दुःख और ताप को नाश करनेवाले हो हे प्रभो ! तुलसीदास दुःखी हो चरणों की शरण है रक्षा कीजिये ॥ ४० ॥

जयति श्रीजानकी भानुकुलभानुकी प्राणप्रियवल्लभतरणि भूषण आनंद चैतन्यघन विग्रहाशक्ति अह्लादिनमार-

रूपें ॥ चितचरणचिन्तनि जेहि धरतही दूर हो काम भयकोह मद मोह माया । रुद्र विधि विष्य सुर सिद्धवंदितपदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥ कर्म जप योग विज्ञान वैराग्यलहि मोक्षहित योगि जे प्रभु मनावैं । जयति वैदेहि सबशक्ति शिरभूषणे ते न तव दृष्टि बिन कबहुँ पावैं ॥ कोटि ब्रह्माण्ड जगदीश की ईश जेहि निगम मुनि बुद्धि ते अगम गावैं । विदित यह गाथ अहदानकुलमाथ सौ नाथ तव दान ते हाथ आवैं ॥ दिव्य शत वर्ष जप ध्यान जप शिव धर्‍यो राम गुरुरूप मिलि पथ बतायो ॥ चितै हित लीन लखि कृपा कीनी तबै देवि अतिदुर्लभहिं दरश पायो ॥ जयति श्रीस्वामिनी दामिनी कोटि निज देह दरसै । इन्दिरा आदि दै मत्त गजगामिनी देवभामिनी सबै पांव परसै ॥ दुखित लखि भक्त विनु दरश निजरूप तप यजन जप यतन ते सुलभ नाहीं । कृपाकरि पूर्णनवकंजदललोचना प्रगट भइ जनकनृप अजिर माहीं ॥ रमित तव बिपिन प्रिय प्रेम प्रकटन करन लंकपति व्याज कछु खेल ठान्यो । गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु यतन करि तोहिं मिलि ईश आनन्द मान्यो ॥ हीन तव सुमुख के संग रहि रंक सो विमुख जो दैव नहि नाह नेरो । अधम उद्धरणि यह जानि गहि शरण तव दास तुलसी भयो आय चेरो ॥ ४१ ॥

श्रीजानकी जी की जय हो सूर्य वंश के सूर्य श्रीराम जी की प्राणप्रिया हो और पृथ्वी पर नौका के समान हो। चिदानन्द घन श्रीराम की देह की शक्ति सुन्दरता के सारांश का रूप हो। जिसके चरणों का ध्यान धरते ही चित्त से काम भय क्रोध अहंकार भ्रम मिथ्यापन दूर होता है। शिव ब्रह्मा बिष्णु देवता सिद्धों से वंदित

चरणवाली सब की स्वामिनी राम की शक्ति जय हो। जो योगी मोक्ष के लिये कर्म जप योग से ब्रह्मज्ञान और वैराग्य को पाय ईश्वर को मनाते हैं वे भी बिना तुम्हारी दृष्टि कभी नहीं पाते। हे सब शक्तियों में शिरोमणि सीता जी! तुम्हारी जय हो। करोड़ों संसारी ब्रह्माण्ड के ईश्वरों के ईश्वर जिसको वेद और मुनि लोग बुद्धि से न मिलनेवाले कहते हैं। यह कथा प्रसिद्ध है कि दिन दाता (सूर्य) कुल में श्रेष्ठ वही स्वामी तुम्हारे दिये से हाथ आते हैं। जब शिव ने देवों के सौ वर्ष जप करते ध्यान किया तो श्रीराम जीने गुरुरूप से मिल मार्ग बतलाया कि शक्ति की सेवा करो ॥४१॥

राग केदारा।

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मरिओ सुधि द्यायबी कछु करुण कथा चलाइ। दीन सब अंगहीन क्षीन मलीन अघी अघाइ। नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहइ। बूझिहैं मो है कौन कहिबो नाम दशा जनाइ। सुनत राम-कृपालुके मेरी बिगरिबो बनिजाय। जानकी जन जननि जन की किये बचन सहाइ। दास तुलसी तरै भव तव नाथ गुण गण गाइ ॥४२॥

हे माता! कभी समय पाके कुछ दया की कथा चलाकर मेरी भी सुधि दिलाना। हे प्रभो! एक तुलसी का दास कहा के सब अंगों से हीन गरीब मैला पूरा पातकी आपका नाम लेके पेट भरता है। जब पूंछें वह कौन है तो नाम की दशा जनाकर कहना। कृपालु राम के सुनते ही हमारी बिगड़ी बन जायगी। हे जगन्माता जानकी! तुलसीदास ऐसे सेवक की बचन के सहाय करने से तुम्हारे स्वामी के गुण को गायकर संसार तरेगा ॥ ४२ ॥

कबहुँ समय सुधि द्यायबी मेरी मातु जानकी ॥ जन कहाइ नाम लेत हौं कियेपन चातक ज्यों प्यास प्रेम

पानकी। सरलप्रकृति आप जानिकै करुणानिधान की। निजगुण अरिकृत अनहितो दासदोष सुरति चित रहत न दिये दानकी। बानि बिसारन शील है मानद अमान की। तुलसीदास न बिसारिये मन क्रम वचन जाके सपनेहू गति न आन को॥ ४३ ॥

हे मेरी माता जानकी! कभी समय देख सुधि दिलाना दास कहा कर पपीहा के समान प्रेम पीने का प्यास से प्रण किये नाम लेता हूं। अब भी सीधा स्वभाव श्रीरामजी का जानता हो शत्रु का किया अनभला सेवक का दोष देने का अपना गुण इनकी सुधि चित्त में नहीं रहती है। दूसरे की प्रतिष्ठा करना आप खातिर न करने की टेव हैं और भूलनेवाला स्वभाव है। कहीं तुलसीदास को न भूल जावें जिसको मन बचन कर्म से दूसरे की गति नहीं है॥ ४३ ॥

जयति सच्चित् व्यापकानन्द परब्रह्म विग्रहव्यक्त लीलावतारी। विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोच वश बिकल गुणगेह नरदेहधारी। जयति कोशलाधीश कल्याण कोशलसुता कुशल कैवल्य फलचारु चारी। वेदबोधित कर्म धर्म धरणी धेनु विप्र सेवक साधु मोदकारी। जयति ऋषिमखपाल शमसज्जनशाल शापवशमुनि वधूपापहारी। भंजि भवचाप दलिदापभूपावली महित भृगुनाथ नत माथधारी॥ जयति धार्मिकधुर धीर रघुबीर गुरु मातु पितु बन्धु वचनानुसारी। चित्रकूटाद्रि विन्ध्याद्रि दण्डकविपिन धन्यकृत पुण्यकानन विहारी। जयति पाकारिसुतकाककरतूति फल दानि खनि गर्त गोपित विराधा। दिव्य देवीवेष लखि निशिचरी

जनु बिडंबित करी विश्वबाधा। जयति खर त्रिशिर दूषण चतुर्दशसहस्रसुभट मारीच संहारकर्त्ता। गृद्ध शबरी भक्ति विवश करुणासिन्धु चरितनिरुपाधि त्रिविधार्तिहर्त्ता। जयति मदअन्ध बधि बालि बल शालि बधकरण सुग्रीवराजा। सुभट मर्कट भालु कटक संघटसुजस नमत पद रावणानुज निवाजा। जयति पाथोधिकृतसेतु कौतुक हेतु कालमनअगम लइ ललकि लंका। सकुल सानुज सदल दलित दशकण्ठ रण लोक लोकप किये रहित शंका। जयति सौमित्रिसीतासचिवसहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी। दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल राम भे भूप वैदेहि रानी ॥ ४४ ॥

जो ब्रह्म सत्य ज्ञान आनन्द मे व्यापक है वही देह से प्रकट हो खेलता सा अवतार लिया उस ब्रह्मरूपी श्रीराम की जय हो। ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध मुनीश्वरों को व्याकुलता से उनके संकोच वश निर्मल गुणों के भवन मनुष्य के शरीर को धारण किये। दशरथ के कल्याण करने के लिये और कौशल्या का मंगल करने का मोक्षरूप फल के समान सुन्दर चार स्वरूप को धारण किये इससे जय हो। वेदोंसे समझे हुए कर्म धर्म पृथ्वी गौ ब्राह्मण भक्त और सज्जनों को सुख देनेवाले हो। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षाकर राक्षसों को मार शाप के कारण अहल्या के पाप को दूर किये इससे जय हो। शिवजी के धनुष को खण्डन करके परशुराम समेत और राजाओं के अभिमान का मर्दन करनेवाले बड़ों के भी प्रणाम के योग्य हो इससे तुम्हारी जय हो। धर्मात्माओं और धैर्य धरनेवालों में मुख्य रघुवंशियों में बीर हो इससे तुम्हारी जय हो गुरु पिता माता भाइयों के आज्ञानुसार चलते हो। चित्रकूट पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत दण्डक बन को पवित्र करनेवाले और इन पवित्र बनों में बिहार करनेवाले आपकी जय हो। इन्द्र के पुत्र

जयन्त के पाप कर्म के फल को देनेवाले और गढ्ढा खोदकर विराध राक्षस को गाड़नेवाले संसार को दुःख पहुंचानेवाली शूर्पणखा के नाक कान को काटनेवाले खर दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह हजार बलवान राक्षसों का नाश कर मारीच को गति देनेवाले आपकी जय हो। जटायु और शबरी के प्रेम के आधीन हो दया के सागर अपने साधारण आचार से तीनों तापों को नाश करनेवाले आपकी जय हो। मद से अन्धे कबन्ध को मार कर महाबली बालि को मार कर सुग्रीव को राज्य दिये इससे आपकी जय हो। बानर भालुओं की बली सेना की टाटी लगाकर शरणागत आये विभीषण की रक्षा किये इससे आपकी जय हो। संसार में यश फैलाने के लिये समुद्र में सेतु बांध कर काल के समान अगम लंका को ललकार अपने वश में किया इससे आपकी जय हो। भाई और परिवार तथा मन्त्रियों और सेना सहित रावण को युद्ध में मारकर तीनों लोक आठोंदिक्पालो को निर्भय कर लक्ष्मण सीता और हनुमान आदि भक्तों के सहित पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या को चले इससे आपकी जय हो। जानकी जी रानी हुई और श्रीराम जी राजा हुए और तुलसी दास हुए इसमें सब अयोध्यावासी प्रसन्न हुए आपकी जय हो ॥ ४४ ॥

जयति राजराजेन्द्र राजीवलोचन रामराम कलिकामतरु श्यामशाली। अनय अम्भोधि कुम्भज निशाचरनिकरतिमिर घनघोरखरकिरणमाली। जयति मुनि देव नरदेव दशरत्थकेदेव मुनि वंद्य किय अवधवासी। लोकनायककोकशोकसंकटश मन भानुकुलकमलकाननविकासी। जयति भृंगाररस ताम रस दामद्युतिदेह गुणगेह विश्वोपकारी। सकलसौभाग्य सौ न्दर्य सुखमा रूप मनोभवकोटिगर्वापहारी। जयति सुभग शा रङ्ग सुनिषङ्ग शायक शक्ति चारु चर्म्मासि वरवर्म धारी। ध

मधुर धीर रघुवीर भुजबलअतुल हेलया भूभार हारी। जयति कलधौत मणि मुकुट कुण्डल तिलक झलक भलि भाल विधुवदन शोभा। दिव्य भूषण वसन पीत उपवीत किय ध्यान कल्याणभाजन न कोभा। जयति भरत सौमित्रि शत्रुघ्न सेवित सुमुख सचिव सेवक सुखद सर्वदाता। अधम आरत दीन पतितपातक पीन सकृतनतमात्र कहैं पाहि पाता। जयति जय भुवनदशचारियश जगमगात पुण्यमय धन्य जय रामराजा। चरित सुर सरित कविमुख्यगिरिनिःसरित पिवत मज्जत मुदित सतसमाजा। जयति वर्णाश्रमाचारि बरनारि नर सत्य शम दम दया दान शीला। विगतदुखदोष सन्तोषसुखसर्वदा सुनत गावत रामराज लीला॥ जयति वैराग्यविज्ञानवारांनिधे नमत नर्मद पापतापहर्त्ता। दासतुलसी चरणशरण संशयहरण देहि अवलम्ब वैदेहिभर्त्ता॥ ४५॥

महाराजाधिराज कमल नयन श्रीराम जी का नाम कलियुग के मनोरथरूपी वृक्ष को नाश करनेवाला है इससे तुम्हारी जय हो। अन्यायरूपी समुद्र को सुखाने के लिये अगस्त्य के समान हो और महा घोर अन्धकारके समान राक्षसों की सेना को नाश करने में प्रचण्ड सूर्य के समान हो। मुनि देवता और मनुष्यों के स्वामी महाराज दशरथ के पुत्र हो इससे आपकी जय हो अयोध्या वासियों को सकल चराचर से वन्दनीय किये चकई चकवा के समान इन्द्रादि देवताओंके शोक और दुःख को नाश करनेवाले और सूर्य वंशी क्षत्रियों के कुल कमल को फुलानेवाले हो। शृंगार रस रूपी तालाब में कमल माला के समान चमकने वाली गुणों के घर संसार के उपकार करनेवाली यह आपकी शरीर है इससे आपकी जय हो सकल सौभाग्य [सुलक्षणता] और सुन्दरता तथा आनन्दके स्वरूप हो और करोड़ों कामदेव के अभिमान को नाश करनेवाले

सुन्दर धनुष बाण तरकस सारंग ढीले तलवार और उत्तम कवच धारण किये हो इससे तुम्हारी जय हो। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ रघुवंशियों में बलवान हो और अपनी भुजाओं के अतुलबल के खेलवाड़ से ही पृथिवी के बड़े भारी भार को नष्ट कर दिये हो रत्नों से जटित आपके मुकुट और कुण्डल हैं सुन्दर मस्तक पर शोभित तिलक चमकता और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है इससे तुम्हारी जय हो। दिव्य भूषण वस्त्र पहिने और पीले जनेऊ को ध्यान करने से कौन मुक्ति का पात्र नहीं हुआ। हे सब को सुख देनेवाले! आपकी जय हो। आप का सुन्दर मुख भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न से सेवा किया हुआ मन्त्री और भक्तों को सुख देनेवाले हैं। नीच क्लेशित गरीब और भ्रष्ट महापातकियों से एक बार प्रणाम कर के भी 'रक्षा करो' ऐसा कहने से रक्षा करते हो हे राजा राम तुम धन्य हो तुम्हारा पवित्र यश चौदहों भुवन में विख्यात है इससे तुम्हारी जय हो। मुख्य कवि बाल्मीकि रूपी पर्वत से निकली हुई जो नदी उसी को सन्त समाज पीते नहाते और सुखी होते हैं। राम चरित्र रूपी राज्य में चारों वर्ण के स्त्री पुरुष सदा सुनते व गाते तथा सत्य शम दम दया दानशील होते और दुःख दोष से छूटते संतोषी व सुखी होते हैं इससे तुम्हारी जय हो। ज्ञान वैराग्य के सागर हो भक्तों के सुखदायी पाप ताप को हरनेवाले और संशय को नाश करनवाले हो हे सेनापति! तुलसीदास को चरण की शरण दीजिये॥ ४५॥

राग गौरी

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरणभवभयदारुणं। नव कंज लोचन कंजमुख कर कंज पदकंजारुणं। कंदर्प अगणित अमितछबि नवनीलनीरजसुंदरं। पटपीत मानहुं तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुतावरं। भजु दीनबन्धु दिनेश दानवदैत्य बंशनिकन्दनं। रघुनन्द आनंदकन्द कोशलचन्द दशरथनन्दनं। शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंगविभूषणं।

आजानु भुज शरचापधर संग्रामजितखरदूषणं । इति वदति तुलसीदास शंकर शेषमुनिमनरंजनं। मम हृदयकंज निवास करु कामादि खलदल गंजनं ॥ ४६ ॥

अरे मन दयालु ! श्रीरामजी का भजन करो जो संसार के कठिन भय को दूर करते हैं। नये कमल के पत्र के समान नेत्र कमल के समान मुख कमल के साथ तथा चरणों की शोभा है। जिन अनगिनत कामदेवों के समान अपार शोभा है और नये तथा काले मेघ के समान सुन्दर मानो पवित्र पीताम्बर बिजली के समान चमकता है ऐसे जानकीपति को प्रणाम करता हूं। सूर्य के समान उस दीनबन्धु को स्मरण करो। जो दुष्ट दैत्यों के वंश को नाश करनेवाले हैं। और रघुवंशियो को सुख देनेवाले आनन्द के मूल अयोध्या को चन्द्रमा के समान शीतल करनेवाले दशरथ जी के पुत्र हैं। जिनके शिर में मुकुट कानों में कुण्डल और सुन्दर तिलक है अंगों में अनेक प्रकार के आभूषण हैं। जंघा पर्यन्त लम्बी भुजा धनुष बाण धारण किये समर में खरदूषण को जीतनेवाले हैं। शिव शेष तथा मुनियों के मन को आनंद देनेवाले और कामादि दुष्ट शत्रुओं को नाश करनेवाले हैं। इस लिये तुलसीदास कहते हैं कि हमारे हृदय कमल में वास करो ॥ ४६ ॥

राग रामकली।

सदा जपु रामजपु रामजपु रामजपु रामजपु मूढ़मन बारबारं। सकल सौभाग्य सुखखानि जिय जानि शठ मानि विश्वास वद वेदसारं। कोशलेन्द्र नवनीलकंजाभतनु मदन रिपुकंजहृदिचंचरीकं। जानकीरमन सुख भवन भुवनैक प्रभु समभजन परमकारुणीकं। दनुजवनधूमध्वज पीनआजानुभुज दण्डकोदण्डवरचण्डबानं। अरुणकर चरणमुखनयनराजीव गुण अयन बहुमयन शोभानिधानं। वासनावृन्दकैरवदिवाकर काम-

क्रोध मदकञ्जकाननतुषारं। लोभअतिमत्तनागेन्द्रपंचाननं भक्त हितहरणसंसारभारं। केशवं क्लेशहं केशवंदितपदद्वन्द्वमन्दाकिनीमूलभूतं। सर्वदानन्दसन्दोह मोहाघोरसंसारपाथोधिपोतं। शोक संदेह पाथोदपटलानिलं पापपर्वतकठिनकुलिशरूपं। सन्तजन कामधुकधेनु विश्रामपद नाम कलिकलुषभंजन अनूपं। धर्म्मकल्पद्रुमाराम हरिधामपथिसंबलं मूलमिदमेव एकं। भक्ति वैराग्य विज्ञान शम दान दम नामआधीन साधन अनेकं। तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं। श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोकगत नामबल विपुल मतिमलिनपरसी। त्यागि सब आस संत्रास भवपासअसिनिशित हरिनाम जपु दासतुलसी॥ ४७॥

रेमूर्ख मन! बारबार राम जप राम जप राम जप सदैव राम जप। रेमूढ! सब प्रकार से उत्तम सुखों की खानि चित्त में जान विश्वास पूर्वक वेदों के सारांश श्रीरामजी का भजन करो। अवधराज श्रीराम नवीन काले कमल के समान शिव जी के हृदय में भौंरे के समान रहते हैं। सीता जी में रमण करते हुए सुखों के मन्दिर लोकों के स्वामी हैं युद्ध में विजयी परमदयालु हैं। दैत्यरूपी बन को जलाने में अग्नि के समान हैं जंघा पर्यन्त मोटी भुजाओं में धनुष बाण को धारण किये हैं। मुख हाथ तथा चरण प्रातःकाल के सूर्य के समान लाल हैं गुणों के मन्दिर और अनगिनत काम की शोभा के स्थान हैं। संचित कर्मों के समूह रूपी कमलिनी को सूर्य के समान नष्ट करते हैं। काम क्रोध और अहंकाररूपी कमलबन को नाश करने में पाला के समान हैं। अति लोभ रूपी मतवाले गजराज को सिंह के समान हैं भक्तों के हित के लिये संसार के भार को हरते हैं। इन्हीं क्लेश को हरनेवाले

नारायण के दोनों चरण जो ब्रह्मा और शिव से वन्दित हैं जो कि गंगाजी के मूल स्थान हैं। नित्य रूपी आनन्द के मेघ मोह को नाश करनेवाले कठिन संसाररूपी समुद्र में जहाज हैं। शोक और सन्देह रूपी मेघों के उड़ाने के लिये वायु के समान हैं और कठिन पाप रूप पर्वतों के बज्र स्वरूप हैं अनुपम नाम (राम) साधु जनों को कामधेनु और विश्राम का स्थान है। कलि के पापों को नाश करनेवाला धर्मरूपी कल्पवृक्ष का बगीचा बैकुण्ठ के मार्ग का सफर खर्च यही एक मूल है। भक्ति वैराग्य ज्ञान शम दम दान का साधन नाम के आधीन है उसी से तप हवन सभी दान का फल मिलता है। उसने सब कर्मजाल कर लिये कि जिसने काल को देखकर निर्दोष श्रीराम नामरूपी वृक्ष अमृत को बारबार पान किया है। चण्डाल पापी दुष्ट मुसहर मुसलमान आदि बहुतेरे अज्ञानता में लिपटे हुए नाम के बल से बैकुण्ठ गये इससे हे तुलसीदास! सब आशा छोड़कर दुःख देनेवाले संसार जाल को काटने वाले तलवार श्रीरामजी के नाम का स्मरण करो ॥ ४७ ॥

ऐसी आरती रघुबीर की करहि मन। हरण दुखद्वन्द्व गोविन्द आनन्दघन। अचरचर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति बासना धूप दीजै। दोप निजबोध गतक्रोधमद मोहतम प्रौढ़अभिमानचितवृत्तिछीजै। भाव अतिशय विशद प्रवर नैवेद्य शुभ श्रीरमनपरमसंतोषकारी। प्रेम ताम्बूल गतशूल संशयसकल बिपुलभववासनाबीजहारी। अशुभशुभ कर्मघृत पूर्णदशवर्तिका त्यागपावकसतोगुणप्रकासं। भक्तिवैराग्यविज्ञानदीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं। विमलहृदि भवनकृत शांतिपर्यंकशुभशयनविश्राम श्रीरामराया। क्षमाकरुणा प्रमुख तत्र परिचारिका यत्र हरि तत्र नहीं भेदमाया ॥ येहि आरती निरत सनकादि श्रुति शेष शिव देवऋषि अखिल

मुनि तत्त्वदरसी। करै सोइ तरै परिहरै रागादि मल वदति इति अमलमति दासतुलसी ॥ ४८ ॥

रे मन! दुःखों को हरण करनेवाले और इन्द्रियों को ज्ञान देनेवाले आनन्द की राशि श्रीराम हैं ऐसे रघुबीर (श्रीराम) की आरती कर। चराचर स्वरूपी सदा सब में व्याप्त रहते हैं इसी वासना से सुगन्ध की धूप दीजै। आत्मज्ञान हो दीपक है क्रोध मद मोह रूप अन्धकार को नाशक और बढ़े हुए अहंकार युक्त चित्तवृत्ति है घट के नष्ट होता है। अत्यन्त निर्मल उत्तम भाव ही अच्छा नैवेद्य है जो कि श्रीराम को अतिमन्तुष्ट करती है। प्रेम ही पान है जिससे सन्देह रूपी पीड़ा सब दूर के अत्यन्त संसारी वासना का बीज नष्ट हो जाना है। अच्छा बुरा कर्मही घी है दशों इन्द्रियों की बत्तो बोर त्यागरूपी अग्नि में जलाकर सतो गुण का उजेला करो। भक्ति वैराग्य ज्ञानही दीपावली है ऐसी आरती भगवान को कर निर्मल हृदय रूपी मन्दिर में शान्ति का अच्छा पलंग बना के श्रीराम राजा को आराम से सुलाइये। वहां क्षमा दया आदि दासी कर दो। जहां राम है वहां माया का कुछ भेद नहीं है इस आरती में सनकादि वेद शेष नाग शिव देवता ऋषि मुनि जो कि दूर थीं हैं वह सदा लगे रहते हैं तुलसीदास यह कहता है कि जो निर्मल बुद्धिवाला करेगा वह काम आदि दोषों की मलीनता दूर करके तर जायगा ॥ ४८ ॥

हरति सब आरती आरती रामकी। दहति दुख दोष निर्मूलिनी कामकी। सुभग सौरभ धूप दीप वर मालिका उड़त अघविहंग सुनि ताल करतालिका। भक्त हृदिभवन अज्ञानतमहारिणी। विमलविज्ञानमय तेज विस्तारिणी। मोह-मदकोहकलिकञ्जहिमयामिनी। मुक्ति की दूतिका देहद्युति दामिनी। प्रणतजनकुमुदवन इन्दुकरजालिका। तुलसि अभिमानमहिषेश बहुकालिका ॥ ४९ ॥

राम की यह आरती सब दुःखों को हरती है काम को जड़ से उखाड़ती है सब प्रकार के दोषों को भस्म करती है। सुन्दर सुगन्धित धूप और उत्तम दीपावली की करताल ध्वनि सुन पाप-रूप पच्छी उड़ जाते हैं। भक्तों के हृदयरूपी मन्दिर में अज्ञान का अंधेरा मिटाती और निर्मल आत्मज्ञानमय तेज को फैलाती है। मोह मद क्रोधरूपी कमल की कलियों को जाड़े की रात्रि के समान है और मुक्ति की दूती है। देह बिजली के समान चमकती भक्त रूप कमलबन को चन्द्रमा के किरण जाल के समान है। तुलसी का अहंकार स्वरूप महिषासुर की नाशिनी अनेक कालिका देवी के समान हैं ॥ ४९ ॥

दनुज बनदहन गुणगहन गोविन्द नन्दादि आनन्द-दाताविनाशी। शम्भु शिव रुद्र शङ्कर भयंकरभीम घोर तेजायतन क्रोधराशी। अनन्त भगवन्त जगदन्त अन्तक-त्रासशमन श्रीरमण भुवनाभिगमम्। भूधगधीश जगदीश ईशान विज्ञान घनज्ञान कल्याणधामम्। वामनाव्यक्त पावन परावरविभो प्रगटपरमात्मा प्रकृतिस्वामी। चन्द्रशेखर शूल-पाणि हर अनघ अज अमित अविछिन्न बृषभेषगामी। नीलजलदाभतनुश्याम बहुकामछबि राम राजीवलोचन कृपाला। कम्बुकर्पूर बपुधवल निर्म्मल मौलि जटा सुरतटि-निसित सुभगमाला। बसन किंजल्कधर चक्र शारंगदर कंज कौमोदकी अतिविशाला॥ मारकरिमत्तमृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरणसंसारज्वाला। कृष्ण करुणाभवन दमन-कालोयबल बिपुल कंसादि निर्बंशकारी। त्रिपुरमद भंगकर मत्तगज चर्म्मधर अन्तकोरगग्रसनपन्नगारी। ब्रह्म व्यापक अकल सकल पारपरमहित ज्ञानगोतीत गुणवृत्ति हर्त्ता। सिंधुसुतगर्वगिरि वज्र गौरेश भव दक्षमखअखिल विध्वंस-

कर्त्ता। भक्तिप्रिय भक्तजनकामधुकधेनु हरि हरन दुर्घट विकट विपतिभारी। सुखदनर्मद वरद विरज अनवद्यखिल बिपिन आनन्द वीथिन विहारी। रुचिर हरिशंकरी नाम मन्त्रावली द्वन्द्वदुखहरनि आनन्दखानी। विष्णुशिव लोक सोपानसम सर्वदा वदति तुलसीदास विशद बानी॥ ५० ॥

गुणों से भरे हुए दैत्यरूपी बन को भस्म करनेवाले नन्द आदि गोपों को आनन्द देनेवाले नित्य स्वरूप गोपाल हैं। मंगल करनेवाले शिव रुद्रगणों में शंकर दुष्टों को भय देनेवाले महा-भयानक क्रोध की राशि तेज के स्थान हैं। जैसे विष्णुजी अपार ऐश्वर्यों से युक्त हैं और संसारनाशक यम की पीड़ा को नष्ट करते संसार में सर्वत्र स्मरण करते हैं। वैसे ही शिव जी कैलास के स्वामी जगदीश्वर ज्ञानों से सघन ब्रह्म विद्यारूप मंगलों के स्थान हैं। जैसे भगवान वामन का स्वरूप धारण करके माया के पवित्र कर्ता सूक्ष्म स्थूलरूप समर्थ परमात्मा माया के स्वामी हैं। वैसे ही शिव जी मस्तक में चन्द्रमा को धारण किये हाथ में त्रिशूल लिये नन्दीश्वरपर चलते भी निर्दोष अजन्मा अनन्तरूप अद्वितीय हैं। जैसे कमल नयन राम काले मेघ के समान कान्ति वाले सो बली देहधारण किये अनेक कामदेवों की शोभा से युक्त कृपा के स्वरूप हैं। वैसे ही शिव जी शंख तथा कर्पूर के समान उज्वल देह को धारण किये और जटा में गंगा तथा सफेद फूलों की माला को धारण किये हैं, विष्णु जी केसारिया वस्त्र पहिने चक्र धनुष शंख कमल बहुत बड़ी गदा लिये हैं। शिवजीको प्रणाम करता हूं। कामरूप मतवाले हाथी को नाश करने में सिंह के समान संसारी ज्वालाओं को दूर करने के लिये त्रिनेत्र शिव जी भी वैसे ही हैं। जैसे दया के मन्दिर कृष्ण काली नाग के गर्व को हरण करनेवाले बहुतेरे दुष्ट कंस आदिको नाश करने वाले मतवाले हाथी का चर्म ओढ़े अंधकार स्वरूप सर्प का ग्रास करने में गरुड़ के समान हैं। जैसे रामजी ब्रह्मरूप से व्यापक

निर्गुण सगुण से परे परम हितैषी इन्द्रिय ज्ञान से परे गुणों के वृत्ति को हरण करनेवाले हैं। विष के पर्वत के समान गर्व को वज्र से नाश करनेवाले और दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले हैं। जैसे भक्ति के प्रेमी राम भक्तों के लिये कामधेनु के समान हैं और महा कठिन विपत्ति को नाश करनेवाले हैं। वैसे ही शिवजी सुख देनेवालों को भी आनन्द देनेवाले और वरदान देने वाले रजोगुण से परे सब भांतिसे श्रेष्ठ काशी की गलियों में रहते हैं। हरिहर नाम की सुन्दर मन्त्रावली द्वन्द्व दुःखों को हरण करनेवाले आनन्द की खानि हरिहर लोक की सीढ़ी के समान नित्य हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा निर्मल सरस्वती कहती हैं॥ ५० ॥

भानुकुलकमलरवि कोटिकंदर्पछबि कालकलिव्यालमिव वैनतेयं। प्रबल भुजदण्डपरचण्ड कोदण्डधर तूणवर विशिख बलमप्रमेयं। अरुणराजीवदलनयन सुषमाअयन श्यामतनु-कांति वरवारिदाभं। तप्तकांचनवस्त्र शस्त्रविद्या निपुण सिद्ध सुरसेव्य पाथोजनाभं। अखिललावण्यगृह विश्वविग्रह परम-प्रौढ़ गूढ़गुण महिमाउदारं। दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्ग अपवर्ग पति भग्नसंसारपादपकुठारं। शापवशमुनिवधूमुक्तकृत विप्रहितयज्ञरक्षणदक्ष पच्छकर्ता। जनकनृप सदसि शिवचाप भंजन उग्रभार्गवगर्वगरिमापहर्त्ता। गुरुगिरागौरव अमरसु दुस्त्यजराज्यत्यक्त सहित सौमित्रि भ्राता। संग जनकात्मजा-मनुजमनुसृत्य अज दुष्टवधनिरत त्रैलोक्यत्राता। दण्डकारण्यकृतपुण्यपावनचरण हरणमारीचमायाकुरंग। बालिबलमत्त गजराजइवकेशरी सुहृदयसुग्रीवदुखराशिभंगं। ऋच्छमर्कटविकट सुभट उद्भट समर शैलसंकास रिपुत्रासकारी। बद्धपाथोधि

सुरनिकरमोचन सकुलदलनदशशीशभुजबीसभारी । दुष्टबिबुधारि संघात अपहरणमहिभार अवतारकारणअनूपं। अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्मसुमिरामि नरभूपरूपं। शेष श्रुति शारदा शम्भु नारद सनक गनत गुण अन्त नहिं तत् चरित्रं । सोइ राम कामारिप्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी त्रास निधिबहित्रं ॥ ५१ ॥

हे सूर्य बंशीरूपी कमलों के सूर्य ! करोड़ों काम की शोभावाले कालियुग रूपी सर्प को गरुड़ के समान हो । बलिष्ठ भुजाओं में अति कठिन धनुष बाण को लिये और तरकस धारण किये अतुलित बलवान हो । लाल कमल के समान नेत्र हैं सुन्दरता के भवन हैं उत्तम मेघ के कान्ति के समान सांवली देह की चमक है । तपाये सोने के सदृश वस्त्र हैं शस्त्रविद्या में प्रवीण सिद्ध देवताओं से पूजित नारायण हो । और संपूर्ण सुन्दरता के मन्दिर संसार स्वरूप हो अत्यन्त दृढ़ तीनों गुणों से छिपे हुए उदार महिमावाले हो । कठिन और दुस्तर किलावाले स्वर्ग और मोक्ष के स्वामी हो तथा संसार रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी हो। शाप के वश में पड़ी अहल्या को मुक्तकर विश्वामित्र के यज्ञ के चतुर रक्षक हो के उनका पक्ष किये । राजा जनक की सभा में शिव का धनुष तोड़ परशुरामजी के कराल गर्वकी गुरुता को हरण किया । और पिता के बचन से देवताओं को भी छोड़ने में कठिन ऐसे राज्य को छोड़कर लक्ष्मण और सीता को साथले दुष्टों को मार तीनों लोक की रक्षा किया। हे अज ! अपने पवित्र चरणों से दण्डकारण्य को पवित्र कर माया के हरिण मारीच को मारा ।मतवाले गजेन्द्र के समान बालि के बल को सिंह के समान नष्ट किया और मित्र सुग्रीव के दुःखों को दूर किया । बानर भालुओं की प्रचण्ड सेना को ले युद्ध में शत्रु को त्रास दिया । समुद्र में सेतु बांध देवताओं को छुड़ाकर बीस भुजावाले रावण को परिवार सहित नष्ट कर दिया । दुष्ट दैत्यों के मारने से ही पृथिवी का भार दूर करने को

अवतार लिया है अनुपम कारण रूप तुम निर्मल निर्दोष अद्वितीय निर्गुण नर राज श्रीराम सगुण स्वरूप हो। ऐसे ब्रह्म का ध्यान करता हूं। शेष नाग वेद सरस्वती शिव नारद सनक आदि उनके चरित्र व गुणों को गिनते हैं परन्तु उसका अन्त नहीं पाते। वही शिव के प्यारे अयोध्या नाथ राम सदा तुलसीदास को दुःखरूपी समुद्र में जहाज होवें॥ ५१॥

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितमतरणि तारुण्यतनुतेजधामं। सच्चिदानन्द आनन्दकन्दाकरं विश्राम रामाभिरामं। नीलनव वारिधरसुभगशुभकान्तिकर पीतकौशेयवरवसनधारी। रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि भानुशतसदृश उद्योतकारी। श्रवणकुण्डल भालतिलक भ्रूरुचिर अति अरुण अम्भोजलोचनविशालं। वक्त्र अवलोकि त्रैलोक्यशोकापहं माररिपुहृदयमानसमरालं। नासिकाचारु सुकपोल द्विजवज्र द्युतिअधरबिम्बोपमा मधुरहासं। कण्ठदर चिबुकवर वचनगम्भीरतर सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं। सुमनसुविचित्रनवतुलसिकादलयुतं मृदुलवनमाल उरभ्राजमानं। भ्रमत आमोदवश मत्त मधुकरनिकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं॥ सुभग श्रीवत्स केयूर कंकणहार किंकिणीरटनि कटितटरसालं। वामदिशि जनकजासोनसिंहासनं कनकमृदुवल्लिमिव तरुतमालं। आजानुभुजदण्ड कोदण्डको मण्डित वामबाहु दक्षिण पाणि बाणमेकं। अखिल मुनिनिकर सुर सिद्ध गन्धर्व वर नमत नरनाग अवनिप अनेकं। अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ सर्वेश खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं। प्रणतजनखेदविच्छेदविद्यानिपुण नौमि श्रीराम सौमित्रिसाकं। युगल पदपद्ममुख सद्मपद्मालयं चिह्नकुलिशादिशोभातिभारी

हनुमन्त हृदि विमलकृतपरममन्दिर सदा दासतुलसी शरण-शोकहारी ॥ ५२ ॥

जानकीनाथ रघुवंशियों के स्वामी विषय रूपी अन्धकार को नाश करने में प्रचण्ड सूर्य हैं। देह तेज का स्थान है सत् चित आनन्द स्वरूप आनन्द के मूल की खानि हैं। संसार के आधार सब में रमण करनेवाले श्रीराम हैं। नये और नीले मेघ के समान सुन्दर प्रकाश करनेवाले और उत्तम पीताम्बर को धारण करनेवाले हैं। मणियों से जटित मुकुट शीश पर धारण किये सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाश करनेवाले हैं। कानों में कुण्डल माथे में तिलक बड़ी सुन्दर भौंहैं लाल कमल के समान बड़े नेत्र हैं। मुख का दर्शन तो तीनों लोक के शोक को नाश करनेवाला है सो शिवजी के हृदय में मानस मराल के समान रहते हैं। सुन्दर नासिका सुन्दर कपोल और वज्र के समान कठोर दांत हैं और ओठों की शोभा कुन्दुरू के समान है मधुर मुसकाना शंख साकंठ उत्तम ठेढ़ी है और अति गंभीर बाणी जिसमें सत्य के नियम से बोलते हैं और देवताओं के भय को नाश करनेवाले हैं। सुन्दर अनेक रंग के फूल नये तुलसीदल के साथ कोमल वनमाला हृदय में सुशोभित है जिसमें आनन्द वश मतवाले भौंरों के झुण्ड घूमते हुए मधुरध्वनि से गान करते हैं। सुन्दर भृगुलता से शोभित केयूर कंकण हार पहिने कमर में करधनी की रसीली ध्वनि होती है। सिंहासन की बांई ओर सीताजी बैठी ऐसी शोभित हैं जैसे काले तमाल के वृक्षों में कोमल सोने की लता लगी हो। ऐसे बायें हाथ लगे हो जिसमें जंघा तक लटकी भुजा है जिसका धनुष बाण से हाथ विभूषित है दाहिने हाथ में एक बाण को धारण करनेवाले श्रीरामजी हैं। सब मुनिगण देवता सिद्ध उत्तम गन्धर्व मनुष्य नाग राजा अनेकों जिसको प्रणाम करते हैं। निष्पाप अद्वितीय सबको जाननेवाले तथा सब के स्वामी हैं। मुझको तो निश्चय सब ओर मंगल के दाता हैं शरणागत के दुःख काटने की विद्या से चतुर हैं ऐसे लक्ष्मण सहित श्रीरामजी को प्रणाम है। दोनों

चरण कमल सुख के मन्दिर लक्ष्मी के स्थान अंकुश आदि लक्षण महा शोभा से युक्त हैं। सदैव निर्मल हनुमान के हृदय में अधिकता से अपने रहने का मन्दिर बनाये हैं ऐसे श्रीरामजी के तुलसीदास शरण हैं उनके क्लेशों को दूर करें ॥ ५२ ॥

कोशलाधीशजगदीशजगदेकहित अमितगुण विपुल-विस्तारलीला। गायन्ति तव चरित सुपवित्र श्रुति शेष शुक शम्भु सनकादि मुनि मननशीला ॥ वारिचरवपुषधर भक्तनिस्तारपर धरणिकृतनाव महिमातिगुर्वी। सकलयज्ञांशमय उग्रविग्रहक्रोड मर्दि दनुजेश उद्धरण उर्वी ॥ कमठ अतिविकटतनुकठिनपृष्ठोपरी भ्रमत मन्दर कण्डुसुख मुरारी। प्रगटकृत अमृत गोइन्दिरा इन्दु वृन्दारकावृन्द आनन्द-कारी ॥ मनुज सिद्ध सुर नाग त्रासक दुष्ट दनुज द्विज-धर्ममर्यादहर्त्ता। अतुलमृगराजवपुधरित विद्दरितअरि भक्त प्रहलादअह्लादकर्त्ता ॥ छलनबलिकपट वटुरूप वामन ब्रह्म-भवनपर्यन्त पदतीनकरणं।चरणनखनीर त्रैलोक्यपावनपरम विधिजननी दुसहशोकहरणं ॥ क्षत्रियाधीशकरिनिकरवर-केशरी परशुधरविप्रससि जलदरूपं। बीसभुजदण्डदशशीश-खण्डन चण्डवेगशायक नौमि रामभूपं ॥ भूमिभरभारहर प्रगटपरमात्मा ब्रह्मनररूपधर भक्तहेतू। वृष्णिकुलकुमुदराकेश राधारमण कंसवंशाटवीधूमकेतू ॥ प्रबलपाखण्डमहिमण्डला कुल देखि निन्द्यकृत अखिलमखकर्मजालं। शुद्धबोधैकघन ज्ञानगुणधाम अज बुद्धअवतार वन्दे कृपालं ॥ कालकलि-जनितमलमलिनमन सर्वनर मोहनिशिनिविडयवनान्धकारं। विष्णुयशपुत्र कल्कीदिवाकरउदित दासतुलसी हरणविप-तिभारं ॥ ५३ ॥

हे अवधराज! आप जगदीश्वर हो संसार के एक हितैषी अनन्त गुणवाले हो आप के अनन्त चरित्र हैं। वेद शेष नाग शुकदेव शिव सनकादि विचारशील मुनिगण आप के पवित्र चरित्रों का सदा गान किया करते हैं। मत्स्य (मछली) का रूप धारण कर भक्तों के उद्धार के लिये पृथिवी का नाव बनाया यह महिमा अति कठिन है। सब यज्ञों का अंशरूप बाराह की कराल देह से हिरण्याक्ष को मारकर पृथिवी का उद्धार किया। बड़ी भयानक कच्छपकी शरीर को धारणकर ऐसी कठोर पीठ बनाया जो समुद्र मथन के समय मन्दराचल पहाड़ को हिलने से खुजलाने के समान मालूम होता था। हे मुरारे! उसी से अमृत गौ लक्ष्मी चन्द्रमा आदि को उत्पन्न कर देवताओं को आनन्द दिया। और मनुष्य मुनि सिद्ध देवता नागों को दुःख देनेवाले ब्राह्मणों के धर्म और मर्याद को हरण करनेवाले दुष्ट हिरण्यकशिपुको अनुपम नृसिंह का देह धारण कर चीर डाला। फिर बलि को छलने को कपट से ब्रह्मचारी वामन रूप हो ब्रह्मलोक तक तीन पैर किये। चरण के अंगूठेका जल धो लिया जो तीनों लोक में अति पवित्र है। देवमाता अदिति के दुःख शोक को दूर करनेवाले हो। हाथी के समान क्षत्रिय राजाओं के समूह को परशुराम के देह को धारण कर विप्र रूप खेती को सींचने में मेघ के समान हो। रावण के बाण भुजा और दश शीस को खण्डन करने के लिये प्रचण्ड बाण को धारण करने-वाले श्रीरामजी को प्रणाम है। पृथिवी के भार को हरनेवाले भक्तों के लिये अवतार लिये परमात्मा ब्रह्म स्वरूप होकर मनुष्य का देह धारण किये। यदुवंशियों के कुल रूपी कमल को चन्द्रमा रूप कृष्ण होके कंस के वंश रूपी बन को जलाने में अग्निरूप हुए। महा पाखण्ड से पृथिवी मण्डल को व्याकुल देख सब यज्ञों के कर्म जालकी निन्दा किया। ऐसे शुद्ध विद्या स्वरूप ज्ञान रूपी बादल गुणों के आधार अजन्मा कृपालु बुद्ध अवतार की बन्दना करता हूं। कलियुग में हुए पापों से मलीन मन सब मनुष्यों के मोह यवन रूप महारात्रि के अंधेरे को विष्णुयश के पुत्र कल्कि रूप सूर्य

उदय होके तुलसीदास कहते हैं कि इस संसार के दुःख भार को नाश करेंगे ॥ ५३ ॥

सकलसौभाग्यप्रद सर्वतोभद्रनिधि सर्व सर्वेश सर्वाभिरामं । शर्वहृदिकंजमकरन्दमधुकर रुचिररूप भूपालमणि नौमि रामं ॥ सर्वसुखधाम गुणग्राम विश्रामपद नामसर्वासपद मतिपुनीतं । निर्मल शान्त सुविशुद्ध बोधायतन क्रोधमद-हरण करुणानिकेतं ॥ अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं । प्राकृत प्रगट परमात्मा परम-हित प्रेरकानन्त वन्दे तुरीयं ॥ भूधरं सुन्दरं श्रीवरं मदन मदमथन सौन्दर्यसीमातिरम्यं । दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं ॥ सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट सन्तुष्ट संकष्टहारी । धर्ममणि ब्रह्मकर्मबोधैक विप्रपूज्य ब्रह्मण्यजनप्रिय मुरारी ॥ नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानन्दमूलं । सर्वरक्षक सर्वभक्तकाध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि भक्तानुकूलं ॥ सिद्धसाधकसाध्य वाच्यवाचकरूप मन्त्रजापकजाप्य सृष्टि-स्रष्टा । परमकारण कञ्जनाभ जलदाभतनु सगुण निर्गुण सकलदृश्यद्रष्टा ॥ व्योमव्यापक विरज ब्रह्म वरदेश वैकुण्ठ वामन विमल ब्रह्मचारी । सिद्धवृन्दारकावृन्दवन्दित सदा खण्डिपाखण्ड निर्मूलकारी ॥ पूर्णानन्दसन्दोह अपहरण सम्मोह अज्ञानगुणसन्निपातं । वचनमनकर्मगत शरण तुलसीदास त्रासपाथोधिइव कुम्भजातं ॥ ५४ ॥

हे सब प्रकार के आनन्द को देनेवाले! आप सब कल्याण के समुद्र सब में रहनेवाले हो । शिव के हृदय रूप कमल के रसमें भौंरा

के समान सुन्दर स्वरूप राजाओं में रत्न ऐसे श्रीराम जी को प्रणाम है। सब सुखों के स्थान गुणों के राशि हो आप के चरण सुखको देनेवाले हैं सब के प्रतिष्ठा रूप और पवित्र नामवाले हो। निर्मल शान्त रूप अति शुध्द ज्ञान के स्थान क्रोध और अभिमान को हरण करनेवाले दया के मन्दिर हो। अजेय एकरस इन्द्रियों से परे अलख समर्थ एक निर्दोष अजन्मा अद्वितीय हो। माया से उत्पन्न हो परमात्मा अहितैषी प्रेरक अनन्त तुरीय स्वरूप आप की बन्दना करता हूँ। पृथिवी के आधार सुन्दर लक्ष्मी कान्त काम के अभिमान को नष्ट करनेवाले सुन्दरताकी सीमा बहुत रमणीक हो। दुःख के मिलने से और कठिनता से देखे जातेहो तुमारी तर्कना कठिन है संसार के भ्रमनाशक प्रेमसे सुलभ हो के मिलते हो। सत्यही करते सत्यही में लगते सत्यही में नियम दृढ़रूप व सन्तुष्ट हो। कष्टों को दूर करने के लिये धर्म का कवच पहिने वेद व कर्म के एकही ज्ञान हो ब्राह्मणों के पूज्य ब्रह्म-भक्तों के प्रेमी हो हेमुरारी! तुम सत्यरूप ममता रहित सदा मुक्त हो। हे हरे! अभिमान शून्य सघन ज्ञान से भरे हो और आनन्द के मूल हो। सबके रक्षक और काल के भी भक्षक और सब की आत्मा के पुंजहो तुम्हारे तेज छिपे हुए हैं तुम सदा भक्तों के अनुकूल रहते हो। सिध्दि साधन कर्तासाधनकी वस्तु नामी नाम स्वरूपमंत्र जपकर्ता जपनेकी वस्तु सृष्टिकर्ता इन के परम कारणहो। हे पद्मनाभ! मेघों की कान्ति के समान चमकनेवाली देह से तुम सगुण निर्गुण सभी हो। सब देखने की वस्तु को देखनेवाले हो आकाश के समान व्याप्त हो बैकुण्ठ तुम्हारा देश है। निर्मल ब्रह्म चारी वामन रूप सदा सिद्ध और देवगणों से बन्दना किये जाते हो। पाखण्ड को खण्डन कर निर्मूल करनेवाले पूर्ण आनन्द की राशि हो। माया कृतमोह को नाश करनेवाले और अविद्या कृत गुणों के नाशक हो। मन बचन कर्म से शरण में आये हुए तुलसीदास के क्लेशरूप समुद्र को शोषनेवाले अगस्त्य के समान हो॥५४॥

विश्वविख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्वमर्यादव्याला

रिगामी । ब्रह्म वरदेशवागीश व्यापक विमल विपुलबलवान निर्वाणस्वामी ॥ प्रकृतिमहत्तत्व शब्दादि गुण देवता व्योम मरुदग्नि अमलाम्बु उर्वी । बुद्धि मन इन्द्रिय प्राण चित्तातमा काल परमाणु चिच्छक्ति गुर्वी ॥ सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि व्यक्तमव्यक्त गतभदविष्णो । भुवनभवदंग कामारिवन्दित पदद्वन्द्व मन्दाकिनीजनक जिष्णो ॥ आदि मध्यान्त भगवन्त त्वं सर्व्वगतमीश पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी । यथा पटतन्तु घटमृत्तिका सर्पस्रग दारुकरि कनक कट कांगदादी ॥ गूढगम्भीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित् गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता । ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुरगरिमागार घोरसंसारकर पारदाता ॥ सत्यसंकल्प अति कल्पकल्पान्तकृत् कल्पनातीत अहितल्पवासी । वनजलोचन वनजनाभ वनदाभवपु वनचर ध्वज कोटिलावण्यरासी ॥ सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्गदुर्द्धर्ष दुर्गातिहर्त्ता । वेदगर्भार्भकादभ्रगुणगर्भ अर्वाग परगर्वनिर्वापकर्त्ता॥ भक्त अनुकूल भवशूलनिर्मूलकर तूल अघनामपावकसमानं । तरलतृष्णातमी तरणि धरणीधर शरणभयहरण करुणानिधानं ॥ बहुलवृन्दारकावृन्दपदद्वन्द्व मन्दारमालोरधारी । पाहिमामीश संतापसंकुलसदा दास तुलसी प्रणत रावणारी ॥ ५५ ॥

संसार में प्रसिद्ध संसार के स्वामी संसार की मर्यादा गरुड़ पर चलनेवाले हैं । पर ब्रह्म स्वरूप भक्तों को बरदान देनेवाले प्राणियों के स्वामी सब में व्यापक निर्मलस्वरूप अत्यन्त बलवान् मोक्ष के स्वामी हो । माया महत् तत्व और शब्द आदि गुण तथा इन के देवता आकाश वायु अग्नि शुद्ध जल पृथिवी बुद्धि मन इन्द्रिय प्राण मन जीव काल परमाणु और महा चैतन्यता की शक्ती हो। इन में और भी सबमें हे महाराज शिरोमणि ! तुम्हारा स्वरूप

है हे भगवन् । विनाभेदके प्रगट अप्रगट संसार आप का अंग है हे शिवजी से वान्दित दोनों चरणवाले हे जिष्णो! आप गंगाजी को उत्पन्न करनेवाले हैं । हे भगवन् ! तुम आदिमध्य और अन्त में और सबमें हो हे भगवन् ! जो आत्मज्ञानी हैं वह आप को ऐसे ही देखते हैं । जैसे डोरे में वस्त्र मिट्टी में घड़ा माला में सर्प का भ्रम सोने में कुण्डल आदि भेद के समान आप का भेद है। आप अगाध और गुप्त हो हे गर्वप्रहारी ! छिपे हुऐ अर्थ को जाननेवाले हो इन्द्रियों से परे ज्ञान देनेवाले गुरु हो । जानने के योग्य हो हे ज्ञानप्रिय ! अत्यन्त गुरुता के मन्दिर हो महा संसार के कर्ता और संसार को गति देने वाले हो । हे सत्यव्रत कल्प और महा कल्पका अन्त करनेवाले कल्पना से परे हो और शेषकी की शय्यापर शयन करने वाले हो । कमल के समान नयनवाले नाभी में कमल करोड़ों कामदेव की सुन्दरता की राशि हो । अच्छा बुरा करनेवालों की आराधनामें कठिन हो और बुरी आदत को छुड़ानेवाले हो तुम्हारी किलाबन्दी का तोड़ना कठिन है तौभी उस दुःख रूपी किला को नाश करनेवाले हो गायत्री के सेवकों के संचित गुणका गर्व पहिले पीछे का गर्व नष्ट करने वाले हो। सदाभक्तों के अनुकूल रहनेवाले और संसारी दुःखों को नाश करने वाले पापरूप रुई को जलाने में अग्नि के समान हो । महातृणरूपी रात्रिको सूर्यहो पृथिवी के आधार शरणागत के भय को हरण करनेवाले दया के सागर हो । देवगण और शिवजी आप के दोनो चरणों की अनेक बन्दना करते हैं हे प्रभो ! हे राम ! सन्तापों से व्याकुल शरण में आये मुझ तुलसीदास की रक्षा कीजिये ॥ ५५ ॥

संतसंतापहर विश्व विश्रामकर राम कामारि अभिरामकारी । शुद्धबोधायतन सच्चिदानन्दवर्द्धन खरारी ॥ शीलसमताभवन विषमतामतिशमन राम रमारमन रावणारी ॥ खड्ग कर चर्म्म वर वर्म धर रुचिर कटि तूण शर शक्ति

शारंग धारी ॥ सत्यसन्धान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुण ज्ञानविज्ञानशाली । सघनतमघोरसंसारभरशर्वरी नाम दिवसेशखरकिरणमाली ॥ तपनतीक्ष्ण तरुणतीव्रतापघ्नतप-रूपतनुभूप तमपरतपस्वी । मानमद मदनमत्सरमनोरथम-थन महिअम्भोधिमन्दर मनस्वी ॥ वेदविख्यात परदेश वामन विरज विमल वागीश वैकुण्ठस्वामी । कामक्रोधादि मर्दन विवर्द्धनक्षमा शांतविग्रह विहगराजगामी ॥ परम पावन पापपुंजाटवी अमलमिव निमिष निर्मूलकर्त्ता । भुवनभूषण दूषणारि भुवनेश भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता ॥ अमल अविचल अकल सकल संतप्तकलिवि-कलताभञ्जनानन्दरासी । उरगनायकशयन तरुणपंकजनयन क्षीर सागरअयन सर्वबामी ॥ सिद्धकविकोविदानन्ददायक पदद्वन्द्व मन्दात्ममनुजैर्दुरापं । यत्र संभूत अतिपूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पाप ॥ नित्यनिमुक्त संयुक्तगुण निर्गुणानन्त भगवन्त नियामक नियंता । विश्वपोषणभरण विश्वकारणकरण शरण तुलसीदास त्रासहंता ॥ ५६ ॥

सन्तों के दुःख को हरनेवाले संसार के विश्राम शिवजी को आनन्द देनेवाले हो । खरदूषण के शत्रु राम शुद्ध ज्ञान के मन्दिर सत् चित् आनन्द घन स्वरूप और सज्जनों के सुख को बढ़ाते हो । शील व समता के मन्दिर नीच ऊंच बुद्धि के नाशक हो हे लक्ष्मी निवास राम रावण के मारनेवाले हाथों में तलवार ढाल लिये कवच पहिने सुन्दर कमर में तरकस बांध बाण शक्ति और धनुष को धारण किए हो । सत्य में परायण मोक्ष देनेवाले सब कल्याण करनेवाले ज्ञान विज्ञान से शोभित हो । कठोर महा अन्धकार की संसार स्वरूपी रात्रि को नाश करने के लिये तुम्हारा नाम सूर्य के किरण की राशि है । अपने तीखे तपन [घाम] से महा

तीव्र तीनों तापों को नाश करनेवाले राजा की शरीर से तप के रूप तमोगुण से परे तपस्वी हो। आदर करना अभिमान काम ईर्ष्या और इच्छा के नाशक हो। भ्रमरूप समुद्र के मन्दराचल रूपी मन को अपने आधीन किये हो। वेद में विख्यात वरदेनेवाले ब्रह्मा शिव आदि के भी प्रभु वामन स्वरूप रजोगुण से परे निर्मल निर्गुण स्वरूप वैकुण्ठ के रहनेवाले हो। काम क्रोधादि शत्रुओं को भस्म करनेवाले क्षमा दया आदि को बढ़ानेवाले शान्तस्वरूप गरुड़ पर चलनेवाले हो। परम पवित्र पापों के राशि को रूपमूंजवन की आग के समान पलभरमें निर्मूल करनेवाले हो। भुवनभूषण दोषो के नाश करनेवाले संसार के स्वामी पृथिवी के पति और संसार का पालन करनेवाले हो तुम्हारी जय हो। निर्मल निश्चल निर्गुण और सगुण रूप हो कालिके सन्तापरूपी विकलता के नाशक सुखकी राशि हो। शेष पर शयन करते तरुण कमल दल के समान नयनवाले और क्षीरसागर में रहनेवाले और सब में बास करनेवाले हो। सिद्ध कवि पण्डितों को आनन्द देनेवाले आपके चरण कमल हैं जिनको अज्ञानी मनुष्य नहीं पाते। जिसमें उत्पन्न हुआ अति पवित्र गंगा का जल दर्शनही से पापों का नाश करनेवाला है आप सदैव मुक्त रूप सगुण निगुर्ण अपार रूप आप भगवानहो। नियमों को बनानेवाले तथा उस पर चलानेवाले संसार की रक्षाकर बलवान करनेवाले हो। संसार के कारण और संसार के दुःखों को नाश करनेवाले आपकी शरण में तुलसीदास हैं ॥ ५६ ॥

दनुजसूदन दयासिंधु दम्भापहन दहन दुर्दोष दुष्पापहर्त्ता।
दुष्टतादमन दमभवन दुःखौघहर दुर्गदुर्वासना नाशकर्त्ता॥
भूरिभूषण भानुमंत भगवन्तभवभंजनाभयदभुबनेशभारी।
भावनातीत भवन्घ भवभक्तहित भूमिउद्धरण भूधरणधारी॥
वरदवनदाभ वागीश विश्वात्मा विरज वैकुण्ठमंदिरबिहारी।
व्यापकव्योम वन्द्यांघ्रिपावन विभो ब्रह्मविद् ब्रह्म चिन्ताप-

हारी ॥ सहज सुन्दर सुमुख सुमनशुभ सर्वदा शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी । सवकृत सर्वजित सर्वभृत सर्वहित सत्यसङ्कल्प कल्पांतकारी ॥ नित्य निर्मोह निर्गुण निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता । निर्भरानन्द निष्कंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥ महामङ्गलमूल मोद-महिमायतन मुग्धमधुमथन मानद अमानी । मदनमर्दन मदातीत मायारहित मञ्जुमानाथ पाथोजपानी ॥ कमललोचन कलाकोशकोदण्डधर कोशलाधीश कल्याणरासी । यातुधानप्रचुरमत्तकरिकेशरी भक्तमनपुण्यआरण्यबासी ॥ अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनन्दसिन्धो । अचल अनिकेत अविरल अनामय असारम्भ अम्भोदनादघ्नबन्धो ॥ दास तुलसी खेदखिन्न आपन्न इह शोकसम्पन्न अतिशयसभीतं । प्रणतपालक राम परम करुणाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥ ५७ ॥

दैत्यों का नाश करनेवाले कृपा के सागर पाखण्ड को हरनेवाले अनेक दोष तथा पाप को नाश करनेवाले हो । दुष्टता के नाशक संयमों के मन्दिर दुःखों की राशि को हरण करनेवाले सूर्य को भी प्रकाश करनेवाले संसार को बन्धन से छुड़ानेवाले भय को दूर करनेवाले भगवान जगत् को पालन करनेवाले हैं। भावना से न्यारे संसार से वन्द्य संसारी भक्तों की रक्षा के लिये पृथिवी का उद्धार करने के लिये गोवर्धन पर्वत को धारण किये हो । हे वरदायी भगवान् ! मेघके समान श्यामवर्ण संसार की आत्मा रजो गुण से परे आकाश की भांति व्यापक हो हे विभो ! आप के पवित्र चरण वन्दनीय हैं ब्रह्म को जाननेवाले और चिन्ता को दूर करनेवाले हो स्वभाव से ही सुन्दर मुख और स्वच्छ मन है शुभदायक स्वर सब प्रकार से शुद्ध सबको जाननेवाले और

स्वच्छन्द विहार करनेवाले हो। सब कुछ करते हुऐ और सबकी रक्षा के लिये दुष्टों का विजय करते हुए और सत्य का पालन करते हुए प्रलय करनेवाले हो। सत्यस्वरूप मोहरहित निर्गुण माया से रहित आत्मानन्द स्वरूप मुक्ति को भी मुक्ति देनेवाले हो। अखण्ड आनन्द घनस्वरूप और अनन्त मुक्त अनिर्वचनीय ममता रहित सबके पूज्य महामङ्गल के मूल सुख और महिमा के मन्दिर मूढ मधुदैत्य को नाश करनेवाले प्रतिष्ठा देनेवाले होते हुए भी मान से परे हो कामना को नाश करनेवाले अभिमान और माया से रहित मनको रमण करनेवाली रमा के स्वामी हो और कमल के समान सुन्दर हाथवाले हैं। कमल के समान नेत्र अनेक कला के घर धनुष को धारण किये अयोध्या के स्वामी और कल्याण के स्थान हो। अति मतवाले राक्षसोंरूपी हाथियों को नाश करने में सिंह के समान हो। और भक्तों के पवित्र हृदय में वनवासी के समान रहते हैं। पाप रहित अद्वितीय निर्दोष अव्यक्त जन्ममरण से रहित अनेक स्वरूपवाले विकारसे रहित आनन्द के समुद्र हो सदा निश्चल एकही स्थान में रहनेवाले महाघोर परिवार रहित कर्मों से मेघनाद के नाशक लक्ष्मण के भाई हो। हे शरणागत रक्षक राम कृपा के सागर पृथिवी के स्वामी उद्दण्ड दुःखों से दुर्बल शरणागत इस शोक से युक्त अत्यन्त डरे हुए मुझ तुलसीदास की रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥

देहि सतसंग निज अंग श्रीरंग भवभंगकारण शरण शोक हारी। ये तु भवदंघ्रि पल्लवसमाश्रित सदा भक्तिरत विगतसंशय मुरारी॥ असुर सुर नाग नर यक्ष गन्धर्व खग रजनिचर सिद्धि ये चापि अन्ने। सन्तसंसर्ग त्रैवर्गपर परम पद प्राप निष्प्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने॥ वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याघ्र गज गृध्र द्विजबन्धु निजधर्म त्यागी। साधुपदसलिल निर्धूत कल्मषसकल श्वपच यव-

नादि कैवल्यभागी ॥ शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण शब्दब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी। दक्ष समदृस्यदृक विगत अतिस्वपरमति परमरति विरत तव चक्रपानी ॥ विश्वउपकारहित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्तमदमन्यु कृतपुण्यरासी। यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी ॥ वेद पयसिन्धु सुविचारमन्दरमहा अखिल मुनिवृन्द निर्मथनकर्त्ता। सार सतसङ्गमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्ता ॥ शोक सन्देह भय हर्ष तमतर्षगण साधु सद्युक्ति विच्छेदकारी। यथा रघुनाथ शायक निशाशरचमू निचय निर्दलनपटु वेगभारी ॥ यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जग योनि सङ्कटन अनेकं। अत्र त्वद्भक्ति सज्जनसमागम सदा भवतु मे रामविश्रामभेकं ॥ प्रवल भवजनित त्रैव्याधि भेषज भक्तिभक्त भैषज्यमद्वैत दरसी। सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं किमपि मति मलिन कह दासतुलसी ॥ ५८ ॥

हे द्वारकाधीश मुझे सत्संग दो जो संसार के नाशका कारण शरणागत के दुखों को हरण करना तुम्हारा अंग है हे मुरारे! जो सदा आपके चरण कमल के भरोसे पर संदेह से रहित भक्ति में लगे रहते हैं तुम्हारी प्रसन्नता से सज्जनों का संग होता है। देवता दैत्य नाग मनुष्य यक्ष गन्धर्व पक्षी राक्षस सिद्ध जो और हुए सो भी सत्संगही से व धर्म अर्थ काम से परे मोक्ष की जो दुर्लभ गति है प्राप्त किया केवल आप की प्रसन्नता सेही वृत्रासुर बलिदैत्य बाणासुर प्रह्लाद मयदानव व्याध्र गजराज गिद्ध अजामिल आदि अपने धर्म को छोड़कर भी परमगति को को पाया है। साधुओं के चरणामृत से सब पाप से मुक्त होके डोम यवन आदि भी मोक्ष के अधिकारी हुए। साधुजन शान्त

सन्तुष्ट ममता रहित निरोग चित्त गुणों से परे एक ब्रह्मही का चिंतन करते समदृष्टि आत्मदृष्टि अपनी पराई बुद्धि से हे चक्रपाणि अत्यंत रागरहित वैराग्यवान होते हैं। संसार के कल्याण के लिये आप सर्वदा व्यग्र चित्त रहते हैं और अभिमान तथा क्रोध छोड़ कर पुण्यराशि को देते हैं। जहां रहते हैं वहीं ब्रह्मा शिव सहित क्षीर सागर स्वामी विष्णु भी उनके पास जाते हैं वेदरूपी क्षीर सागर को सुन्दर विचाररूपी मन्दराचल से सब मुनिगण मथन करके। सत्संगरूपी सारांश को ले लिया यह निश्चय करके श्री रुक्मिणी के पति श्री कृष्ण कहते हैं। शोक सन्देह भय मिथ्या हर्ष अज्ञान कामनाओं के समूहको साधुगण अपनी उत्तम युक्तियों से काट डालते हैं। जैसे श्रीरामजी के बाण राक्षसों की सेना समूह को नाश करने में चतुर महा वेगवान हैं। जहां कहीं भी मेरा जन्म हो अपने कर्मों के आधीन अनेक योनियों में भ्रमता हुआ भी अनेक प्रकार के कष्ट का भोग करूं। परन्तु हेराम! वहीं हमारी तुमारे में सदाभक्ति और सज्जनों का सत्संग होवे यही एक विश्राम देओ। एक ईश्वर माननेवाले भक्त वैद्य हैं और बलवान् संसार से उत्पन्न तीनों तापरूपी रोगकी औषधि भक्ति है। साधु और राम में भेद नहीं है इस मन्द मतिवाला तुलसीदास ही क्या कह सकता है॥ ५८॥

देहि अवलम्ब करकमल कमलारमन दमनदुख शमनसंतापभारी। अज्ञानराकेशग्रासनविधुंतुद दलनगर्वकामकरिमत्त हरि दूषणारी॥ वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्तिलंकादुर्ग रचितमनदनुजमयरूपधारी। विविधकोशौघ अतिरुचिर मन्दिरनिकर सत्वगुणप्रमुखत्रैकटककारी॥ कुनपअभिमान सागरभयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारं। नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संगसंकल्प वीचीविकारं॥ मोहदशमौल तद्भ्रातहंकार पाकारिजितकाम विश्रामहारी।

लोभअतिकाय मत्सर महोदरदुष्ट क्रोधपापिष्ठविबुधान्तकारी द्वेषदुर्मुख दम्भ खर अकम्पनकपट दर्पमनुजाद मदशूलपानी। अमितबल परमदुर्ज्जय निशाचरनिकर सहितखडवग गोयातुधानी ॥ जीव भवदंघ्रिसेवक विभीषण वसतमध्यद-ष्टाटवी ग्रसित चिंता। नियम यम सकल सुरलोगलोकेश लंकेशवश नाथ अत्यंतभीता ॥ ज्ञानअवधेशगृह गेहिनी-भक्तिशुभ तत्र अवतार भूभारहर्त्ता । भक्तसंकष्टमवलोक्य पितुवाक्यकृत गहनकियगमन वैदेहिभर्त्ता ॥ कैवल्यसाधन अखिल भालु मर्कटविपुल ज्ञानसुग्रीव कृतजलधिसेतू । प्रबलवैराग्यदारुणप्रभंजनतनय विषयवनदहनमिव धूमकेतू ॥ दुष्ट दनुजेश निर्वंशकृत दासहित विश्वदुखहरण बोधैक-रासी । अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी हृदयकमलवासी ॥ ५६ ॥

हे लक्ष्मीपति ! अपने कमल रूपी हाथ का आधार दो और दुःखों को नाश करनेवाले मेरे महा सन्ताप को नष्ट करो। अज्ञान रूपी चन्द्रमा को ग्रास करने में राहु के समान अभिमान और कामरूपी मतवाली हाथी को नष्ट करने में सिंह तथा दूषण राक्षस को अथवा अनेक प्रकार के दोषों के भी नाशक हो । ब्रह्माण्डही आपकी शरीर है कामों के आरंभ रूपी कठिन लंकापुरी में मन से बनाई गई मय दानव के समान रूपधारी हो । जिसमें पांच को श (अन्नमय कोश प्राणमय कोश मनोमय कोश विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश) इन पांच कोशों से युक्त बड़े सुन्दर मन्दिरकी पङ्क्तिहै और उस मन्दिर में सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये तीन सेनापति हैं। देह का अभिमान स्वरूप भयानक घोर समुद्र है अहंकार का विस्तार उस समुद्र की गंभीरता है और पार न होना उस समुद्र की दुस्तरता है। राग द्वेष इच्छा आदि घड़ियाल और मगर हैं अनेक प्रकार के मनोरथों के साथ उठनेवाले संकल्प

विकल्पही उस समुद्र के तरंगों का विकार है। जिसमें मोह रूपी रावण और अहंकार रूपी कुम्भकर्ण और कामदेव रूपी मेघनादही विश्राम का नाशक है। लोभ रूपी लंबी शरीर उसमें मत्सरता रूपी दुष्ट महोदर देवताओं का नाश करनेवाला है। द्वेष रूपी दुर्मुख और पाखण्ड रूपीखर और कपट रूपी अकंपन घमण्ड रूपी नरान्तक तथा गर्व रूपी शूलपाणि। बड़े बलवाले विजय न होने योग्य जो राक्षसों की सेना उसके सहित काम क्रोधादि जो छओं शत्रु के साथ इन्द्रियों रूपी राक्षसी हैं। उसमें जीव स्वरूप आपके चरणों का सेवक विभीषण रहता है जो दुष्टों से घिरा हुआ है। सब यम नियम रूपी इन्द्रादि दिग्पाल रावण के आधीन हैं हेनाथ। इससे यह सब बड़े भयभीत हैं। ज्ञान रूपी दशरथ के मन्दिर में भक्ति रूपी कौशल्या में मंगल रूप से वहां अवतार ले पृथिवी के भारको दूर करने हो। भक्तों का कष्ट देखकर पिताके वचनमें कठिनता रूपी बन में विहार करते हुए सीताजी के स्वामी हो। मुनि के सब साधनहीं वानर भालुओं की सेना है ज्ञान सुग्रीव है नित्य ही समुद्र में सेतु बांधना है। दृढ वैराग्यही वायुपुत्र हनुमान है। जो कि विषय रूपी बन को भस्म करनेवाला अग्नि के समान है। दुष्ट रावण का सेवक के लिये नाशकर संसार का दुःख हरते हो और अद्वितीय ज्ञान की राशि हो। अपने भाई लक्ष्मण और सीता सहित रामस्वरूप से सदैव तुलसीदास के हृदय रूपी कमल बन में बास करिये ॥ ५६ ॥

दीनउद्धरण रघुवर्य्य करुणाभवन शमनसन्ताप पापौघ-हारी। विमलविज्ञानविग्रह अनुग्रहरूप भूपवर विबुधनर्मद खरारी ॥ संसारकान्तार अतिघोर गम्भीरघन गहनतरुक-र्मसंकुल मुरारी। वासनावल्लिखरकण्टकाकुल विपुल नि-विडविटपाटवी कठिनभारी ॥ विविधचित्तवृत्ति खगनिकर सेनोलुक काक बक गृध्रआमिषअहारी। अखिल खल निपुण छल छिद्र निरखत सदा जीवजनपथिकमन खेदकारी

री ॥ क्रोधकरिमत्त मृगराजकन्दर्प्पमददर्प्पवृकभालु अति-उग्रकर्म्मा । महिषमत्सरक्रूर लोभ शूकर रूप फेरुछल दम्भ-मार्जारधर्म्मा ॥ कपटमर्कट विकटव्याघपाखण्ड मुख दुखद मृगव्रात उत्पातकर्त्ता । हृदय अवलोकि यह शोक शरणा-गतं पाहि मां पाहि भो विश्वभर्त्ता ॥ प्रबल अहङ्कार दुर्घटमहीधर महामोहगिरिगुहा निविडांधकारं । चित्तवेताल मनुजादमन प्रेतगणरोग भोगौघवृश्चिकविकारं ॥ विषय-सुखलालसा दंशमशकादि खलभिल्लिरूपादि सब सर्प स्वामी । तत्र आक्षिप्त तव विषयमायानाथ अन्ध मैं मन्द व्यालादगामी ॥ घोर अवगाह भवआपगा पापजलपूर दुष्प्रेक्ष दुस्तर अपारा । मकरउपवर्गगानक्रचक्राकुला कूल शुभ अशुभ दुखतीव्रधारा ॥ सकलसंघटपोच शोचवश सर्वदा दासतुलसी विषमगहनग्रस्तं । त्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर कठिनकाल विकराल कलित्रासत्रस्तं ॥६०॥

हे दीनों का उद्धार करनेवाले दया के परमधाम रघुबंशियों में श्रेष्ठ सन्ताप का नाश करनेवाले पाप के नाशक हो। निर्मल ज्ञान के शरीर और कृपा के स्वरूप हो राजाओं में श्रेष्ठ खर के नाशक हो। देवताओं को आनन्द देनेवाले यह महा भयानक संसाररूपी बन जो कि बड़ा गंभीर है वह सघन कर्मरूपी वृक्षों से भरा है हे मुरारी। उन कर्मरूपी वृक्षों में वासनारूपी लतायें अनेक तीखे कांटों से युक्त लगी हैं और उन वृक्षों की सघनता का अंधेरा बहुत कठिन है। अनेक प्रकार की चित्तवृत्तिही बाज उल्लू कौआ बगुला और मांस को खानेवाले गीध आदि पक्षियों के झुण्ड बैठे हैं। यह सब दुष्ट अपनी चतुरता से सदा छिद्र को देखते हुए जीवरूपी राही जनों के मनको पीड़ा देते हैं। क्रोधरूपी मतवाला हाथी कामरूपी सिंह अहंकाररूपी सियार घमंडरूपी भालू अति प्रचण्ड कर्म करनेवाले हैं। दुष्टमत्सररूपी कठोर भैंसा

लोभरूपी सूकर छलरूपी गदिड़ पाखण्डरूपी धर्मी बिलाव है। कपटरूपी बानर पाखण्डरूपी भयानक व्याघ्र है जिसका मुख मृगाओं को दुःख देनेवाला है और उत्पात करनेवाले हैं। हे संसार के रक्षक यह दुःखित हृदय से देखि मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये। महाबलवान् अहंकारही न जाने योग्य पर्वत है महा मोह ही पर्वत की गुफा है अज्ञानही उसमें अन्धकार है। चित्तरूपी बैताल राक्षस है मनही प्रेतगण है रोग भोगों की राशि है विकार बीछू है। विषय सुखकी इच्छाही डांस मच्छड़ दुष्ट झींगुर हैं हे स्वामी रूपादि सब सर्प हैं। हे गरुड़वाहन प्रभो! तुम्हारी माया बड़ी टेंढ़ी है उसमें गिरा हुआ मैं मन्द बुद्धि अन्धा हूं महा अथाह संसार रूपी नदी पापरूपी जल से पूर्ण होने से अपार और दुस्तर है देखी नहीं जाती है। क्रोधादि छ विकार ही मगर इन्द्रियरूपी घड़ियाल कछुओं से भरी है शुभ अशुभ कर्म ही दोनों किनारे हैं। प्रचण्ड धारा ही दुःख है उसकी विषमता धारा का मिलाप है ऐसे बन में व्याकुल तुलसीदास सदा शोचके बशमें रहता है महाभयानक काल कलियुग के दुःख से दुःखित है हे रघुबंशशिरोमणि कृपा करके रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥

नौमि नारायणं नरं करुणायनं यानपारायणं ज्ञानमूलं। अखिल संसारउपकारकारण सदयहृदय तपनिरत प्रणतानुकूलं॥ श्यामनवतामरसदामद्युतिवपुष छविकोटिमदनार्कअगणित प्रकासं। तरुणरमणीयराजीवलोचनललित वदनराकेश करनिकरहासं॥ सकलसौन्दर्यनिधि विपुलगुणधाम विधि वेदबुधशम्भुसेवित अमानं। अरुणपदकंजमकरन्दमन्दाकिनी मधुपमुनिवृन्दकुर्वन्तिपानं॥ शक्रप्रेरित घोरमारमदभंगकृत क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी। मारकण्डेय मुनिवर्य हित कौतुकी बिनहिं कल्पान्त प्रभु प्रलयकारी॥ पुण्य वन शैल सरि बद्रिकाश्रम सदासीनपदमासनं एक-

रूपं । सिद्ध योगीन्द्र वृन्दारकानन्दप्रद भद्रदायक दरश अतिअनूपं ॥ मान मनभंग चितभंग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवनभर्त्ता । द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति भूरिनिर्दय क्रूरकर्मकर्त्ता ॥ विकटतर बक्र क्षुरधारप्रमदा-तीव्र दर्पकंदर्प गरखड्गधारा । धीरगम्भीरमनपीरकारक तत्र के वराका वयं विगतसारा ॥ परमदुर्घटपंथ खलअसं-गतसाथ नाथ नहि हाथ वरविरति यष्टी । दर्शनारत दास त्रसित मायापास त्राहि हरि त्राहि हर दासकष्टी ॥ दास-तुलसी दीन धर्मसम्बलहीन श्रमित अतिखेदमतिमोहनाशी । देहि अवलम्ब न विलम्ब अम्भोज कर चक्रधर तेजबलशर्म-राशी ॥ ६१ ॥

ध्यान में परायण दया के मन्दिर ज्ञान की खानि नर नारायण को नमस्कार है । सकल संसार के उपकार के कारण हृदय से दयालु तपस्या में लगे हुए भक्तों के अनुकूल रहते हैं । काले नये कमल की अति शोभा के समान शरीरवाले करोड़ों कामदेव से सुन्दर अनेकों सूर्य के समान प्रकाश है । सुन्दर पुष्ट कमल से सुन्दर नेत्र चन्द्रमा के समान मुख चन्द्रमा के किरण के समान मुसकान है । सकल सुन्दरता के समुद्र अत्यन्त गुणों के स्थान ब्रह्मा वेद विद्वान् और शिव से सेवित अभिमान से रहित हो । लाल कमल के समान चरण उससे लीन मन्दाकिनी अर्थात् आपके चरणामृत गंगा हैं । जिसको भौंरे के समान मुनि गण पान करते हैं । इन्द्र का भेजा जो कामदेव उसका अभिमान तोड़ दिया विना क्रोधित हुए समझाने लगे आबाल ब्रह्मचारी । आपने मुनियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि के खेल के समान बिना कल्पान्त के प्रलय कर दिये हेप्रभो ! पुण्यमय पर्वत नदियों से युक्त बदरिकाश्रम में सदा पद्मासन लगाये बैठे हुए अद्वितीय स्वरूप हो । सिद्ध और योगियों के तथा देवताओं को आनन्द देनेवाले हो परन्तु

मान रूप मन भंग पर्वत मदरूप चित्त भंग पर्वत और क्रोध लोभादि पर्वतों का दुर्ग (किला) है हेसंसार के स्वामी! द्वेष राग मत्सरता आदि प्रत्येक बड़े विघ्न देनेवाले बलवान् बड़े निर्दयी और कठिन कर्म करनेवाले हैं। बड़ी कठिन विषमताही छूरे तीक्ष्णधार के समान स्त्रियां हैं जिनके काम का घमंड विषैली तलवार की धार है। वहां बड़े २ धैर्यवानों के मन को क्षुभितकर पीड़ित कर देती हैं फिर मैं तो निर्बल बिचारा किस में हूं। एक तो बड़े कठिन मार्ग फिर अयोग्य दुष्टों की संगति हेनाथ उत्तम वैराग्य रूपी छड़ी हाथ में नहीं हैं। दर्शनों का दुखी सेवक माया से बंधा पीड़ा को सह रहा है हेहरि! इस सेवकके कष्ट को हरण करो। रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये गरीब तुलसीदास धर्मरूपी राहखर्च से रहित हो अत्यन्त थका है तुम दुःख और बुद्धि के मोह को नाश करनेवाले हो। हे चक्रधर! कमल के समान हाथोंवाले अवलम्ब दीजिये आप तेजप्रताप और बल की राशि हो ॥ ६१ ॥

सकलसुखकन्द आनन्द बन पुण्यकृत बिदुमाधव द्वंद्वविपतिहारी। यस्यांघ्रिपाथोज अजशम्भु सनकादि-शुकशेषमुनिवृंदअलिनिलयकारी ॥ अमलमरकतश्याम कामशतकोटिछबि पीतपटतडितइव जलदनीलं। अरुणशतपत्रलोचन विलोकनि चारु प्रणतजन सुखदकरुणार्द्र-शीलं ॥ कालगजराजमृगराज दनुजेशवनदहन पावक मोहनिशि दिनेसं। चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसं ॥ मुकुट कुण्डल तिलक अलक-अलिव्रात इव भृकुटि द्विज अधर वर चारु नासा। रुचिर-सुकपोल दरग्रीव सुखसीव हरि इन्दुकरकुन्दमिव मधुर-हासा ॥ उरसि वनमाल सुविशाल नवमञ्जरी भ्राज श्रीवत्स लाञ्छन उदारं। परमब्रह्मण्य अतिधन्य गतमन्यु अज अमितबल विपुलमहिमा अपारं ॥ हार केयूर कर कनक-

कंकण रतनजटित मणिमेखला कटि प्रदेशं। युगलपदनूपुरामुखर कलहंसवत सुभगसर्वांग सौन्दर्यवेशं ॥ सकलसौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्यश्री दक्षदिशि रुचिर वारीशकन्या। वसत विबुधापगा निकट तटसदनपर नयन निरखन्ति नर तेऽपिधन्या ॥ अखिलमंगल भवन निविडसंशय शमन दमनवृजिनाटवी कष्टहर्त्ता। त्रिश्वधृत विश्वहित अजित गोतीत शिव विश्वपालनहरण विश्वकर्त्ता ॥ ज्ञान विज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य निधि सिद्धि अणिमादिदे भूरिदानं। भवव्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीराम ग्रसित उरगारियानं ॥ ६२ ॥

हे बिन्दुमाधव! आप सब प्रकार के सुख के मूल हो और काशी को पुण्यमयी बनानेवाले हो और राग द्वेषादि दुःखों को हरण करनेवाले हो। जिसके चरण कमलों में ब्रह्मा शिव और सनकादि मुनि शुकदेव शेषनाग आदिभौंरो ने स्थान कर लिया है। निर्मल मरकतमणि के समान श्यामवर्ण करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर बिजली के समान चमकनेवाले पीताम्बर को पहिने काले बादल के समान हो। सहस्र दल लाल कमल के समान नेत्रवाले अपने सुन्दर चितवनि से भक्तों को आनन्द देने वाले हो। दया से आर्द्र स्वभाव है कालरूप गजराज को सिंह हो बड़े बड़े दैत्यरूप बनको भस्म करने में अग्नि के समान हो। हे मोहरूपी रात्रि के सूर्य चारों भुजाओं पर चक्र गदा कमल शंख को धारण किये हो कमलों पर राजहंसके समान शोभित हो। मुकुट कुण्डल तिलक लगाये हैं बाल भौंरों के झुंड के समान हैं भौंह दांत ओंठ उत्तम हैं नासिका सुन्दर गाल मनोहर है शंख के समान गर्दना मानो सुन्दरताकी सीमा है। हे हरे! मन्द मुसुकान तो चन्द्रमा की किरण और कुमुद के समान है हृदय में लम्बा बनमाल है जिसमें नवीन मञ्जरी शोभित है। भृगुलता के

चिन्ह से सुन्दर महाब्रह्मण्य हो तुम्हें धन्यवाद है हे अज विना क्रोध अपार बलवान हो आप की महिमा अत्यन्त अपार है। हार के पूर पहिने हाथों में रत्नों से जड़ित सोने के कंगन को पहिने रत्नों की करधनी कमर में शोभायमान है। दोनों चरण में पायजेब का सुन्दर शब्द हंसों के समान बोल रहा है अंग सब सुलक्षण हैं सुन्दर वेष है। सब सौभाग्य और त्रैलोक्य की शोभा सहित सुन्दर लक्ष्मी जी तुम्हारी दाहिनी ओर शोभित हैं। गंगा जी के पास किनारे मन्दिर में रहते हो जो मनुष्य दर्शन करते हैं वे बड़े धन्य हैं। सब मंगलों के मन्दिर संदेहरूपी अन्धकार को नाश करनेवाले और पापों के वन को नष्ट करनेवाले कष्टों के नाशक हैं। संसार के आधार संसार के हितैषी हे अजित! इंद्रियों से परे हो मंगलरूपी संसार के रक्षक नाशक और संसार के कर्ता हो। ज्ञान विज्ञान वैराग्य आदि ऐश्वर्यों के सागर अणिमादि सिद्धियों को देनेवाले बड़े दानी हो। गरुड़ पर चलनेवाले हे राम! संसाररूपी सर्प से घिरे हुए बड़े दुःखी तुलसीदास की रक्षा कीजिये॥ ६२॥

राग आसावरी।

इहै परमफल परम बड़ाई।
नखशिखरुचिर बिन्दुमाधव छबि निरखहि नयनअघाई।
विशद किशोर पीन सुन्दर वपु श्याम सुरुचि अधिकाई॥
नीलकंज वारिद तमाल मणि इन्ह तनु ते द्युति पाई।
मृदुलचरण शुभचिन्ह पदज नख अति अद्भुत उपमाई॥
अरुण नील पाथोज प्रसव जनु मणियुत दल समुदाई॥
जातरूप मणि जटित मनोहर नूपुर जन सुखदाई। जनु हर उर हरि विविध रूपधरि रहे वरभवन बनाई॥ कटितट रटति चारु किंकिणिरव अनुपम वरणि न जाई। हेमज-

लज कलकलिन मध्य जनु मधुकरमुखर सोहाई ॥ उरविशाल भृगुचरण चारु अति सूचत कोमलताई । कंकण चारु विविध भूषण बिधि रचि निजकर मनलाई ॥ गजमणिमालबीच भ्राजत कहिजात न पदिक निकाई । जनु उडुगणमण्डल बारिदपर नवग्रह रची अथाई ॥ भुजगभोग भुजदण्ड कंज दर चक्र गदा बनिआई । शोभासीव ग्रीव चिबुकाधर वदन अमितछबि छाई ॥ कुलिश कुन्द कुड्मल दामिनिद्युति दशनन देखि लजाई । नासा नयन कपोल ललित श्रुति कुण्डल भ्रू मोहिं भाई ॥ कुञ्चित कच शिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई । अलप तड़ित युगरेख इन्दुमहं रहि तजि चंचलताई ॥ निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई । बहु मणि युत गिरिनील शिखरपर कनकवसन रुचिराई ॥ दक्षभाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई । हेमलता जनु तरुतमाल ढिग नीलनिचोल उढ़ाई ॥ शत शारदा शेष श्रुति मिलि करि शोभा कहि न सिराई । तुलसिदास मतिमन्द द्वन्द्वरत कहै कौनविधि गाई ॥ ६३ ॥

यही उत्तम फल उत्तम यश है कि नख से शिख तक सुन्दर विन्दुमाधव की शोभा सफल नयन से देखें जो कि निर्मल बाल शरीर स्थूल सुन्दर श्याम स्वरूपवाले हैं । काला कमल मेघ तमाल वृक्ष नील मणि इसी देह से तेज पाया है । कोमल चरणों में अच्छे चिन्ह चरणों के नखों की बड़ी अद्भुत उपमा दिया है मान लो मणियों के साथ बहुत से पत्ते लाल नीले कमल उत्पन्न हुए हैं सोने व रत्नों से जड़े मनोहर पायजेब भक्तों को सुख देते हैं । मानो शिव के हृदय में राम अनेक रूप धारण करके उत्तम घर बना के रहते हैं कमर भाग बिना उपमा के है । उसमें सुन्दर करधनी के

शब्द की ध्वनि कहने में नहीं आती। मानों सोने के कमल की सुन्दर कलियों के बीच में भौरों का सुन्दर गूंजना है चौड़े हृदयमें भृगुलता बड़ी सुन्दर कोमलता को बतलाती है। सुन्दर कंगन अनेक भांति के आभूषण मानो ब्रह्माने मन लगाकर अपने हाथों बनाये हैं। गज मुक्ता के माला के बीच में विराजमान नवनग की उत्तमता कहने में नहीं आती मानों तारागणों की गोलक में मेघ के ऊपर नवग्रह की रचना ईश्वरने की है। भुजदण्ड फण सहित सर्प जिनमें कमल शंख चक्र गदा है वह उत्तम बने हुए हैं गला तो शोभा की सीमा है कपोल होठ मुख में अपार शोभा भरे हैं। बज्र कुमुद की कली बिजली की चमक दांतों को देखकर लज्जित होता है। नासिका नयन कपोल सुन्दर कानों में कुण्डल भौंह मुझे अच्छी लगती है। घुंघुराले बाल मस्तक में किरीट माथे पर तिलक समझा के कहता हूं मानो थोरी सी बिजली की दो रेखा चंचलता छोड़ चन्द्र में जा लगी है। साफ पीताम्बर पहिरना ओढ़नी की उपमा अद्भुत है जो कि हृदय में नहीं समाती मानों बहुत रत्नों से नीलगिरि की चोटी में सोने के वस्त्र की सुन्दरता है। दाहिनी ओर प्रेम सहित लक्ष्मी की बड़ीही सुन्दरता है मानो तमाल वृक्ष के पास सोने की लता नीले वस्त्र से ओढ़ाई गई है। सैकड़ों शेष वेद मिल के भी इस शोभा को कह के बन्द नहीं हो सकते फिर हीन बुद्धि तुलसीदास राग द्वेष में लगा हुआ किस भांति कह के गानकर सकता है ॥ ६३ ॥

राग जैतश्री।

मन इतनोई या तनु को परमफल। सब अँग सुभग बिन्दुमाधव छबि तजि स्वभाव अवलोकु एक पल॥ तरुण अरुण अम्भोज चरण मृदु नखद्युति हृदयतिमिरहारी। कुलिश केतु यव जलज रेखवर अंकुश मनगज वशकारी॥ कनकजटित मणि नूपुर मेखल कटितट रटति मधुरबानी।

त्रिबलीउदर गँभीर नाभिसर जहँ उपजे विरञ्चि ज्ञानी ॥ उर बनमाल पदिक अतिशोभित विप्रचरण चित कहँ करषै ॥ श्यामतामरसदामवरणवपु पीतवसन शोभा वरषै ॥ कर कंकण केयूर मनोहर देति मोद मुद्रिकन्यारी ॥ गदा कंज दर चारु चक्रधर नागशुण्डसम भुजचारी ॥ कम्बुग्रीव छविसीव चिबुक द्विज अधरअरुण उन्नतनासा । नवराजीव नयन शशिआनन सेवकसुखद विशदहासा ॥ रुचिर कपोल श्रवणकुण्डल शिरमुकुट सुतिलकभाल भ्राजै । ललितभृकुटि सुन्दरचितवनि कच निरखि मधुपअवली लाजै ॥ रूप शील गुण खानिदक्षदिशि सिंधुसुता रत पदसेवा । जाकी कृपाकटाक्ष चहत शिव विधि मुनि मनुज दनुज देवा ॥ तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति यहि स्वरूप अटकै । नाहित दीन मलीन हीनसुख कोटि-जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥ ६४ ॥

हे मन ! इस देह का अधिक फल इतना ही है कि सब अंग सुलक्षण बिन्दु माधव की शोभा चंचल स्वभाव छोड़कर एक पल भर तो देख पुष्ट लाल कमल सरीखे कोमल चरणों के नख की दीप्ति हृदय के अज्ञानता को हरती है । वज्र पताका यव कमल उत्तम अंकुश की रेखा मनरूप हाथी को स्वाधीन करता है । सोने व रत्नों से जड़े हुए पायजेब कमर की करधनी मधुर वाणी बोलती है । नाभी में त्रिबली पड़ी है नाभी तालाब के समान गंभीर है जिसमें ज्ञानवान् ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । हृदय में वनमाला बहुत हो शोभित होती है भृगुलता तो मनको खींचती है काले कमल के रंगकी देह पीले वस्त्र शोभा की वर्षा करते हैं । हाथों में कंगन बिजायठ और मनोहर अंगूठी न्यारीही आनंद देती है गदा कमल शंख सुंदर चक्रधर हाथी के सूंड के समान नयन चारों भुजायें हैं । शंख के समान गला शोभा की सीमा है कपोल

दाँत ओठ लाल नासिका ऊँचे नये कमल के समान नयन चन्द्रमा के समान मुख भक्तों को सुख देने वाला है। स्वच्छ मुसुकान सुन्दर गाल कानों में कुण्डल शीशपर मुकुट माथ में सुन्दर तिलक शोभित है। मनोहर भौंह सुन्दर चितवनि है बालों को देख भौंरों के झुंड लज्जित हैं रूपशील गुणकी खानि लक्ष्मी दाहिनी ओर चरण की सेवा में लगी हैं। जिसकी कृपादृष्टि को शिव ब्रह्मा मुनि मनुष्य दैत्य देवता चाहते हैं हे तुलसीदास ! तभी संसारी दुःख मिटेगा जब इस स्वरूप में बुद्धि स्थिर होगी नहीं तो मलीन बुद्धि बिना सुख करोड़ों जन्म घूम २ कर भटकती फिरैगी ॥ ६४ ॥

राग बसन्त ।

बन्दौं रघुपति करुणानिधान । जाते छूटै भव भेद ज्ञान ॥ रघुवंश कुमुद सुखप्रदनिशेश । सेवित पदपंकज अज महेश ॥ निज भक्तहृदय पाथोज भृङ्ग । लावण्यवपुष अगणित अनङ्ग ॥ अतिप्रबल मोहतम मारतण्ड । अज्ञान-गहन पावकप्रचण्ड ॥ अभिमानसिन्धु कुम्भजउदार । सुररंजन भंजनभूमिभार ॥ रागादि सर्पगण पन्नगारि । कन्दर्प नाग मृगपति मुरारि ॥ भवजलधि पोत चरणारविन्द । जानकीरमण आनन्दकन्द ॥ हनुमंत प्रेमवापी मराल । निष्काम कामधुक गो दयाल ॥ त्रैलोक्यतिलक गुणगहन राम । कह तुलसिदास विश्रामधाम ॥ ६५ ॥

दया के निधान श्रीराम को प्रणाम करता हूं जिससे संसारी भेद का ज्ञान छूट जाता है। रघुवंशियों के कमल को सुखदेने वाले चन्द्रमा के समान हैं ब्रह्मा शिव चरणकमल की सेवा करते हैं। अपने भक्तों के हृदय स्वरूप कमल में भौंरे के समान रहते हैं अनेकों कामदेव के समान अति सुन्दर शरीर है

बहुत बलवान् मोहरूपी अंधेर को सूर्य हैं अज्ञानतारूपी बन के प्रचण्ड अग्नि हैं अहंकाररूपी समुद्र के उत्तम अगस्त्य हैं। देवों को प्रसन्न रखते पृथिवी का भार दूर करते राग द्वेषरूप सर्पगण के गरुड़ही हैं। कामरूप हाथी के सिंह हे मुरारि ! चरणारविन्द संसार सागर को जहाज हैं हे सीतापति ! आनन्द के मूल हनुमान के प्रेमरूपी बावली में हंससे रहते हो। कामना रहित पुरुष को दयालु होके कामधेनु के समान कामनाओं के देनेवाले हो। हे तीनों लोक में शिरोमणि गुणों की राशि राम तुलसीदास को तो आराम के स्थान ही हो॥ ६५॥

राग भैरव।

राम राम रमु राम राम जपु राम राम रटु जीहा।
राम नाम नवनेह मेह को मन हठि होहि पपीहा॥
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा।
राम नाम रति स्वाति सुधाशुभ सीकर प्रेमपियासा॥
गरजि तरजि पाषाण बरषि पवि प्रीतिपरखि जियजानै।
अधिक अधिक अनुराग उमंगउर पर परमित पहिचाने।
रामनामगति रामनामगति रामनाम अनुरागो।
ह्वैगये हैं जे होहिंगे त्रिभुवन तेइ गनियन बड़भागी॥
एकअंग मगअगम गवन करि बिलँबु न छिन छिन छाहै।
तुलसी हित अपनो अपनी दिशि निरुपधि नेम निबाहै॥६६॥

हे जीह(जीभ)राममें लग,रामरट,रामजप, हे मन ! राम नाम में नया प्रेमरूपी मेघ का हठ करके पपीहा हो जा। सब साधुजनों के फल कुएं, नदी तालाब, समुद्र के जल के समान हैं। आशा छोड़कर रामनाम की प्रीतिरूपी सरस्वती के सुन्दर जल बुन्द के लिये प्रेम से प्यासा रह। मेघभी गर्ज तर्ज कर पत्थल

बिजली बरसा के परीक्षा ले कर मनमें जान लेता है तब स्वाती का बुन्द डालता है। ऐसे ही परमात्मा अधिक से अधिक प्रेम हृदय के उमंग की परागति को पहचान लेता है। राम नाम की शरण हो के राम नाम मेंही मन लगाओ राम नाम मेंही प्रेम करो। जो होगये हैं आगे होंगे वेही तीनो लोक में बड़े भाग्य वान् गिने जाते हैं। इस अगम राह में मन को एक कर चल थोड़ा थोड़ा भी साया में न ठहर, तुलसीदास कहते हैं कि अपनी ओर से एक समान नियम का निर्वाह करो ॥ ६६ ॥

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भवनीरनिधि नाम निज नाव रे ॥
एकहो साधन सब ऋद्धि सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि रोग योग संयम समाधि रे ॥
भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो वाम रे।
राम नामही सों अन्त सबहीको काम रे ॥
जग नभ वाटिका रहो है फलि फूलि रे।
धूमा कैसो धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥
रामनाम छांड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसो परोसो त्यागि मागै कूर कौर रे ॥६७॥

अरे बावले! राम जप राम जप राम जप, अरे महासंसार सागर में नामही नौका है। अरे मन इस एकही साधन से सब ऋद्धि सिद्धियां साध्य हैं। योग के यम नियम समाधि को कलि-रूपी रोग ने ग्रसलिया है। अरे जो उत्तम हैं जो खराब है जो मित्र है जो शत्रु है अरे अन्त में सभी को राम नाम से ही काम है। अरे संसाररूपी आकाश की फुलवाड़ी फूल रही है अरे धुवां के मकान के समान है। इसे देख तू मत भूल अरे राम नाम छोड़ के जो कोई दूसरा आसरा करता है तुलसीदास कहते हैं कि अरे मूर्ख आगे का परोसा छोड़कर कौर [टुकड़ा] मांगता है ॥६७॥

रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग योग याग तप त्याग रे॥
राम सुमिरन सब बिधिही के राज रे।
राम को बिसारिबो निषेद शिरताज रे॥
रामनाम महामणि फणिजगजाल रे।
मणिलिये फणिजिये व्याकुल बिहाल रे॥
रामनाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुराण वेद पण्डित पुरारि रे॥
रामनाम प्रेम परमारथ को सार रे।
रामनाम तुलसीको जीवन अधार रे॥ ६८॥

रे जीभ! प्रेम सहित सदा राम नाम का भजन कर। अरे कलि में वैराग्य योग यज्ञ तपस्या और कर्म का त्याग नहीं है। अरे राम का ध्यान सभी भांति का राज्य है। अरे श्रीराम को भूल जाना खराबियों का शिरमौर है। अरे राम उत्तम मणि हैं। जगत् का व्यवहार सर्प है। अरे मणिको लेने से सर्प व्याकुल हो जाता है। अरे राम नाम कल्पवृक्ष है यह अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों फल देता है। अरे पुराण वेद और ज्ञानी तथा शिवजी कहते हैं कि श्रीराम नाम में प्रेम होना मुक्ति का फल है। अरे तुलसी-दास को तो राम नामही प्राणों का आधार है॥ ६८॥

राम राम राम जीह जौलों तू न जपिहै।
तौलों तू कहूं हो जाय तिहूं ताप तपिहै॥
सुरसरितीर बिनु नीर दुख पाइहै।
सुरतरुतर तोंहि दुख दारिद सताइहै॥

जागत बागत सुख सपने न सोइहै ।
जनम जनम युग युग जग रोइहै ।
छूटिबे यतन विशेष बांध्यो जायगो ।
ह्वै है विष भोजन जो सुधासानि खायगो ॥
तुलसी विलोक तिहूं काल तोसे दीन को ।
रामनामही की गति जैसे जल मीनको ॥६९॥

अरे जीभ ! जब तक तू राम नाम को न जपैगी तब तक तूं कहीं भी जा तीनों तापों से तपेगी । गंगा किनारे भी बिना जल के दुःख पावैगी । तुझे कल्पवृक्ष के नीचे भी दुःख दरिद्रता लगी रहेगी । जागते फिरते सोते भी सुख नहीं पावैगी और न सोवैगी बार बार जन्म लेकर संसार में रोवेगी । मुक्ति के लिये अनेकों उपाय किया जायगा परन्तु कुछ न होगा । अमृत से मिला हुआ भोजन विष समान फल देगा । हे तुलसीदास देख तीनों काल में तेरे समान कौन गरिब है जो तुझे रामनामही की गति है ॥६९॥

सुमिर सनेह सों तू नाम रामराय को ।
संबर निसंबर को सखा असहायको ॥
भाग है अभागहू को गुण गुणहीनको ।
गाहक गरीब को दयालु दानि दीनको ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है वेद साखि है ।
पाँगुरको हाथपांय आंधरे को आंखि है ॥
माय बाप भूखे को अधार निराधार को ।
सेतु भवसागर को हेतु सुखसार को ॥
पतितपावन राम नाम सों न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥७०॥

तुम राजा राम के नाम का प्रेम से ध्यान करो । क्योंकि बिना खर्चवाले का सफर खर्च है । बिना मित्रवाले के मित्र हो

और अभागा को भाग्य हो। गुणहीन को उत्तम गुण हो गरीब को ग्राहक हो दीन को दयालु और दानी हो। अकुलीन को कुलीन करने वाले हो वेद के साक्षी हो सुना जाता है कि पंगुल का हाथ पैर और अन्धे की आंख है भूखे को पिता माता है निराधार को आधार हो। संसार समुद्र को सेतु हो और सुख के सारांश का कारण है रामनाम के समान पतित को पवित्र करने वाला दूसरा कोई नहीं है। तुलसी ऐसा ऊसर भी इसके ध्यान करने से सुन्दर भूमि हुआ ॥ ७० ॥

भलो भलो भांतिहै जो मेरे कहे लागिहै।
मन रामनामसों सुभाव अनुरागिहै ॥
रामनाम को प्रभाव जान जूड़ो आगिहै।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥
रामनाम सों विराग योग जप जागिहै।
वामविधि भालहून कर्मदाग दागिहै ॥
रामनाममोदक सनेहसुधा पागिहै।
पाइ परितोप तू न द्वार द्वार बागिहै ॥
कामतरु रामनाम जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खांगिहै ॥७१॥

जो मेरे कहने में लगेगा तो अच्छे प्रकार से भला है, रे मन जो राम नाम का प्रभाव जान ले तो तुझे आग भी शीतल है कलियुग भी डरके सहायकों सहित भाग जायगा। राम के नाम सेही वैराग्य जोग जपेंगे। टेढा भी विधाता माथे पर कर्म का छाप नहीं छापेगा। राम नाम का लड्डू बनाकर प्रेम की पाग से पगेगा। तो असन्तुष्ट होके फिर द्वार द्वार नहीं चिल्लायेगा। राम नाम का कल्पवृक्ष है हे तुलसीदास जो जो मांगेगा सो सो स्वार्थ परमार्थ सभी पावेगा ॥ ७१ ॥

ऐसेऊ साहब की सेवा सों होत चोर रे।

अपनी न बूझ न कहै को राड़रोर रे ॥
मुनिमन अगम सुगम माय बाप सो।
कृपासिंधु सहज सखा सनेही आप सो ॥
लोक वेद विदित बड़ो न रघुनाथ सो।
सब दिन सब देश सबही के साथ सो ॥
स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार को।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ॥
काय न कलेश लेश लेत मान मन की।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥
रीझे वश होत खीझे देत निज धाम रे।
फलत सकल फल कामतरु नाम रे ॥
बेंचै खोटो दाम न मिलै न राखै काम रे।
सोउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे ॥७२॥

रे मन और ऐसे भी स्वामी की सेवा से चोर होता है। रे निकम्मे रोड़े अपने से न तो समझना और न कहने को मानता है मुनियों के मन से भी अगम वही माता पिता का सुगम दया के समुद्र स्वभाव से सबके सखा हो। स्वयं स्नेह करनेवाले लोक वेदों में प्रसिद्ध रामसे बड़ा कोई नहीं है। वह सब समय और सब स्थान में सभी के स्थान हैं। फिर सब कुछ जाननेवाले स्वामी से सेवक की चोरी नहीं चलती। उस दरबार की यही रीति है कि प्रेम पहिचाना जाता है। देह को थोड़ा भी क्लेश नहीं होता मनको प्रीति मान लेते हैं। ध्यान से सेवक की इच्छा रख के भी संकोच करते हैं। और प्रसन्न होके अधीन होते और बिगड़ कर भी वैकुण्ठ देते हैं। इसलिये इनका नाम कल्पवृक्ष है उसमें सभी फल फलते हैं। जिसको बेचने से खोटा पैसा भी नहीं मिलता और उसको रखने से किसी काम का नहीं। ऐसे

महाराजा राम ऐसें तुलसी को निहाल किया ॥ ७२ ॥

मेरा भलो कियो राम आपनो भलाई ।
हौंतो सांई द्रोही पै सेवक हित सांई ॥
रामसों बड़ोहै कौन मोसों कौन छोटो ।
रामसों खरोहै कौन मोसों कौन खोटो ॥
लोक कहै रामको गुलाम हौं कहावों ।
एतो बड़ो अपराध भौ न मनवावों ॥
पाथ माथे चढ़ै तृण तुलसी जो नाचो ।
बोरत न वारि ताहि जानि आप सींचो ॥ ७३ ॥

श्रीरामजी ने अपनी भलमंसी से मेरा भला किया । क्योंकि मैं तो स्वामी का बैरी था पर स्वामी सेवक के हितैषी हैं । राम के समान बड़ा कौन है और मेरे समान नीच भी कौन है । राम के बराबर निर्मल कौन है और मेरे समान मलीन कौन है । मैं राम का दास कहलाता हूँ संसार कहता है। यह बड़ा अपराध हुआ तो भी मन से अलग नहीं हुए । तुलसीदास कहते हैं कि जो नीचा तिनका भी जल के सिर पर चढ़ता है तो उसे अपना सींचा जानकर डुबोता नहीं है ॥ ७३ ॥

जागु जागु जीव जड़ जोहै जगयामिनी ।
देह गेह नेह जान जैसे घनदामिनी ॥
सोवत सपने महै संसृत संताप रे ।
बूड़्यो मृगवारि खायो जेवरी को सांप रे ॥
कहै वेद बुध तू तो बूझ मन माहि रे ।
दोष दुख सपने के जागेही पै जाहि रे ॥
तुलसी जागेते जाइ तापतिहूं ताय रे ।
रामनाम शुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥ ७४ ॥

रे जड़ जीव जाग जाग संसाररूपी रात्रि देख। देह व गृह आदि का प्रेम जैसा है जैसे बिजली और बादल। अरे स्वप्न में सोता हुआ जन्म मरण के दुःख को सहता है। अरे मृग जल में डूबता है रस्सी के सर्प ने काटा है। अरे वेद शास्त्र और ज्ञानी कहते हैं कि तू मन में समझ तो अरे स्वप्न के दोष दुःख जागने ही पर जाते हैं। इस कारण हे तुलसी! तीनों ताप की तपन जायगी अरे मन समान स्वभाव से राम के नाम में शुद्ध प्रेम करो॥ ७४॥

राग विभास।

जानकीश की कृपा जगावती सुजान जीव जागि त्यागि मूढ़तानुराग श्रीहरे। करि विचार तजि विकार भजि उदार रामचन्द्र भद्रसिंधु दीनबन्धु वेदविदित रे॥ मोहमाय कुहूनिशा विशाल काल विपुलव्याल सोयो खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जो परे। अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकाश वास नाश रोग मोह द्वेष निविड-तम टरे॥ भागे मद मान चोर भोर जानि यातुधान काम क्रोध लोभ क्षोभ निकर अपडरे। देखत रघुवर प्रताप बीते सन्तापपाप ताप त्रिविध प्रेम आप दूरही करे॥ श्रवण सुनि गिरागंभीर जागे अति धीरवीर वर विराग तोष सकल सन्त आदरे। तुलसिदास प्रभु कृपाल निरखि जीवजन विहाल भंज्यो भवजाल परममंगल चरे॥ ७५॥

रामजी की कृपाही ज्ञानियों को जगाती है, मूर्खता छोड़ जागो और श्रीराम में प्रीति करो। विचार करके विकारों को छोड़कर उदार श्रीरामजी को भजो। वेद कहते हैं कि दीनबन्धु श्रीराम कल्याण के समुद्र हैं। माया मोह अमावस की रात्रि है विशाल समय भयंकर सर्प है जो स्वप्न में परके सो गया। वह सुन्दररूप

खोया अब ज्ञान रूप सूर्य के प्रकाश से प्रातःकाल हुआ उसके सहित रोग इच्छा द्वेष मोहरूप अन्धकार दूर होगया। प्रातःकाल जानकर मान मदस्वरूप चोर भाग जाते हैं। काम क्रोध लोभ चोभ के झुण्ड रूप राक्षस डर गये। श्रीरामजी के प्रताप को देख ईषारूपी पाप डर गये। भक्ति ने स्वयं तीनो ताप को दूर कर दिये। कानों से गंभीर बचन सुन बड़े धैर्यवान् वीरतारूपी उत्तम वैराग्य जगने से सन्तोषरूपी साधुओं का सन्मान हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि दयालु भगवान अपने भक्तों को व्याकुल देख संसारी जाल बन्धनों को जब तोड़ा तब महामंगल होने लगे॥ ७५॥

राग ललित।

खोटो खरो रावरो हौं रावरे सों झूठो क्यों कहोंगे जानौ सबहीके मनकी। करम बचन हिये कहौं न कपट किये ऐसी हठ जैसी गांठि पानी परे सनकी॥ दूसरो भरोसो नाहिं बासना उपासना की वासव विरञ्चि सुरनर मुनिगनकी स्वारथ के साथी मेरे हाथी श्वान लेवा देई काहू तो न पीर रघुबीर दीन जनकी॥ सांप सभा साबर लबार भये देव दिव्य दुसह सांसति कीजै आगेही या तनकी। साँचे परौं पावों पान पञ्चन में प्रण प्रमाण तुलसी चातक आश रामश्याम घन की॥ ७६॥

आप से झूठ क्यों कहूंगा क्योंकि सभी के मन की बात जानते हो। मैं मलीन हूं आप निर्मल हैं। मन बचन कर्म से छल न करके ऐसा हठ करता हूँ जैसा पानी पड़ने से सन की गांठ होती है। इन्द्र ब्रह्मा देवता मनुष्य और मुनियों सभी की सेवा की इच्छा दूसरा भरोसा नहीं रखता। यह सब स्वार्थ के साथी हैं हाथी लेना और कुत्ता देने के समान यह व्यवहार है। दीनजन की पीड़ा किसी को तो नहीं है यदि मैं सांप के साबरी मन्त्र के समान अपराधी

हूं तो सभा के आगे ही इस देह को सदा के लिये कठिन दुःख दो। यदि सच्चा ठहरूँ तो पंचों में पान मिले, हे रामजी ! तुलसी की प्रतिज्ञा की अवधि काले मेघ के समाने पपीहा की आशा के समान है ॥ ७६ ॥

राम के गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम काम यहै नाम द्वैहौं कबहूं कहत हों। रोटी लूगा नीके राखै आगेहू की वेद भाखै भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं बांध्योहौं करम जड़ गर्व गूढ़ निगड़े सुनत दुसह हौं तो सांसति सहत हौं। आरत अनाथ नाथ कोशल कृपाल पाललीन्हों छोन दीन देख्यो दुरित दहत हों ॥ बूझ्यो ज्यों हो कह्यो मैं हू चेरो ह्वै हौं रावरोजू मेरो कोऊ कहू नाहि चरण गहत हौं। मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बांह बोलि सेवक सुखद सदा विरद बहत हौं ॥ लोग कहैं पांच सो न शोच संकोच मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाति न चहत हौं। तुलसी अकाज काज रामही से रीझे खीझे प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ७७ ॥

गुरुने श्रीराम के सेवक का नाम रामबोला रक्खा काम यही है कि कभी राम नाम के दो अक्षर को कहता हूं। अच्छे रखेंगे तो रोटी लूंगा आगे की भी वेद कहता है कि तेरा भला होगा इसी से आनन्द को प्राप्त हूं। जड़ अभिमानी कर्मों ने मुझे दृढ़ बाँधकर जकड़ दिया। तो मेरी पीड़ा सुनतेही कि दुःख सहता हूं दुःखी अनाथों के नाथ दयालु अवधराज गरीब को देखे कि पापों से जलता हूं उन्हें छुड़ा लिया और जब पूँछा तो कहा कि मैं भी सेवक होऊँगा। आपका चरण छूता हूं मुझको कहीं कोई नहीं है। गुरुने अपने समीप बुला हाथ पकड़ कर पीठ ठोंकी अब सदैव सेवकों को सुखदायी बाना किये चलता हूं। संसार नीच कहे उसका न

सोच न संकोच क्यों मुझे ब्याह और बरेखी नहीं करना है। न जाति की न पानि को चहता है अब तो तुलसी का काज अकाज रामही की खुशी ना खुशी पर है। उन्ही के प्रेम का विश्वास रख मन में प्रसन्न रहता हूं॥ ७७॥

जानकी जीवन जगजीवन जगतहित जगदीश रघुनाथ राजीवलोचन राम। शरदबिधुबदन सुखशील श्री सदन सहज सुन्दरतनु शोभा अगणित काम॥ जगसुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत सबको दाहिनो दीनबन्धु काहूको न बाम। आरतहरण शरणद अतुलितदानि प्रणतपाल कृपालु पतितपावन नाम सकल विश्वबन्दित सकलसुरसेवित आगम निगम कहैं रावरेई गुणग्राम। इहै जानिके तुलसी तिहारो जन भयो न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम॥ ७८॥

हे जानकी के प्राण तुम संसार के प्राण संसार के हितैषी संसार के स्वामी रघुपति कमलनयन श्री रामजी हैं। शरत्काल के चन्द्रमा के समान मुखवाले आनन्द स्वभाव लक्ष्मी के स्थान सहजही सुन्दर देह अनगिनत कामदेव की शोभावाले हैं। संसार के उत्तम पिता उत्तम माता उत्तम गुरु उत्तम हितैषी उत्तम मित्र सभी के दाहिने गरीबों के बन्धु हो और किसो को बायें नहीं हैं दुःखों का हरण करनेवाले शरण देनेवाले अमोघ दान देनेवाले भक्तों के रक्षक कृपालु पतितपावन नाम से प्रसिद्ध सब संसार से बन्दना किये गये सब देवताओं से सेवित हो॥ शास्त्र वेद आपही का गुण गाते हैं यही जानके तुलसीदास तुम्हारा सेवक हुआ है। जहां गरीब गुलामों की गिन्ती हो वहां मुझे भी लगा के गिन लेना॥ ७८॥

राग टोडी।

दीन को दयालु दानि दूसरा न कोऊ।
जाहि दीनता कहौं हौं दीन देखौं सोऊ॥
सुर मुनि नर नाग असुर साहब तौ घनेरे।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥
त्रिभुवन तिहुँकाल विदित वदत वेद चारी।
आदि अन्त मध्य राम साहबी तिहारी॥
तोहिं मांगि मांगनो न माँगनो कहायो।
सुनि स्वभाव शील सुयश याचन जन आयो॥
पाहन पशु विटपबिहंग अपने कर लीन्हें।
महाराज दशरथ के रंक राव कीन्हें॥
तू गरीबको निवाज हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो॥ ७६॥

गरीबों को दयावान दानी दूसरा कोई नहीं है क्योंकि जिसे गरीब कहता हूं मैं उसे भी गरीब देखता हूं। मुनि देवता मनुष्य नाग असुर भी स्वामी बहुत हैं। परन्तु अभी तक जब तक आप जरा आंख टेढ़ी न करें तीनों लोक में और तीनों काल में प्रसिद्ध है। चारों वेद कहते हैं कि हे रामजी! आदि अन्त और मध्य में आपकी ही साहिबी है, तुमसे मांग के मङ्गता मङ्गता नहीं कहा जाता। सुन्दर कीर्ति शील स्वभाव सुन मंगताजन आया हूं। शिला बन्दर नौका और जटायु को अपनाकर लिया। हे महाराज दशरथनन्दन गरीबों को राजा कर दिया तुम गरीबों को निहाल करते हो। और मैं तुम्हारा गरीब हूं हे कृपालो! एक बार कहिये कि तुलसीदास मेरा है॥ ७६॥

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुञ्जहारी ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसों ॥
ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हित मेरो ॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्योंत्यों तुलसी कृपालु चरणशरण पावै ॥८०॥

तुम दयालु मैं गरीब तुम दानी मैं याचक तुम पापों को नाश करने वाले मैं प्रसिद्ध पापी तुम अनाथों के नाथ और मेरे समान अनाथ कौन है। मेरे समान दुःखी और तेरे समान दुःख हरने वाला कोई नहीं है। तुम ब्रह्म हो मैं जीव हूं। तुम स्वामी मैं सेवक हूं तुम मेरे सब प्रकार हितैषी हो पिता माता गुरू मित्र हो तुम से हमारा बहुतेरा नाता है जो चाहे मान लीजिये हे कृपालु! तुलसीदास ज्यों त्यों चरणों की शरण पावे ॥ ८० ॥

और काहि मागिये को मांगिबो निवारै।
अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ॥
धर्मधाम राम काम कोटिरूप रूरो ।
साहब सब विधि सुजान दान खड्ग शूरो ॥
सुसमय दिनद्वैनिशान सबके द्वार बाजै ।
कुसमय दशरथके दानि तैं गरीबनिवाजै ॥
सेवा बिन गुणविहीन दीनता सुनाये ।
जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥
तुलसिदास याचत रुचि जानि दान दीजै ।
रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहिं कीजै॥ ८१ ॥

और किससे माँगे मांगने को कौन हर सकता है॥ कष्ट गरीबी को नाश करनेवाला और कामना के फल को देनेवाला कौन

है। हे राम तुम धर्म के मन्दिर करोड़ों कामदेव के रूप से सुन्दर सब प्रकार स्वामियों में सज्जन दानरूपी तलवार के शूर बीर हो। अच्छे समय तो सबके द्वार दो दिन के लिये बाजे बजते हैं परन्तु हे रामजी तुम ऐसे दानी हो कि कुसमय में गरीबों को निहाल करते हो॥ निर्गुणी जन बिना सेवा भी जिन जिनने गरीबी सुनाया तुमने निहाल कर दिया कि सुख से फूले फिरते हैं। अब तुलसीदास मंगता की इच्छा जान दान दीजिये हे रामजी! मुझ चकोर के लिये लिये तुम चन्द्र बनो॥ ८१॥

राग भैरव।

दीनबन्धु सुख सिन्धु कृपाकर कारुणीक रघुराई।
सुनहु नाथ मन जरत त्रिविधज्वर करत फिरत बौराई॥
कबहुँ योगरत भोगनिरत शठ हठ वियोग वश होई।
कबहुँ मोहवश द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई॥
कबहुँ दीन मति हीन रंकरत कबहुं भूप अभिमानी।
कबहुं मूढ पण्डित विडम्बरत कबहुं धर्मरत ज्ञानी॥
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय कबहुं नारिमय भासै।
संसृति सन्निपात दारुणदुख बिनु हरि कृपा न नासै।
संयम जप तप नेम धर्म व्रत बहु भेषज समुदाई।
तुलसीदास भव रोग रामपद प्रेमहीन नहीं गाई॥८२॥

हे गरीबों के सखा सुखके समुद्र दया करनेवाले दया के स्वरूप हे स्वामी हे रघुराज सुनिये। मन तीनों प्रकार के ताप से जरता सिड़ापन करता फिरता है। कभी तो योग में लगना दुष्ट भोगों में लिपट हो हठवश वियोगी होना है। कभी मोहके फन्दे मेंही द्रोह करता व कभी बड़ा दयालु होता कभी बुद्धि हीन हो विच-रता गरीबी में पड़ता कभी राजा बनकर अभिमान करता कभी

मूर्ख कभी पण्डित बनता कभी निन्दा करता कभी धर्म में लगकर ज्ञान कथा कहता कभी संसार को देख धनी हो जाता कभी स्त्री-रूप से सोभित होता जन्म पालन नाश के सान्निपात का कठिन दुःख बिना रामकी कृपा नहीं नष्ट होता । यम नियम जप तप धर्म व्रत बहुतेरी औषधी की राशि है । तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी के चरणों की भक्ति के बिना संसारी रोग नहीं जाता है ॥ ८२ ॥

मोहजनित मल लाग विविधविधि कोटिहु यतन न जाई । जन्म २ अभ्यास निरत चित अधिक २ लपटाई ॥ नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागै । हृदयमलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागै ॥ परनिन्दा सुनि श्रवण मलिन भे बचनदोष पर गाये ॥ सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरण बिसराये ॥ तुलसीदास व्रत दान ज्ञान तप शुद्ध हेतु श्रुति गावै । रामचरण अनुराग नीर बिनु मल अतिनाश न पावै ॥ ८३ ॥

मोह की मैल बहुत भांति लगा है वह करोड़ों उपाय से नहीं जाता। अनेकों जन्म में मन को अभ्यास में लगा के अधिक से अधिक लिपट जाता है । पराई स्त्री को देख आँखें मैली होती फिर उसी विषय के साथ में लगकर मन भी मैला हो जाता है। इच्छा बड़ाई और अहंकार से हृदय मलीन है स्वाभाविक सुखरूप छोड़ के जीव बना है । पराई निन्दा सुन के कान मलीन हुए पराये की निन्दा करने से बचन इस प्रकार सब भांति से मैलका बोझा लदा है । इस लिये कि रामजी के चरणों को भुला दिया है तुलसीदास कहते हैं कि व्रत दान ज्ञान और तपस्या आदि से निर्मल होने के लिये वेद में कहते हैं । परन्तु श्रीरामजी के चरणों में प्रेमरूपी जल के बिना महामलका नाश नहीं होने पाता है ॥ ८३ ॥

राग जैतश्री ।

कछु ह्वै न आइ गयो जन्म जाय । अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय ॥ लरिकाई बीती अचेत चित चञ्चलता चौगुनी चाय। यौवन ज्वर युवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भरि मदनवाय ॥ मध्य वयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय । राम विमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निशि वासर तपो तिहूं ताय ॥ सेये नहिं सीतापतिसेवक साधु सुमति भलि भक्ति भाय । सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुबंशराय ॥ अब शोचत मणिबिनु भुजंग ज्यों विकल अंग दले जरा धाय । शिर धुनि २ पछितात मींजि कर कोउ न मीतहित दुसहदाय॥ जिन्हलगि निज परलोक बिगार्‌यो ते लजात होत ठाढ़ ठायं ।तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथहि तर्‌यो गयन्द जाके एकनायँ ॥ ८४ ॥

कुछ भी न हो पाया जन्म लेकर वृथा गंवाया अति दुर्लभ देह पाके छल कपट छोड़ मन वचन काय से श्रीरामजी का भजन नहीं किया । लड़कपन में चौगुना खेल खेलकर चंचलता से चित्त को अचेत बनाकर बिताया फिर स्त्रीरूप कुपथ्य करके जवानी-रूपी ज्वर में फँसकर कामदेवरूपी त्रिदोष वात को शरीर में भर लिया और धन कमाने के लिये खेती व्यापार आदि अनेक उपायों से बीच की आयु को बिताई । श्रीरामजी से विमुख होकर स्वप्न में भी सुख नहीं पाया किन्तु दिन रात तीनों तापों से तपता रहा राम के भक्त और ज्ञानी सन्त समाज का भली भांति प्रेमभाव

से सेवन नहीं किया। जो चरित्र रामजी ने किये उन्हें हर्ष से सुने नहीं जैसे सर्प बिना मणि के व्याकुल हो सोचता है। बुढ़ापे में दौड़कर अंग तोड़ दिये शिर पीट पीट पछताता और कठिन अग्नि में जलता हाथ मींजता है। उस समय कोई मित्र नहीं है जिनके लिये परलोक को बिगाड़ा है वह पास में खड़े होकर शर्माते हैं। हे तुलसीदास अब भी रामको यादकर क्योंकि जिसके एक बार नाम से गजेन्द्र तर गया है॥ ८४॥

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ। भयो है सुगम तोको अमरअगम तनु समुझिधौं कत खोवत अकाथ॥ सुखसाधन हरि विमुख वृथा जैसे श्रम फल घृतहित मथे पाथ। यह विचारि तजि कुपथ कुसंगति चलि सुपन्थ मिलि भले साथ॥ देखु रामसेवक सुनि कीरति रटहिं नाम करि गान गाथ। हृदय आनु धनुबाणपाणि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ॥ तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ रामपदकमल माथ। जनि डरपहि तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥ ८५॥

तो रे मन! तू हाथ मींजकर पछतायेगा तुम देवों से भी अगम देह पाकर समझ तो व्यर्थ क्यों खोता है। सरलता से साधना करनेवाली शरीर राम से विमुख व्यर्थ है। जैसे घी के लिये जल मथने में परिश्रम फल है। यह विचार करके कुसंगति-रूप कुमार्ग को छोड़ भलों के साथ मिलकर सुमार्ग में चल। राम भक्तों का यश सुन और देखकर उनकी कथा गानकर नाम को रटो हाथोंमें धनुष बाण लिये मुनियों के समान वस्त्र पहिने कमर में तरकस लगाये प्रभु का हृदय में ध्यान करो। हे तुलसीदास! संसार के जाल को छोड़कर रामजी के चरणकमलों में शिर

नमाकर निर्भय होओ। सीतापति रघुनाथ ने तुमारे समान अनेकों दुष्टों को अपने में मिला लिये हैं ॥ ८५ ॥

राग धनाश्री।

मन माधव को नेकु निहारहि।
सुनु शठ सदा रङ्क के धन ज्यों क्षण २ प्रभुहि सँभारहि॥
शोभाशील ज्ञानगुणमन्दिर सुन्दर परमउदारहि। रंजन-सन्त अखिल अघगंजन भञ्जन विषय विकारहि ॥ जो बिन योग ज्ञान व्रत संयम गयो चहहि भवपारहि । तौ जनि तुलसिदास निशिबासर हरिपदकमल बिसारहि॥८६॥

रे मन! सरलस्वभाव लक्ष्मीपति को देखो, रे दुष्ट! सुन, जैसे सदा कंजूस धन को सभारता है उसी तरह क्षण क्षण में प्रभुको संभार रखिये। शोभा शील ज्ञान गुणों के मन्दिर सुन्दर अत्यन्त दानी सज्जनों के प्रेमी सब पापों को नाश करने वाले हैं। जो बिना योग यज्ञ व्रत संयम किये संसार के पार जाना चाहता है। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी के चरणकमल को दिन रात मत भूल ॥ ८६ ॥

इहै कह्यौ सुत वेद चहूँ ।
श्रीरघुबीरचरण चिन्तन तजि नाहिं न ठौर कहूं ॥ जाके चरण विरंचि सेई सिधि पाई शङ्कर हूं। शुक सनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूँ यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कतहूँ । हरिपद पङ्कज पाइ अचल भइ कर्म बचन मनहूँ ॥ करुणासिन्धु भक्तचिन्तामणि शोभा

सेवतहूँ । और सकल सुर असुर ईश सब खाये उरग छहूं ॥ सुरुचि कह्यो सोइ सत्य तात अति परुषबचन जबहूं । तुलसिदास रघुनाथविमुख नहिं मिटै बिपति कबहूं ॥८७॥

हे पुत्र ! चारो वेदों ने यही कहा है कि रामजी के चरणों का ध्यान छोड़ कहीं ठौर नहीं है । जिस के चरण की सेवा कर ब्रह्मा शिव ने सिद्धि पाई । शुकदेव सनकादि जो मुक्त होकर घूमते हैं और अबतक भजन करते हैं । यद्यपि लक्ष्मी बहुत चंचल है सदा कहीं नहीं ठहरती । परन्तु विष्णुका चरणकमल पाके मन बचन कर्म मे निश्चल हो जाती है । करुणा सिन्धु भगवान् भक्तों के चिन्तामणि हैं सेवा करने से ही शोभा है । दूसरे सब देवता असुर राजाओं को छओ विकाररूपी सर्पों ने भक्षण कर लिया है । इसीपर रानी सुरुची ने जो कहा है वह सत्य है । हे तात ! बड़ा कठोर वचन है तब भी तुलसीदास कहते हैं कि रामजी विमुख न हों तो कभी दुःख दूर नहीं होगा ॥ ८७ ॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरिपद विमुख काहू न लह्यो सुख शठ यह समुझ सबेरो । बिछुरे शशि रवि मन नयनन ते पावत दुख बहुतेरो ॥ भ्रमत श्रमित निशि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥ यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुयस घनेरो । तजे चरण अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥ छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो । तुलसिदास सब आस छांड़िकरि होहु रामकर चेरो ॥ ८८॥

रे अज्ञानी मन ! मेरा सिखावन सुन। श्री रामजी के चरणों से मुख को फेर कर किसीने भी सुख नहीं पाया रे दुष्ट यह पहले ही समझ ले कि चन्द्रमा सूर्य भी उनके मन और आंखों से

अलग होकर बहुत दुःख पाते हैं । रातदिन आकाश में घूमते २ थक जाते हैं फिर भी राहुरूपी महा शत्रु का भय मानते हैं। यद्यपि गंगाजी परमपवित्र हैं तीनो लोक में उनका बड़ा यश है परन्तु विष्णु के चरण को छोड़ने उनका प्रति दिन का बहना नहीं हो सकता है । इससे बिना राम के भजे क्लेश नहीं छूटता ऐसे सन्देह को वेदों ने भी दूर कर दिया है । हे तुलसीदास तुम सब भरोसा छोड़ कर श्रीरामजी के सेवक होओ ॥ ८८ ॥

कबहूं मन विश्राम न मान्यो।
निशि दिन भ्रमत बिसारि सहजसुख जहँतहँ इन्द्रिन तान्यो॥
यदपि विषय सँग सहे दुसहदुख विषयजाल अरुभान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममतावश जानतहू नहिं जान्यो ॥
जन्म अनेक किये नानाविधि कर्मकीचित सान्यो। होइ न विमल विवेक नीर विनु वेद पुराण बखान्यो ॥ निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो। तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जन्म सिरान्यो ॥८९॥

रे मन ! तूने कभी आराम नहीं मनाया । सहज आनन्द को छोड़कर जिधर तिधर दिन रात दौड़ता है और वहां वहां इन्द्रियों को खींचता है । यद्यपि विषयों के साथ कठिन दुःखों को सहे तौ भी विषमतारूपी जाल में अरुभा है तो भी रे मूर्ख मोहवश उसे नहीं छोड़ता और जान बूझकर भी नहीं समझता । तैने अनेकों जन्म लिए अनेकों प्रकार के कर्मरूपी कीचड़ में मनको लिपटाया है वह ज्ञानरूपी जल के बिना पवित्र नहीं होगा ऐसा वेद पुराण भी कहते हैं। अपनी भलाई के लिये स्वामी पिता माता तथा गुरु के समान श्रीरामजी को प्रसन्नता से मनमें नहीं रखा। तुलसीदास कहते हैं कि तेरी प्यास कब जायगी क्योंकि तालाब खनतेही आयुष्य का अन्त होगया ॥ ८९ ॥

मेरे मन हरिजू हठ न तजै।

निशि दिन नाथ देउँ सिख बहुबिधि करत स्वभाव निजै ॥ ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुण दुख उपजै । है अनुकूल बिसारि शूल शठ पुनि खल पतिहि भजै॥ लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यों जहँ तहँ शिर पदत्रान बजै। हौं हार्‍यों करि यतन विविध विध अतिशय प्रबल अजै। तुलसिदास वश होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ९० ॥

हे रामजी! मेरा मन अपना हठ नहीं छोड़ता है। हे प्रभु! दिन राति कितना भी सिखाता हूं परन्तु बदलता नहीं है। जैसे युवा स्त्री पुत्र पैदा करने के दुःख को जानकर की प्रसव में महा दुःख भोगना पड़ता है परन्तु वह मूर्खा युवती पति के सामने उस दुःख को भूलकर फिर भी उस दुष्ट पति का प्रसंग करती है। जैसे घर का पशु लोभ वश जहां तहां खाता फिरता है और सिर पर जूते बजते हैं परन्तु तो भी वह नीच वही राह चलता है उससे लज्जित कभी नहीं होता। अनेक प्रकार के उपाय से मैं हार गया यह मन बड़ाही बलवान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह भी बश में होगा जब सब को प्रेरणा करनेवाले श्रीरामजी की कृपा होगी ॥ ९० ॥

ऐसो मूढ़ता या मन की।

परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आश करत ओसन की। धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। नहिं तहँ शीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की ॥ ज्यों गच कांच विलोकि सेन जड़ छांह आपने तन की। टूटत अति आतुर अहार वश क्षति विसारि आनन की ॥ कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानतहौ गति जन की। तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाजनिज पनकी ॥९१॥

इस मनकी ऐसी मूर्खता है कि गंगाजल के समान श्रीराम जीकी भक्ति को छोड़कर ओसका भरोसा करता है जैसे प्यासा पपीहा धूआं की राशि को देख कर उसे बादल समझे । परन्तु उसमें न तो शीतलता और नतो उससे जल पाकर अपनी आंखों की हानि करता है । जैसे अभिमानी बाज पच्छी शीशे की छत में अपनी परछाहीं को देख कर भूख बश उसमें एकाएक गिर पड़ता है । किन्तु अपने मुख के हानिका खबर नहीं करता । हे कृपा-निधान ! कहां तक इस जीव के कुचाल को कहूं उसकी गति जानते हो । हे प्रभु ! तुलसीदास का कठिन क्लेश हरिये और अपनी प्रतिज्ञा का लाज कीजिये ॥ ९१ ॥

नाचतही निशि दिवस मरयो ।
तबहीं ते न भयो हरि थिर जबते जिव नाम धरयो ॥
बहु वासना विविध कंचुक भूषण लोभादि भरयो । चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वांग न करयो ॥ देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं याचत कोउ उबरयो। मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हरयो ॥ थके नयन पद पाणि सुमति बल संग सकल बिछुरयो। अब रघुनाथ शरण आयो जन भवभय विकल डरयो ॥ जेहि गुण ते बश होहु रीझि कर सो मोहिं सब बिसरयो । तुलसिदास निजभवन-द्वार प्रभु दीजै रहन परयो ॥९२॥

नाचतेही दिनरात मरता हूं । जब से भगवान ने जीव यह नाम रखा तभी से सावधान नहीं हुआ । अनेक प्रकारकी वासना अनेक प्रकार का स्वरूप अनेक प्रकार के वस्त्र भूषण आदि को पहन कर जीवों में कौन स्वांग नहीं किया । देव दैत्य नर नाग इनसे भी मागने में बाकी नहीं रहे परन्तु मेरी कठिन दरिद्रता के दोष और दुख को किसी ने तो दूर नहीं किया । हाथ पग नयन

थक गये बुद्धि और बल का भी साथ छूट गया अबतो हे राम ! सेवक हो शरण आया हूं । संसार के भय से डरा हुआ व्याकुल हूं । जिन गुणों से प्रसन्न होकर आप वश होतेही वह भी सब भूल गया । हे नाथ । तुलसीदास को अपने मन्दिर के द्वार पर पड़ा रहने दीजिये ॥ ६२ ॥

माधवजू मोसम मन्द न कोऊ ।
यद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहि ओऊ ॥ रुचिर रूप आहार वश्य उन्ह पावक मोह न जान्यो । देखत बिपति विषय न तजतहौं ताते अधिक अयान्यो ॥ महामोहसरिता अपार महँ सन्तत फिरत बह्यो । श्रीहरि चरणकमल नौका तजि फिरि २ फेन गह्यो ॥ अस्थि पुरातन क्षुधित श्वान अति ज्यों भरिमुख पकरयो । निज तालूगत रुधिर पानकरि मन संतोष धरयो ॥ परम कठिन भवव्याल ग्रसितहौं त्रसित भयो अतिभारी । चाहत अभय भेक शरणागत खगपतिनाथ बिसारी ॥ जलचरबृन्द जालअन्तरगत होत सिमिटि यकपासा । एकहि एक खात लालचवश नहिं देखत निज नासा ॥ मेरे अघ शारद अनेक युग गनत पार नहीं पावै । तुलसीदास पतित पावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ॥ ६३ ॥

हे माधवजी ! मेरे बराबर नीच कोई नहीं है । यद्यपि मछलियाँ पतंग आदि भी अज्ञानी हैं परन्तु मैं उनकी बराबरी भी नहीं करसकता । क्योंकि वे तो क्षुधा वश अग्नि के रूप जालपर मोहित होते हैं उन्हें वे आगनहीं समझते । परन्तु मैं तो विषयों की विपत्ति देखकर भी उसे नहीं छोड़ता इस कारण उनसे अज्ञानी मैं हूं । महामोह रूपी अपार नदी में निरन्तर बहता

फिरता और भी रामजी के चरणकमलरूपी नौका को छोड़कर फेन को पकड़ता हूं। जैसे भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी को मुह से भर के पकड़ता और अपने तालूम में से गिरे हुये खून को चूस कर मनमें सन्तुष्ट होता है ऐसे ही कठिन संसाररूपी सर्प से ग्रास किया हुआ बहुत ज्यादा पीड़ित हुआ। और गरुड़पति श्रीराम को भूलकर मेढ़क की शरण से अभय चाहता हूं। जैसे जल जन्तुओं के वृन्द जाल के भीतर पड़कर सिमट के इकट्ठा होकर लोभ वश एक एक को खाते और अपना मरना नहीं देखते हैं। ऐसेही मेरे पाप को तो सरस्वती भी अनेक युगों तक गिन के पार नहीं पा सक्ती हैं। किन्तु तुलसीदास को यही भरोसा मनमें आता है कि मेरे स्वामी पतित पावन हैं ॥ ९३ ॥

कृपा सो धौं कहां बिसारी राम ।

जेहि करुणा सुनि श्रवण दीन दुख धावत हौ तजि धाम॥ नागराज निजबल बिचारि हिय हारि चरण चित दीन्ह। आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलम्ब न कीन्ह। दिति सुत त्रासत्रसित निशि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी ॥ अतुलितबल मृगराजमनुजतनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥ भूपसदसि सब नृप विलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी। वसनपूरि अरिदर्प दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥ एक एकते रिपु त्रासत जन तुम राखे रघुबीर। अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर ॥ लोभग्राह दनुजेशक्रोध कुरुराज बन्धु खल मार। तुलसिदास प्रभु यह दारुण दुख भंजहु राम उदार ॥ ९४ ॥

हे रामजी उस कृपा को कहां विसार दियो। जिस कृपा से दुःखियों के दुःख को कानों सुनकर स्थान छोड़ दौड़ते हो उस कृपा को कहां भूल गये। गजेन्द्र ने अपना बल बिचार चित्त में हार

मानकर जब तुम्हारे चरणों में मन लगाया तो कष्ट के बचन सुनते ही गरुड़ को छोड़कर चल दिये देर नहीं किये। हिरण्यकश्यपु के भय से दिन रात दुःखित प्रह्लाद की टेक की रक्षा किये अतुलित बलवाली नृसिंह के देह से उस दैत्य को मारा है यह वेद जानता है। राजसभा में द्रौपदी ने सब राजाओं को देखकर कहा हे प्रभु! हमारी लाज रखो तो दैत्य सूदन उस के वस्त्र को पूराकर के शत्रुओं का घमण्ड तोड़कर यह महा कृपा किये। हे रामजी! एक से एक भक्त को शत्रुओं के हाथ से उनकी रक्षा किये हो अब मुझे बहुत से शत्रु महा कठिन पीड़ा देते हैं। क्यों नहीं संसारी पीड़ा को हरते हो। लोभरूपी ग्राह क्रोधरूपी हिरण्यकश्यपु दुष्ट कामदेव-रूपी दुःशासन है। हे प्रभु! तुलसीदास का यह कराल दुःख नष्ट करो क्योंकि हे रामजी तुम दयालु हो ॥ ६४ ॥

काहेते हरि मोहिं बिसारो।

जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ संभारो ॥ पतित-पुनीत दीनहित अशरणशरण कहत श्रुति चारो ॥ हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं वेद न मृषा पुकारो ॥ खग गणिका गज व्याध पाँति जहँ तहँ हौंहूं बैठारो। अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो फारो ॥ जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेशते न्यारो। तौ हरि रोष भरोस दोष गुण तेहि भजते तजि गारो ॥ मशक विरंचि विरंचि मशक सम करहु प्रभाव तुम्हारो। यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो ॥ नाहिन नरक परत मोकहँ डर यद्यपि हौं अतिहारो। यह बड़ित्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ॥ ६५ ॥

हे रामजी! किस लिये मुझे भुलाते हो और अपनी महिमा को जानते हो तो भी मेरे पाप को हे प्रभु! नहीं संभालते हो।

पापियों को पवित्र कहनेवाले दीन को हितकारी अशरण के शरण हो यह चारो वेद कहते हैं। तो क्या मैं अधम और दीन नहीं हूं या वेदों ने झूठा पुकार किया है। जहां जटायु वेश्या गजेन्द्र व्याध की पांत है वहीं मुझे भी बैठने की जगह दीजिये। हे दयानिधान! अब किस शरन से परोसने और पत्तल फाड़ते हो। यदि कलियुग तुम्हारी आज्ञा से अलग बलवान होता तो हे रामजी! क्रोध भरोसा दोषों और गुण आदि के झगड़ों को छोड़कर उसी को ही भजन करता। परन्तु मच्छड़ को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छड़ के बराबर बनाते हो ऐसा तुम्हारा प्रभाव है। यह बल होते हुए भी मुझे छोड़ते हो तो हे नाथ! उसमें मेरा क्या बश है। यद्यपि नरक में गिरने का मुझे डर नहीं है क्योंकि मैं बहुत हार गया तो भी यह बड़ा दुःख तुलसीदास को है कि हे स्वामिन्! तुम्हारे नामों ने भी मेरे पापों को नहीं जलाया ॥ ९५ ॥

तऊ न मेरे अघ अवगुण गनि हैं।

जो यमराज काज सब परिहरि यहो ख्याल उर अग्नि हैं॥ चलि हैं छूटि पुञ्जपापिन्ह के असमंजस जिय जनिहैं। देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरो भूरि भलाई भनि हैं॥ हँसि करि हैं परतीत भक्त की भक्तिशिरोमणि मनि हैं। ज्यों त्यों तुलसिदास कोशलपति अपनायहिपर बनि हैं॥ ९६ ॥

तो भी मेरे पाप और अवगुण को न गिनेंगे। यदि महाराज सब काम छोड़कर ख्याल हृदय में लावैंगे तो पापियों के झुंड छूटकर चले जावेंगे। हृदय में यही असमंजस जानके और अधिकार में खलल देखकर प्रभु से मेरी विशेष करके भलाई ही कहैंगे। तो वे हंस कर भक्तों का विश्वास करैंगे और भक्तों में शिरोमणि मानैंगे। जैसे हो वैसे हे राम! तुलसीदास को अपनाही बनाये बनेगा ॥ ९६ ॥

जो पै जिय धरिहौ अवगुण जन के ।
तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मो पै विपुलबृन्दअघ वन के ।। कहिहै कौन कलुष मेरे कृत कर्म वचन अरु मन के । हारहिं अमित शेष शारद श्रुति गिनत एक इक छन के ।। जो चित चढ़ै नाममहिमा निज गुणगण पावनपन के । तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्यों दशन तोरि यमगन के ।। ९७ ।।

जो दास के अवगुण को चित्त में रखेगो तो मुझसे पुण्यरूपी नख से बड़े २ पापों के बन कैसे कटैंगे । क्योंकि मेरे पाप मन वचन कर्म से किये गये हैं कौन कहेगा कि एक एक क्षण के किये हुए गिनने में बहुत से शेष रह जायँगे जिनको जोड़ने में वेद और सरस्वती हार जावेंगी । इससे जो अपने नामों के महिमा की पवित्रता और गुणों की राशि चित्त में आवेगी तो यमराज के दूतों के दांत तोड़ अजामिल की तरह तुलसीदास को भी तारोगे ।। ९७ ।।

जो पै हरि जनके अवगुण गहते ।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ।। जो जप यज्ञ योग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते । तौ कत सुर मुनिवर विहाय व्रज गोपगेह बसि रहते ।। जो जहँ तहँ प्रण राखि भक्त को भजन प्रभाव न कहते । तौ कलि कठिन कर्म मारग जड़ हम केहि भांति निबहते ।। जो सुतहित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते । तौ यमभटसांसतिहर हम से वृषभ खोजि २ नहते ।। जो जग विदित पतितपावन अति बांकुर विरद न बहते । तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहुं सुगति न लहते ।। ९८ ।।

यदि भगवान् सेवक के दोष को लेते तो इन्द्र, दुर्योधन और

बालि से क्यों हठ कर के बैर मोल लेते। यदि जप यज्ञ योग और व्रतों के बिना केवल प्रेम नहीं चाहते तो क्यों देवता मुनीश्वरों को छोड़ कर ब्रज में गोपों के घर में निवास करते। और जहाँ तहाँ भक्तों की प्रतिज्ञा रख के भजन का प्रभाव न कहते तो कलियुग के कठिन कर्म मार्ग में मूर्खों का किस भांति निर्वाह होता। और यदि पुत्र का नाम लेते हुए भी अजामिल के अपार पाप को क्यों भस्म करते तो यमदूत सासतरूपी हल में मेरे समान बैलों को ढूढ ढूढ़ के नाधते। यदि संसार में प्रसिद्ध पतितों को पवित्र करनेवाले और बांके बाने को न प्राप्त होते तो अनेकों कल्पों तक तुलसी ऐसे विषम जीव स्वप्न में भी अच्छी गति नहीं पाते ॥ ९८ ॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के वश होत सदा यह रीति ॥ जिन बांधे सुर असुर नाग नर प्रबलकर्म को डोरि। सोई अविछिन्न ब्रह्म यशुमति हठि बांध्यो सकत न छोरि ॥ जाकी मायावश विरंचि शिव नाचत पार न पायो। करतलताल बजाइ ग्वाल युवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥ विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवनपति वेदविदित यह लोख। बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज मांगो भीख ॥ जाको नाम लिये छूटत भव जन्ममरण दुखभार। अम्बरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दश बार ॥ योग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी बानर भालु चपल पशु पामर नाथ तहां रति मानी ॥ लोकपाल यम काल पवन रवि शशि सब आज्ञाकारी। तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत करधारी ॥ ९९ ॥

भगवान् ऐसा प्रेम सेवक पर करते हैं कि अपनी प्रभुता छोड़ कर सेवक के वश में हो जाते हैं। यह सदा की रीति है

देखो जिसने बड़ी दृढ़ कर्म की रस्सी में देवता दैत्य नाग और मनुष्यों को बांध रखा है। उसी अद्वितीय ब्रह्म को यशोदा ने हठ से बांध दिया फिर उस बन्धन को छोर नहीं सकते थे। जिस की माया के वश में ब्रह्मा शिव नाचते हुए पार नहीं पाते उसी को गोपियों ने ताली बजा कर नाच नचाया। वेद से यह लेख प्रसिद्ध है कि संसार के रक्षक लक्ष्मीनाथ तीनों लोक के प्रभु होकर भी बालि से कुछ भी प्रभुता नहीं चली। किन्तु ब्राह्मण हो भीख मांगी जिसका नाम लेने से संसारी जन्ममरण के दुःखों का भार छूट जाता है। उसी दया सागर ने अम्बरीष के हित में लग दशबार जन्म लिया। योग वैराग्य ध्यान जप तप कर के जिसको मुनि ज्ञानी लोग ढूढ़ते हैं उसी प्रभु ने बानर भालु आदि में प्रीति माने। लोकपति यमराज काल सूर्य चन्द्र सभी आज्ञाकारी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ईश्वर उग्रसेन के द्वारपर हाथ में बेत लेकर खड़े हुए ॥ ९९ ॥

विरद गरीबनिवाज राम को।

गावत वेद पुराण शम्भु शुक्र प्रकट प्रभाव नामको ॥ ध्रुवप्रहलाद विभीषण कपिपति जड़पतंगपाण्डव सुदामको। लोक सुयश परलोक सुगति इन्हमें कोहै राम कामको ॥ गणिका कोलकिरात आदिकवि इनते अधिकवामको ॥ बाजि-मेध कब कियो अजामिल गजगाते कब सामको ॥ छली मलीन हीन सबही अँग तुलसोसोंछीनछामको। नाम नरेशप्रताप प्रबलजगयुगयुगचलतचामको ॥ १०० ॥

रामजी का स्वरूपही गरीब निवाज है। नाम का प्रभाव तो वेद पुराण शिव शुकदेव प्रत्यक्ष गान करते हैं। ध्रुव प्रहलाद विभी-षण सुग्रीव यमलार्जुन जटायु सुदामा का लोक में तो सुयश हुआ परलोक में मुक्तिपाई। इनमें से राम के काम का कौन है। वेश्या केवट व्याध बाल्मीकि इनसे अधिक पापी कौन। व अजामिल ने

कब अश्वमेध किया गज ने कब सामवेद गाया छली पापी सब कर्मों के अंग से रहित तुलसी समान दुर्बल कौन। राजा के नाम का प्रतापही बलवान है संसार में युग युग चमड़ा भी चलता है॥१००॥

सुनि सीतापति शील सुभाउ।

मोद न मन तनपुलकि नयनजल सो न रखेरहखाउ॥ शिशु-पन ते पितु मातु बंधुगुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम विधुवदन रिसौहैं सपनेहु लख्यो न काउ॥ खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ। जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥ शिला शाप संताप विगत भइ परसत पावन पाउ। दई सुगति सो न हेरि हर्ष हिय चरण छुये पछिताउ॥ भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइगे ताउ। क्षमि अपराध क्षमाय पांयपरि इतो न अनत समाउ॥ कह्यो राज वन दियो नारिवश गरि गलानि गे राउ। ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों निज तनु मर्म कुघाउ॥ कपि सेवावश भये कनौड़े कह्यो प्रवनसुत आउ। दीबे को न कछू ऋणियां हौं धनिक तु पत्र लिखाउ॥ अप-नाये सुग्रीव विभीषण तिनन तज्यो छलछाउ। भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ॥ निज करुणा करतूति भक्त पर चपत चलत चरचाउ। सकृत प्रणाम प्रणत यश वरणत सुनन कहत फिरिगाउ॥ समुझि समुझि गुण-ग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ। तुलसिदास अनयास राम-पद पै है प्रेम पसाउ॥ १०१॥

श्रीरामजी का शील स्वभाव सुनके जिसके मनमें आनन्द देह में पुलकावलि आंखों में जल न आया तो वह मनुष्य धूर फांके। क्योंकि लड़कपन से पिता माता भाई गुरु सेवक मन्त्री मित्र कहते

है कि रामजी का मुख चन्द्रमा के समान है उसे स्वप्न में भी क्रोधित किसी ने नहीं देखा है। अपने भाई और बालकों के साथ खेलते आपस की अनीति कहते हुवे उन्हे चुचुकार के प्यार करते दांव देते दिखलाते थे। पवित्र चरणों को छुआने से शिला के शाप का दुःख छूटगया और उसे मुक्ती दी। वह देख तो मनमें प्रसन्नता न हुई किन्तु पैर छुआने का पछितावा हुआ। शिव का धनुष तोड़ा राजाओं की निन्दा हुई और परशुराम ताव खा गये उसे क्षमाकर उलटे पैरों पकड़ के अपराध क्षमा कराया इतनी समाई दूसरे में कहां। किन्तु नहीं राजा ने राज्य देने को कहा और नारि वश होके बन दिया और उसी ग्लानि से मर गये परन्तु उसी कैकेयी का मन रखते रहे जैसे अपनी देह का भीतरी घाव। हनुमान के वश हो ऋणी हो गये कहा कि हे हनुमान! आ तेरे योग्य देने को कुछ नहीं है ऋणी हूं तू धनी है इसका पत्र लिखाले। सुग्रीव विभीषण को अपनाया व उन्होने छलकी छाया भी न छोड़ी भरत को सभा में सन्मान कर हृदय से सराहना करते अघाव नहीं हुआ। अपनी कृपा करना तो भक्तों पर उसकी चर्चा भी चलते दब जाते और भक्तों के एक बार भी प्रणाम का यश वर्णन करते सुनते व कहते कि फिर गावो। राम के गुणों का ढेर समझ समझ के हृदय में प्रेम बढ़ता है हे तुलसीदास तू बिना परिश्रम राम के चरणों में प्रेम की अधिकता पावेगा॥ १०१॥

जाउँ कहां तजि चरण तुम्हारे।

काकोनाम पतितपावनजग केहिअतिदीनपियारे॥ कौने देव बराइ विरदहित हठि हठि अधम उधारे। खग मृग व्याध पषाण विटप जड़ यवनकवन सुरतारे॥ देव दनुज मुनि नाग मनुज सब मायाविवश विचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे॥ १०२॥

तुम्हारे चरण को छोड़ कहां को जाऊं क्योंकि संसार में पतित पावन किस का नाम है। और किस को दुःखी जन प्यारे

हैं। किस देवता ने स्वार्थ को छोड़ हठ के सहित नीचों का उद्धार किया है। पक्षी मृगा बहेलिया पत्थर वृक्ष मूर्ख म्लेच्छों को किस देवता ने पार लगाया है। देवता दैत्य मुनि नाग मनुष्य सभी तो बिचारे माया में विह्वल हैं तुलसीदास कहते हैं कि हे प्रभो! उनके हाथ में आत्म समर्पण करने से आप अपने को भूल गए ॥१०२॥

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।

साधनधाम विबुधदुर्लभतनु मोहि कृपाकरिदीन्हों ॥

कोटिहु मुख कहि जाहिं न प्रभु के एक एक उपकार। तदपि नाथ कछु और मांगिहौं दीजै परमउदार ॥ विषयवारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। ताते सहिय विपति अति दारुण जन्मत योनि अनेक ॥ कृपा डोरि बनसो पद अंकुश परम प्रेम मृदुचारो। यह विधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तुम्हारो ॥ है श्रुति विदित उपाय सकलसुर केहि-दीन निहोरे। तुलसिदास यहि जीव मोह रजु जेइ बांध्यो सोइ छोरे ॥ १०३ ॥

हे रामजी! तुम ने बड़ी कृपा की। क्योंकि साधनों का मान्दिर देवताओं को दुर्लभ देह मुझ को कृपा कर के दिया। प्रभु के एक एक उपकार को करोड़ों मुख से भी नहीं कहा जा सकता है। तो भी हे प्रभु! कुछ और मांगूगा। हे महादानी! दीजिये। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली कभी एक पल भी अलग नहीं रहती। इसी से अनेक योनियों में जन्म लेते बड़ी कठिन विपत्ति को सहता हूं। कृपारूपी रस्सी से पैर के अंकुशरूपी कांटे में पराभक्तिरूपी नरम चारा देके इस भांति बंध के मेरा दुःख दूर करिये। हे राम! आप का खेल ही होगा। यद्यपि वेदों में प्रकट है सब देवता हैं। परन्तु मैं गरीब किस किस को निहारूँ। तुलसी दास कहते हैं कि इस जीव को मोहरूपी रस्सी में जिसने बांधा है वही छोरेगा ॥ १०३ ॥

यह बिनती रघुबीर गोसाईं ।
और आश विश्वास भरोसो हरो जीवजड़ताई ॥
चहौंनसुगति सुमति सम्पतिकछु ऋधिसिधि विपुलबड़ाई । हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥ कुटिल कर्म लैजाय मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआई। तहँ तहँ जनि छिन छोह छांड़िये कमठअण्डकीनाईं ॥ यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीतिप्रतीतिसगाई । ते सब तुलसिदास प्रभुहीसोंहोहिंसिमिटि इकठाई ॥ १०४ ॥

हे इन्द्रियों के स्वामी राम! यह बिनती है कि दूसरे का विश्वास आशा भरोसा जीव की मूर्खता दूर कीजिये । मुक्ति विज्ञान ऐश्वर्य ऋद्धि सिद्धि महायश होना कुछ नहीं चाहता हूं । किन्तु बिना कारण राम के चरणों में भक्ति प्रति दिन अधिकता से बढ़े विषम कर्म अपनी हठ से जहां जहां मुझे ले जावे वहां वहां कछुये के अण्डे की भांति क्षण भर भी प्रीति नहीं छोड़िये। इस संसार में जहां तक इस देह की प्रीति विश्वास सम्बन्ध है तुलसीदास कहते हैं वे सब रामही में सिमट के इकट्ठा हों ॥ १०४ ॥

जानकीजीवन की बलि जैहौं ।
चित कहै रामसीयपद परिहरि अबनकहुं चलिजैहौं ॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुं सुख प्रभुपदविमुखनपैहौं । मन समेत या तनु के वासिन्ह इहै सिखावन दैहौं ॥ श्रवणनि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं । रोंकिहौं नयन विलोकत औरहि शीश ईशही नैहौं ॥ नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं । यह छरभार ताहि तुलसी जगजाकोदासकहैहौं ॥ १०५ ॥

जानकीजी के प्राणाधार की बलिहारी जाऊंगा। चित्त कहता है कि सीता रामके चरण छोड़ अब कहीं नहीं जाऊंगा। हृदय में विश्वास हुआ कि प्रभु के चरणों से विमुख हुए स्वप्न में भी सुख नहीं पाऊंगा। इससे मन सहित इस देह के रहनेवाले इन्द्रिय को कों यह शिक्षा दूंगा कि कानों से दूसरी कथा न सुनूंगा जीभ से दूसरा अक्षर न कहूंगा व दूसरे के देखने से नेत्रों को रोकूंगा व प्रभु को ही शिर झुकाऊंगा। सब नाता व प्रीति को दूर करूंगा। तुलसीदास कहते हैं कि संसार में यह छरोभार उसी को होगा जिसका कि सेवक कहलाऊंगा॥ १०५॥

अबलों नसानी अब न नसैहों।

रामकृपा भवनिशा सिरानी जागे फिरि न डसैहों॥ पायो काम चारु चिंतामणि उर कर ते न खसैहों। श्यामरूप शुचि रुचिर कसौटी चित कञ्चनहिं कसैहों॥ परवश जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज वश ह्वै न हसैहों। मनमधुकर पनकरितुलसीरघुपतिपदकमलबसैहों॥ १०६॥

अब तक जो बिगड़ा अब नहीं बिगड़ने दूंगा। श्रीरामजी की कृपा से संसाररूपी रात्रि बीत गई जागने पर अब फिर न सोऊंगा। चिन्तामणि रूपी सुन्दर नाम पाकर चित्त से और हाथ से भी नहीं छोड़ूंगा। शुद्ध सांवला स्वरूप सुन्दर कसौटी में चित्त स्वरूप सोने की परीक्षा करूंगा। पराधीन जान इन इन्द्रियों ने हंसा स्वतन्त्र होके हंसी न कराऊंगा। इस तुलसी के मन रूपी भौंरे की प्रतिज्ञा करके श्रीरामजी के चरण कमलों में रक्खूंगा॥ १०६॥

राग रामकली।

महाराज रामादर्‍यो धन्य सोई। गरुअ गुणराशि सर्वज्ञ सुकृती शूर शीलनिधि साधु तेहि सम न कोई॥ उपल केवट कीश भालु निशिचर शबरि गीध शम दम दया

दान दीने । नामलिये राम किये परमपावन सकल नर तरत तिनके गुणगान कीने ॥ व्याध अपराध की साध राखी कौन पिंगला कौन मति भक्ति भेई । कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेई ॥ पांडुसुत गोपिका विदुर कुबरी सबहि किये शुद्धता लेश कैसो । प्रेमलखि कृष्ण किये आपने तिन्हुं को सुयश संसार हरि हर को जैसो ॥ कोल खस भिल्ल सुवनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो ॥ दीनदुख-दमन श्रीरमन करुणाभवन पतितपावन बिरद वेद गायो ॥ मंदमति कुटिल खलतिलक तुलसी सरिस भौ न तिहुँलोक तिहुंकाल कोऊ । नामकी कानि पहिचानी जन आपनो ग्रसत कलिब्याल शरण सोऊ ॥ १०७ ॥

वही धन्य है जिसका महाराज रामचन्द्र ने आदर किया है उसके बराबर श्रेष्ठ गुणवान सर्वज्ञ पुण्यवान वीर शील के सागर साधु कोई नहीं है । शिला केवट बानर भालु राक्षस शबरी जटायु जो कि शम दम दया दान से रहित थे नाम लेने से राम ने सब को परम पवित्र किया कि जिन गुणों का मनुष्य गाते हैं । बहे लिये ने पापों की इच्छा क्या रख छोड़ी है और वेश्या किसज्ञान और भक्ति को जानती थी । अधम अजामिल कौनसा सोम यज्ञ किया था और गजेन्द्र ने कौन वाजपेय यज्ञ किये थे । पाण्डव गोपियां विदुर कुबरा सभी को तो शुद्ध किया इसमें शुद्धता का लेश कैसा । प्रेम देख के कृष्ण ने उनको भी अपना कर लिया कि संसार में विष्णु और शिव के समान यश छाया है । कोल भिल्ल खस यवन आदि दुष्ट नीच होकर भी श्रीरामजी को स्मरण कर ऊंचा पद किसने नहीं पाया । दीनों के दुःखनाशक लक्ष्मी के स्वामी

दया के सुन्दर मन्दिर पापियों को पवित्र करनेवाले की ऐसी कीर्ति वेदोंने गान की है। नीच मति कपटी दुष्टों में शिरोमणि तुलसी के बराबर तीनों समय तीनों लोक में कोई नहीं हुआ परन्तु नाम की मर्यादा पहचान अपना सेवक जान कलियुग रूपी सर्प को लीलने से छुड़ाकर उसे भी शरण में रक्खा ॥ १०७ ॥

राग बिलावल।

है नीको मेरो देवता कोशलपति राम।

सुभग सरोरुहलोचन सुठि सुन्दर श्याम ॥ सिय समेत शोभित सदा छवि अमित अनंग। भुज विशाल शर धनुधरे कटि चारु निषंग ॥ बलि पूजा चाहत नहीं चाहैं इक प्रीति। सुमिरतही मानै भलो पावन सब रीति॥ देहि सकल सुख दुख दहै आरतजन बन्धु। गुण गहि अघ अवगुण हरै अस करुणासिन्धु। देश काल पूरण सदा वद वेद पुरान ॥ सबको प्रभु सब में बसे सबकी गति जान ॥ को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव। तुलसिदास तेहि सेइये शंकर जेहि सेव ॥ १०८ ॥

मेरा अवधराज रामजी अच्छा है। सब लक्षणों से युक्त कमल नयन अच्छा सुन्दर श्यामरूप है। सदा सीता के साथ सुशोभित कोटि कामदेव की शोभा से युक्त है। विशाल भुजाओं में धनुष बाण को धारण किये और कमर में सुन्दर तरकस धारण किये। बलिदान व पूजा को न चाहकर किन्तु एक प्रेम चाहते हैं। ध्यान करतेही उत्तम मान लेते उसकी रीति सब भांति पवित्र है। पूरा आनन्द देते दुःखों को भस्म करते आरत भक्तों के बन्धुगणों को लेकर पाप और अवगुणों को दूर करते हुए ऐसे कृपासिन्धु सदा सर्वत्र सब समय पूर्ण हैं। यह वेद पुराण कहते हैं सब का

स्वामी सब का अन्तर्यामी सब की गति जानता है कोई करोड़ों कामना करके अनेकों देवता को पूजे परन्तु हे तुलसीदास उसी का भजन कर जिसकी शिवजी सेवा करते हैं ॥ १०८ ॥

वीर महा अवराधिये साधे सिधि होय।

सकल काम पूरण करै जाने सब कोय ॥ वेगि बिलम्ब न कीजिये लीजे उपदेश। महामंत्र जपिये सोई जो जपत महेश ॥ प्रेम वारि तर्पण भलो घृत सहज सनेहु। संशय समिध अगिनि छमा ममता बलि देहु ॥ अघ उचाटि मन वश करै मारे मद मार। आकर्ष सुख संपदा संतोष विचार ॥ जे यहि भांति भजन कियो मिले रघुपति ताहि। तुलसीदास प्रभु पद चढ़्यो जो लेहु निबाहि ॥ १०९ ॥

महा शूरबीर श्री रामजी की आराधना करिये इसी साधना से सिद्धि होती है। सब कामना पूरी करते हैं। प्रेमरूपी जलसे तर्पण करना श्रेष्ठ है स्वाभाविक स्नेह रूपी घी को डालकर सन्देह रूपी लकड़ियों में छमारूपी अग्नि को जलाकर ममत्वका बालिदान दीजिये पापों का उच्चाटन कर मनको वश करे और काम ईर्षा आदि को मारकर सुख संपत्ति सन्तोष बिचार को खींच लेवो जिसने इस प्रकार भजन किया उसे ही रामजी मिले हैं। हे प्रभु तुलसीदास चरणों पर चढ़ा है इससे निर्वाह करिये ॥ १०९ ॥

कस न करहु करुणा हरे दुख शमन मुरारि।

त्रिविध ताप संदेह शोक संशय भय हारि ॥ यह कलि-काल जनित मल मतिमन्द मलिन मन। तेहि पर प्रभु नहिं कर सम्हार केहि भांति जियै जन ॥ सब प्रकार सम-रथ प्रभो मैं सब विधि दीन। यह जिय जानि द्रवहु नहीं

मैं कर्म विहीन ॥ भ्रमत अनेक योनि रघुपति पति आन न मोरे । दुख सुख सहौं रहौं सदा शरणागत तोरे ॥ तो सम देव न कोउ कृपाल समुझौं मन माहीं । तुलसिदास हरि तोषिये सो साधन नाहीं ॥ ११० ॥

हे हरे ! क्यों नहीं कृपा करते । हे दुःखों को हरण करने वाले हे तीनों ताप सन्देह शोक संशय और भय को हरनेवाले इस कालिकाल में पैदा हुए मैलों से बुद्धि मन्द हो गयी है । तौभी हे प्रभो ! संभालते नहीं हो किस भाँति जीवे । हे स्वामिन् ! आप सब भांति समर्थ हो मैं सब भांति से गरीब हूं । क्योंकि मैं कर्म हीन अभागी हूं यह चित्तमें जान नहीं पिघलते । हे राम ! मेरे दूसरा स्वामी नहीं है अनेक योनियों में घूमता तुम्हारी ही शरण में सदासुख दुख सहता रहता हूं । हे कृपालु ! तुम्हारी बराबर देव कोई नहीं है । यह मनमें समझता हूं हे हरे तुलसी दास के पास वह साधना नहीं है जिससे प्रसन्न होतेहो ॥ ११० ॥

कहु केहि कहिये कृपानिधे भव जनित विपति अति । इन्द्रिय सकल विकल सदा निज निज स्वभाव रति ॥ जे सुख संपति स्वर्ग नरक संतत सँग लागो । हरि परिहरि सोई यत्न करत मन मोर अभागी ॥ मैं अति दीन दयालु देव सुनि मन अनुरागे । जो न द्रवहु रघुवीर धीर काहे न दुख लागे ॥ यद्यपि मैं अपराधभवन दुखशमन मुरारे । तुलसिदास कहँ आश इहै बहु पतित उधारे ॥ १११ ॥

हे दयानिधे ! कहो किससे कहूं जो संसार से मिली बड़ी विपत्ति है । सब इन्द्रियां व्याकुल हो अपने अपने स्वभाव में ही प्रेम करती हैं । जितने सुख संपत्ति स्वर्ग नरक हैं सदा साथ लग के मेरा अभागी मन श्री रामजी को छोड़े वही उपाय करता है । हे देव ! मैं दुखी हूं आपको दयालु सुन मन में प्रेम होता है यदि दया नहीं करते हो तो हे धीर ! राम दुःख क्यों न लगे ।

यद्यपि मैं अपराधों का स्थान हूं तो भी हे दुखों के नाशक मुरारि! तुलसीदास को यही भरोसा है कि तुमने बहुत से पापियों का उद्धार किया है ॥ १११ ॥

केशव कहि न जाइ का कहिये।

देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये। शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं विन तनु लिखा चितेरे। धोये मिटे न मरे भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे॥ रविकरनीर बसै अति दारुण मकररूप तेहि माहीं। बदन-हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥ कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि माने। तुलसिदास परिहरे तीन भ्रम सो आपन पहिचाने ॥११२॥

हे रामजी! कहा नहीं जाता क्या कहूं। तुम्हारी रचना को देख और समझ कर मनही मन रहना पड़ता है। शून्य दीवार में विना देह के चित्रकार ने विना रंग चित्र लिखे, जो कि धोने से भी नहीं मिटते और न तो दीवार का दुःख दूर हो सकता है इसी देह में ढूंढने से मिलते हैं। सूर्य के किरणरूपी जल में बड़ा कठिन मगर रहता है। वह विना मुखके चर अचर को खाता है जो कि उसमें जलपान करने जाते हैं। कोई सत्य कहता कोई झूठ कहता और कोई दोनों को बली मानता है। तुलसीदास कहते हैं कि तीनों भ्रम को छोड़ दे तो अपने को पहिचानता है ॥ ११२ ॥

केशव कारण कौन गुसाईं।

जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अज्ञ को नाईं ॥ परमपुनीत सन्त कोमलचित तिन्हहिं तुमहिं बनि-आई। तौ कत विप्र व्याध गणिकहि तार्‍यो कछु रही सगाई॥ काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।

सोइ कछु करहु हरहु ममता मम फिरहुं न तुमहिं बिसारे ॥ जो तुम तजहु भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे। मन वच कर्म नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहारे ॥ यद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई। तुलसिदास सीदत निशि दिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥११३॥

हे नारायण! इन्द्रियों के स्वामी क्या कारण है। जिस अपराध से मुझे दुर्जन जान जड़ के समान छोड़ दिया है। यदि अति पवित्र कोमल हृदय उन साधुओं से ही तुम्हारी बनती है तो अजामिल बहेलिया बेश्या को क्यों पार लगाया। क्या इनसे कुछ नातेदारी रही। हे भगवन्! जीव की मुक्ति संसार काल कर्म सब तुम्हारे ही हाथ है। वही कुछ कहिये और मेरे ममत्व को दूर कीजिये जिससे तुम्हें भूल भटकता न फिरूं। हे नाथ! यदि तुम छोड़ही दोगे तो भी दूसरे की सेवा न करूंगा यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। मन बचन कर्म से नरक स्वर्ग जहां जाऊंगा वहांही हे रामजी तुम्हाराही निहोरा है। हे स्वामिन्! यद्यपि प्रभु से ढिठाई करता हूं तो यह उचित नहीं हो सकता है। परन्तु तुम्हारी निठुरता देख दिनरात तुलसीदास दुःखित है ॥११३॥

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे।

प्रणतपाल प्रण तोर मोर प्रण जिअउँ कमल पद लेखे। जब लगि मैं न दीन दयालु तैं मैं न दास तैं स्वामी। तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं यद्यपि अन्तर्यामी ॥ तैं उदार मैं कृपण पतित मैं तैं पुनीत श्रुति गावै। बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं अब न तजे बनि आवै ॥ जनक जननि गुरु बन्धु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी। द्वैतरूप तमकूप परौं नहिं अस कछु यतन बिचारी ॥ सुन अदभ्रकरुणा वारि-

जलोचन मोचन भयभारो। तुलसिदास प्रभु तव प्रकाश बिन संशय टरत न टारो ॥११४॥

हे लक्ष्मीपति! अब किस हिसाब से नहीं दया करते हो। सेवक की रक्षा करना तो तुम्हारी प्रतिज्ञा है। और मेरी प्रतिज्ञा है कि चरण देखनेही से जीवित रहूं। जब तक नहीं जाना मैं दुःखित हूं। तुम कृपालु हो मैं सेवक हूं तुम स्वामी तब तक जो दुःख सहे कहा नहीं। यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं तो तुम दानी हो मैं दरिद्र हूं। तुम पवित्र मैं पापी ऐसा वेद भी कहते हैं। हे रामजी! तुमसे हमारे अनेक नाते हैं अब छोड़ते नहीं बनेगी। पिता माता गुरु भाई मित्र स्वामी सब प्रकार के हितैषी हो। द्वैत रूपी अन्धेरे कूप में न पड़ूं ऐसा कुछ उपाय विचारिये। हे कमल नयन! सुनिये आप अति दयालु और भय को नाश करनेवाले हो। हे नाथ! तुलसीदास का सन्देह तुम्हारे प्रकाश विना दूसरे से हटाये नहीं हटेगा॥ ११४॥

माधव मो समान जग नाहीं।

सबविधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं॥ तुम सम हेतुरहित कृपालु आरतहित ईश न त्यागी। मैं दुख शोक विकल कृपालु केहि कारण दया न लागी॥ नाहिंन कछु अवगुण तुम्हार अपराध मोर मैं माना। ज्ञान भवन तनु दियहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना॥ वेणु करील श्रीखंड वसंतहि दूषण मृषा लगावै। साररहित हत भाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहं पावै॥ सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि दृढ़ बिचार जिय मोरे। तुलसिदास प्रभु मोहशृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे॥११५॥

हे लक्ष्मीपति! संसार में मेरे बराबर सब प्रकार से नीच पापी गरीब विषयासक्त कोई नहीं है। और तुम्हारे समान

निष्कारण कृपा करनेवाला और दुःखियों का हितैषी दानी स्वामी नहीं है। फिर मैं दुःख और क्लेशों से व्याकुल हूं। हे कृपालु! किस कारण तुम्हें दया नहीं लगती है तुम्हारा कुछ दोष नहीं मेरा ही दोष है मैंने मान लिया कि हे प्रभु! ज्ञान का मन्दिर देह तुमने दिया उसे पाया, परन्तु मैंने प्रभुको नहीं जाना। बांस व करील भी चन्दन वसन्त को झूठा ही दोष लगाते हैं। खोंखला (बांस) हतभाग्य (करील) वह सुगन्ध और पत्ते अर्थात् बांस सुगन्ध और करील पत्ता कहिये कहां से पासकते हैं। मैं तो सब प्रकार कठिन और मुलायम हूं हे हरि। यह विचार मेरे मनमें दृढ़ है कि हे प्रभु! तुलसीदास का मोहरूपी जंजीर तुम्हारे ही छोरे से छूटेगी॥ ११५॥

माधव मोहफाँस क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै॥ घृतपूरण कराह अन्तरगत शशि प्रतिबिम्ब दिखावै। ईंधन अनल लगाइ कल्पसत औटत नाश न पावै। तरुकोटर महं बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे। साधन करिय बिचारहीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे॥ अन्तर मलिन विषय मन अति तनु पावन करिय पखारे। मरइ न उरग अनेक यत्न बल-मीक त्रिविध विधि मारे॥ तुलसिदास हरि गुरु करुणा बिन विमल विवेक न होई। बिन बिवेक संसार घोरनिधि पार न पावै कोई॥११६॥

हे माधो! मोह की फांस कैसे छूटेगी। बाहर करोड़ों उपाय करिये उससे भीतर की गांठें नहीं छूटेंगी। घी से भरे हुए कराह के भीतर पड़ी हुई चन्द्रमा की छाया दिखाई देती है उसे ईंधन में आग लगाकर सैकड़ों बार औटियेतो वहछाया नहींहो सकतीहै वृक्ष के खोखरे में पक्षी रहता है वृक्ष को काटने से पक्षी जैसे नहीं

मरता है। वैसेही विना विचार के बाहरी साधन करने पर भी मन नहीं शुद्ध हो सकता है। भीतर का मन विषयों से अति मलीन है देह धोकर शुद्ध करना ऐसा है जैसे बांसी को अनेक प्रकार के उपाय करने से भी सर्प नहीं मरता है। तुलसीदास कहते हैं कि विना भगवान और गुरु की कृपा निर्मल ज्ञान घोर संसार सागर के कोई पार नहीं हो सकता है ॥११६॥

माधव अस तुम्हारि यह माया।

करि उपाय पचि मरिय तरिय नहि जब लगि करहु न दाया ॥ सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दशा हृदय नहिं आवै। जेहि अनुभव बिन मोह जनित भव दारुण विपति सतावै ॥ ब्रह्मपियूष मधुर शीतल जो पै मन सो रस पावै। तौ कत मृगजल रूप विषय कारण निशि वासर धावै ॥ जेहि के भवन विमल चिन्तामणि सो कत कांच बटोरे। सपने परवश पर्यो जागि देखत केहि जाय निहोरे ॥ ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं। तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ॥११७॥

हे माधव! तुम्हारी माया ऐसी है कि उपाय करते उसी में मिल के मर जाइये परन्तु जब तक तुम दया नहीं करते तब तक गति नहीं है। सुनिये विचारिये समझिये समझाइये परन्तु उसका भाव हृदय में नहीं आता है। जिस भाव के बिना भ्रम से हुए संसार के कठिन क्लेश दुःख देते हैं यदि मन वह मीठा शीतल ब्रह्मरूपी अमृत का रसपान करे तो मृगतृष्णारूपी विषयों के लिये दिनरात क्यों दौड़े। जिसके घर में निर्मल चिन्तामणि हो वह काचको क्यौं इकट्ठा करेगा। स्वप्न में पराये के वश में पड़ जागने पर झूठा देखकर किसे जाय उलहना दूंगा कि छुड़वा इये। ज्ञानभक्ति के साधन अनेक हैं और सब सत्य हैं झूठ कुछ

भी नहीं परन्तु तुलसीदास के मनमें यही भरोसा है कि भगवान् की कृपा ही से भ्रम दूर होगा ॥ ११७ ॥

हे हरि कवन दोष तोहि दीजै।

जेहि उपाय सपनेहु दुर्लभ गति सोइ निशि वासर कीजै ॥ जानत अर्थ अनर्थ रूप तम कूप परब यहि लागे। तदपि न तजत श्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे ॥ भूत द्रोहकृत मोहवश्य हित आपन मैं न बिचारो। मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इनमहँ रहनि अपारो ॥ वेद पुराण सुनत समुझत रघुनाथ सकल जग व्यापो। बेधत नहिं श्रीखंड बेणु इव सारहीन मन पापो ॥ मैं अपराधसिन्धु करुणाकर जानत अन्तर्यामो। तुलसिदास भवव्यालग्रसित तव शरणउरगरिपुगामी ॥ ११८ ॥

हे भगवन् ! तुम्हें कौन दोष दे सकता है। क्योंकि जिस उपाय से स्वप्नमें भी मुक्ति दुर्लभ है वही दिन रात करता हूं। अर्थ अनर्थ को जानता हुआ भी इसमें लगके अज्ञान रूपी कुए में गिरूंगा तोभी उसे नहीं छोड़ता। जैसे कुत्ता बकरा गदहा आदि के समान विषयों में आसक्त होकर घूमता हूं। मोहमें फंसकर प्राणियों में बैर की अपनी भलाई नहीं की। घमण्ड ईर्षा और अहंकार यह ज्ञानके शत्रु हैं इन्हींमें अनन्त काल तक रहता हूं। वेद पुराणों को सुनता समझता भी हूं कि हे रामजी ! सब संसार में व्यापक हो परन्तु निःसार पापी मन बांस के समान चन्दन से बंधता नहीं है। मैं अवगुणों का स्थान हूं हे दयानिधान जानते हो क्योंकि अन्तर्यामी हो। तुलसीदास संसाररूपी सर्प से ग्रसता हुआ तुम्हारी शरण है हे गरुड़ के स्वामी। उससे छुड़ाइये ॥ ११८ ॥

हे हरि कवन यतन सुख मानहु।

ज्यों गजदशन तथा मम करणी सब प्रकार तुम

जानहु ॥ जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वच्छपद जैसे । रहनि आन विधि करिय आन हरिपद सुख पाइय कैसे ॥ देखत चारु मयूर बचन शुभ बोल सुधा इव सानी । सविष उरग आहार निठुर अस यह करणी वह बानो ॥ अखिल जीव वत्सल निर्मत्सर चरण कमल अनुरागो । ते तव प्रिय रघुबोर धोरमति अतिशय निज पर त्यागी ॥ यद्यपि मम अवगुण अपार संसारयोग रघुराया । तुलसिदास निजगुण विचारि करुणा निधान करु दाया ॥ ११६ ॥

हे रामजी ! किस उपाय से सुख मानोगे । जैसे हाथी दांत तो मेरे कर्म हैं सब प्रकार से तुम जानते हो । जो कुछ कहता हूं यदि करूं तो भवसागर को बछड़े के खुरके समान उतर जाऊं परन्तु रहना और कहना तो मोक्ष का सुख कैसे पा सकता हूं । देखने में मोर तो सुन्दर है अच्छा बचन भी अमृत के समान बोलता है परन्तु विषको धारण करनेवाले सर्पों को खाता है ऐसा कठिन है कि यह तो कर्म और बचन और सकल जीवों पर दया वैर को छोड़ तुम्हारे चरण कमल का प्रेमी है । अपना पराया को छोड़ कर धीर मति हे राम तुम्हारे प्यारे हैं । यद्यपि मुझमें दोष बहुत हैं संसार ही में रहने योग्य हूं । परन्तु हेराम ! तुलसीदास पर अपना गुण विचार कर दया कीजिये क्यों कि दया के सागर हो ॥ ११६ ॥

हे हरि कवन यतन भ्रम भागै ।
देखत सुनत विचारत यह मन निज स्वभाव नहिं त्यागै ॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई । कोउ भल कहहु देउ कछु कोउ अस वासना हृदय ते न जाई ॥ जेहि निशि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै । निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुझि महाभय लागै ॥ यद्यपि भग्न-

मनोरथ बिधिवश सुखइच्छित दुख पावै। चित्रकार करहीन यथा स्वारथ बिन चित्र बनावै॥ हृषीकेश सुनि नाम जाउं बलि अति भरोस जिय मोरे। तुलसिदास इन्द्रियसंभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे॥ १२० ॥

हे राम जी! कौन उपाय से भ्रम दूर होगा। यह मन तो देखता सुनता बिचारता हुआ भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। भक्ति ज्ञान वैराग्य आदि साधनायें हैं इसी के लिये उपाय है। परन्तु कोई मुझे भला कहे कोई कुछ देवे ऐसी इच्छा चित्तसे नहीं जाती। जिस मोहरूपी रात्रि में सब जीव सोते हैं सुन्दर कृपापात्र भक्त जागता है किन्तु अपने उलटे कर्म देख व समझ कर मुझे बड़ा डर लगता है। यद्यपि मनकी इच्छा नष्टप्राय है कर्माधीन सुख चाहता हुआ भी दुःखही पाता है। जैसे बिना हाथ का चित्रकार विनास्वार्थ चित्र बनाता है हे हृषीकेश! नाम सुन कर बलिहारि लेऊं मेरे चित्तमें बड़ा भरोसा है। हे स्वामिन्! तुलसीदास की इन्द्रियों से हुआ दुःख तुम्हारे ही हटाने से बनेगा॥ १२० ॥

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी॥ यद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥ अर्थ अविद्यमान जानिय संसृत नहिं जाइ गोसाईं॥ बिन बांधे निज हठ शठ परवश पर्यो कीर की नाईं॥ सपने ब्याधि विविध वाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई। वैद्य अनेक उपाय करहिं जागे बिन पीर न जाई॥ श्रुति गुरु साधु स्मृति संमत यह दृश्य सदा दुखकारी। तेहि बिन तजे भजे बिन रघुपति विपति सकै को टारी॥ बहु उपाय संसार तरन कहँ विमल गिरा श्रुति गावै। तुलसिदास मैं मोर गये बिन जिय सुख कबहुं न पावै॥ १२१ ॥

हे रामजी ! इस महा भ्रम को क्यों नहीं दूर करते हो । यद्यपि झूठा है परन्तु जब तक तुम्हारी कृपा नहीं होगी तब तक सत्य के समान मालूम होता है । जानता हूं धन आदि झूठ है परन्तु जन्म मरण से नहीं छटता । बिना बांधेही अपने हठ से मूर्ख पराधीन पड़ाहूं जैसे तोता । स्वप्न में अनेक प्रकार के रोगों से मानोमृत्यु की व्याधि प्राप्त हुई है बहुत वैद्य उपाय करते हैं परन्तु बिना जागे वह क्लेश नहीं जाता है वेद गुरु सज्जन और धर्मशास्त्रों का यह मत है कि जो दिखाई पड़ता है वह सदा दुःख का मूल है । बिना उसको छोड़े और बिना रामजी कीसेवा किये इस विपत्ति को कौन हटा सकता है संसार से पार होनेके लिये वह अनेक उपाय निर्मल बाणी मे गाते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि मैं हूं मेरा है यह बिना छूटे जीव कभी सुख नहीं पा सकता है ॥ १२१ ॥

हे हरि यह भ्रम को अधिकाई ।

देखत सुनत कहत समुझत संशय सदेह न जाई ॥ जो जग मृषा ताप त्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे । कहि न जाइ मृगवारि सत्य भ्रमते दुख होइ बिसेखे ॥ सुभग सेज सोवत सपने वारिधि बूड़त भय लागै । कोटिहु नाव न पार पाव सो जबलगि आपु न जागै ॥ अनविचार रमणीय सदा संसार भयंकर भारी । शम संतोष दया विवेक ते व्यवहारी सुखकारी ॥ तुलसिदास सबबिधि प्रपंच जग यदपि झूठ श्रुति गावै । रघुपतिभक्ति सन्तसङ्गति बिन को भवत्रास नशावै ॥१२२॥

हे रामजी ! भ्रम का यह अधिकता है । कि देखते कहते सुनते समझते हुए भी झूठा विश्वास की सन्देह दूर नहीं होता है । यदि संसार झूठा है तो कहिये किस भांति तीनों तापों का अनुभव होता है । मृगतृष्णा सत्य नहीं कही जा सकती वह

भ्रम सेही अधिक दुःखी होता है। और अच्छे सेजमें सोये हुए स्वप्न के समुद्र में डूबते हैं जिसे डर लगता है वहां तक स्वयं नहीं जागता तो करोड़ों नावों से भी उस समुद्र को नहीं पार कर सकता है। इससे सदैव महा भयकारी संसार है बिना विचारके सुन्दर लगता है। समता सन्तोष दया और ज्ञान का व्यवहार करने से आनन्द कारी है। तुलसीदास कहते हैं कि संसार का प्रपंच सब प्रकार से यद्यपि झूठा है तो भी राम में प्रेम साधुओं के संग बिना कौन संसार के क्लेश को हटा सकता है॥ १२२॥

मैं हरि साधन करै न जानी।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा दरवानी॥ सपने नृप कहं घटै विप्रबध बिकल फिरै अघलागे। वाजि-मेध शतकोटि करै नहिं शुद्ध होइ बिन जागे॥ स्रगमहं सर्प विपुल भयदायक प्रकट होइ अविचार। बहु आयुध धरि बल अनेक करि हारहि मरइ न मारे॥ निज भ्रम ते रविकरसंभ-वसागर अति भय उपजावै। अवगाहन बोहित नौकाचढ़ि कबहूं पार न पावै॥ तुलसिदास जग आपु सहित जबलगि निर्मूल न जाई। तबलगि कोटिकल्प उपाय करि मरिय तरिय नहिंभाई॥१२३॥

हे रामजी! मैं साधना करना नहीं जानता हूँ। जैसा रोग है वैसी औषधी नहीं कि यानी उत्तम बचनों का क्या दोष। स्वप्न में राजा को ब्राह्मण मारना घटित हो पाप लगने से व्याकुल फिरे और सैकड़ों करोड़ों अश्वमेध यज्ञ करे परन्तु जागे विना शुद्ध नहीं होता है। अविचार से ही माला में महाभयदायी सर्प उत्पन्न होता है उसे बहुत से अस्त्र लेकर कितनाही बलकर हार जाइये परन्तु वह मारने से नहीं मरता है। अपनेही भ्रम से सूर्य के किरणों से हुआ समुद्र महाभय उत्पन्न करता है उसका थाह लगाने के लिये जहाज और नावों में चढ़ के कभी पार नहीं पा

सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि जब तक अहंकार सहित संसार जड़ सहित नष्ट नहीं होता तब तक करोड़ों जन्म प्रयत्न करके मर जाइये परन्तु हे भाई गति नहीं होती है ॥१२३॥

अस कछु समुझि परत रघुराया।

बिन तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया॥ वाक्यज्ञान अत्यन्तनिपुण भवपार न पावै कोई। निशि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई॥ जैसे कोउ इक दीन दुखित अति अशनहीन दुख पावै। चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नशावै॥ षटरस बहुप्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैन बखानै। बिन बोले सन्तोषजनित सुख खाइ सोइ पै जानै॥ जबलगिनहिंनिधिहृदिप्रकाशअरुविषयआशमनमाहीं। तुलसिदासतबलगि जगयोनिभ्रमतसपनेहुसुखनाहीं॥१२४॥

हे रामजी! ऐसा समझ पड़ता है कि हे दयालु! तुम्हारी दया के विना सेवक की भलाई और माया मोह का छूटना नहीं हो सकता। ज्ञान कथा में अत्यन्त॰ चतुर कोई हो संसार का अन्त नहीं पा सकता। जैसे रात्रि में घर के बीच दीपक की बातों से अंधेरा दूर नहीं होता जैसे कोई एक दरिद्री बिना भोजन महादुःखी होके क्लेश पाता हो तो तसवीर का कल्पवृक्ष और कामधेनु घर में लिखने से उसकी दरिद्रता नहीं जाती। छओं रस और अनेक प्रकार के भोजन का कोई दिनरात बर्णन करै तो वृथा है। विना बोलेही सन्तुष्टता से प्राप्त सुख वही जानेगा जो भोजन करेगा। जब तक हृदय में आत्म प्रकाश नहीं और विषयों के क्लेश मनमें है। तुलसीदास कहते हैं कि संसारी योनियों में भ्रमण करते हुए स्वप्न में भी सुख नहीं है॥ १२४॥

जो निज मन परिहरै विकारा।
तौ कत द्वैतजनित संसृति दुख संशय कोक अपारा ॥ शत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हे बरिआई। त्यागब गहब उपेक्षणीय अहि हाटज तृण की नाई ॥ अशनवसनपशुवस्तुविविधविधि सब मणिमहं रह जैसे। स्वर्ग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥ विटप मध्य पुत्रिका सूत्र महं कञ्चुकि बिनहि बनाये। मन महँ तथा लीन नानातनु प्रगटत अवसर पाये ॥ रघुपति भक्ति वारिछालित चित बिन प्रयासही सूझै। तुलसिदास कह चिदविलास जग बूझत बूझत बूझै ॥१२५॥

जो मन अपना विकार छोड़ दे तो द्वन्द्व से प्राप्त जन्म मरण के दुःख संशय क्लेश आदि क्या हो। शत्रु मित्र उदासीन यह तीनों मनके ही हठ से हैं इनका लेना न छोड़ना न लेना सर्प सोना और घास की बराबर है। जैसे मणियों में भोजन वस्त्र पशु आदि अनेक प्रकार की वस्तुए रहती हैं वैसेही मनके बीच में स्वर्ग नरक स्थावर जंगम आदि संसार बहुत से रहते हैं। जैसे वृक्ष के बीच में कठपुतली सूत में कपड़े बिना बनाये रहते हैं वैसेही मनमें व्यापक अनेक प्रकार की देह समय पाकर उत्पन्न होती है। श्रीरामजी प्रेमरूपी जल से धोये हुए चित्त में बिना परिश्रम मालूम होता है, तुलसीदास कहते हैं कि संसार चित्त का खेल है विचारते विचारते समझ में आता है ॥१२५॥

मैं केहि कहौं बिपति अतिभारी। श्री रघुबीर धीर हितकारी ॥ मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥ अति कठिन करहि बरजोरा। मानहिं नहिं

विनय निहोरा ॥ तम मोह लोभ अहंकारा । मद क्रोध बोध रिपु मारा ॥ अति करहिं उपद्रव नाथा । मर्दहिं मोहिं जानि अनाथा ॥ मैं एक अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥ भागेहु नहिं नाथ उबारा । रघुनायक करहु संभारा ॥ कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तस्कर तव धामा ॥ चिन्ता यह मोहिं अपारा । अपयश नहिं होइ तुम्हारा ॥१२६॥

मैं किससे कहूं बड़ी भारी विपत्ति है । हे राम ! तुम धीर हितकारी हो । हे नाथ ! मेरे हृदय में तुम्हारा स्थान है वहां बहुत से चोर आकर बस गये हैं । वे बड़े कठिन हैं जबरदस्ती करते फिरते हैं । मेरी बिनती तुम्हारा निहोरा नहीं मानते, वे यह हैं कि तम (अन्धकार) ममता लोभ अभिमान ईर्षा क्रोध अज्ञान व काम हे नाथ बड़ा उपद्रव करते हैं । मुझे अनाथ जानके पीसे डालते हैं । मैं तो अकेला हूं और चोर बहुत हैं कोई मेरी पुकार नहीं सुनता हे स्वामिन् । भागने से भी बचाव नही हैं हे रामजी ! तुम्हीं रक्षा करो । तुलसीदास कहते है कि हे रामजी ! सुनिये चोर तुम्हारा स्थान लूट लेते हैं मुझे तो यही चिन्ता अधिक है कि कहीं तुमको अपयश नहीं हो जावे ॥ १२६ ॥

मन मेरे मानहि सिख मेरी । जोनिज भक्ति चहै हरि केरी ॥ उर आनहि प्रभुकृत हित जेते । सेवहि तजे अपन पौ तेते ॥ दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सबसम लेखहि विपति बिहाई ॥ सुनु शठ काल ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि विदूषहि केही ॥ तुलसिदास बिन असमति आये मिलहिं न राम कपट लय लाये ॥१२७॥

अरे मन ! मेरा कहना मान । जो स्वयं भगवान की भक्ति चाहता है तो प्रभु की जितनी भलाइयां हैं उन्हें हृदय में लेआ । और अहंकार को छोड़ सचेत होकर उनकी सेवा कर दुःख होना सुख होना अपमान होना बड़ाई होना सबको बराबर देख दुःख दूर होगा । रे दुष्ट ! सुन यह देह काल का कलेवा है उसके लिये किसी का मत दोषदे । हे तुलसीदास बिना ऐसा ज्ञान आये छल का मैल लगाने से श्री रामजी नहीं मिलैंगे ॥१२७॥

मैं जानी हरिपदरतिनाहीं ।सपनेहुनहिं विराग मन-माहीं ॥ जे रघुवीर चरण अनुरागे । तिन्हसबभोगरोगस-मत्यागे ॥ कामभुजंगडसनजबजाही । विषयनीबकटुलगत-नताही ॥ असमंजसअसहृदयबिचारी । बढ़यशोचनितनू-तनभारी ॥ जबकबरामकृपादुखजाई। तुलसिदास नहिंआन उपाई ॥१२८॥

मैं जान गया कि श्रीरामजी के चरणों में प्रेम नहीं है क्योंकि स्वप्न में भी मनमें वैराग्य नहीं है । जो लोग श्री रामजी के चरणों में प्रेम करनेवाले हैं वे लोग सब भोगों को रोगों के समान छोड़ते हैं । जब जिसको कामरूपी सर्प काटता है उसे विषय रूपी नीब करू नहीं लगता । ऐसा असमंजस हृदय में सोच के नित्य नया बहुत सोच बढ़ता है । जब कभी रामजी कृपा करेंगे तो दुःख दूर होगा । हे तुलसीदास ! दूसरा प्रयत्न नहीं है इसलिये उन्हीं का भरोसा करो ॥१२८॥

सुमिरुसनेह सहित सीतापति ।रामचरण तजिनाहिं आनगति । जपतप तीरथ योगसमाधी । कलिमति बिकल नकछु निरुपाधी ॥ करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रक्तबीज समबाढ़तजाहीं। हरणि एक अघअसुर जालिका। तुलसिदास प्रभु कृपा कालिका ॥ १२९ ॥

प्रेम के साथ श्रीरामजी का ध्यान कर क्योंकि राम के चरण को छोड़ दूसरा मार्ग नहीं है। जप तप तीर्थसेवन योग समाधि यह कलियुग में बुद्धि की विकलता से बिना झंझट के कोई नहीं है। पुण्य करने पर भी पाप दूर नहीं होते किन्तु रक्त के समान बढ़तेही जाते हैं। हे तुलसीदास पाप रूपी दैत्यों की फांसी को नष्ट करनेवाली अकेली रामजी की कृपा रूपी कालिकाही है ॥१२९॥

रुचि रसना तू राम राम क्यों न रटत। सुमिरत शुभ सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत ॥ बिना श्रम कलि-कलुषजाल कटु कराल कटत। दिनकर के उदय जैसे तिमिर तोम फटत ॥ योग याग जप विराग तप सुतीर्थ अटत। बांधिबे को भवगयन्द रेणु की रजु बटत ॥ परिहरि सुर-मणि सुनाम गुंजा लखि लटत। लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहिं हटत ॥ १३० ॥

अरी जिह्वा तू रुचि से राम राम क्यों नहीं कहती। उसके ध्यान से मंगल व पुण्य बढ़ते और अमंगल तथा पाप घटते हैं। बिना परिश्रम कलिका काला जाल कड़ुवा व भयानक है वह कट जाता है। जैसे सूर्य के उदय से अंधेरा नाश हो जाता है। योग जप यज्ञ वैराग्य तपस्या और अच्छे तीर्थों का सेवन संसार रूपी हाथी के बांधने को धूल की रस्सी बटना है। सुन्दर नाम का ध्यान छोड़कर गुंजा (घुंघुची) देखकर लट्टू है। अरे तेरा क्षुद्र लालच देख तुलसी तुझे धिक्कार देता है ॥ १३० ॥

राम राम राम राम राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत ॥ कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत। हारहि जनि जन्म जाइ गाल गुल गपत ॥ काल कर्म गुण स्वभाव सब के शीश तपत। रामनाम महिमा

की चरचा चले चपत ॥ साधन बिन सिद्धि सकल विकल लोग लपत॥ कलियुग वर बनिज विपुल नाम नगर खपत॥ नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत ॥ १३१ ॥

राम राम राम राम राम राम जपनें से आनन्द मंगल का उदय होता है। कलि की मलीनता छिप जाती है कहिये बबुर के बीज बोने से किसको आम का फल मिला है। जन्म लेके गाल बजा गप्प उड़ाकर मत पतित हो। काल कर्म गुण स्वभाव सबके सिर पर तपते हैं। ये राम नाम की महिमा की बात चलते ही दब जाते हैं। लोग बिना साधना के ही सब प्रकार की सिद्धी लेने को व्याकुल हैं कलिकाल उत्तम बड़ी सौदागरी है। नाम रूपी शहर में ही उस बनीज की खपत है। नाम से ही विश्वास प्रेम किये अन्तःकरण दृढ़ होता है। देख तुलसीदास के समान पापी को राम ने पवित्र कर दिया ॥ १३१ ॥

पावन प्रेम रामचरण जन्म लाहु परम। रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥ योग मख विवेक विरति वेद विदित करम। करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम ॥ तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम। तेहि प्रभु को तू होहि जेहि सबही की शरम ॥ १३२ ॥

राम के चरणों में प्रेम होना ही जन्म लेने का परम लाभ है। राम का नाम लेते ही सब धर्म सरलता से मिलते हैं। योग यज्ञ ज्ञान वैराग्य व वेद से प्रगट कर्म सुनने में ही फल से मीठे व कोमल हैं। करने में कठिन व करू हैं। हे तुलसी! सुनकर जानकर बूझकर भ्रम में मत पड़ तू उसी प्रभु का हो जिसका सभी की लज्जा है ॥ १३२॥

राम से प्रीतम की प्रीतिरहित जीव जाय जियत॥ जेहि सुख सुख मानिलेत सुख सो समुझ कियत ॥ जहँ जहँ जेहि

योनि जनम महि पताल वियत । तहँ तहँ तू विषय सुखहि चहत लहत नियत ॥ कत विमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत । तुलसी प्रभु सुयश गाइ क्यों न सुधा पियत॥ १३३॥

राम के समान प्यारे की प्रीति के बिना जीवन वृथा जाता है। जिस सुख को सुख मानता है वह सुख समझ तो कितना है। जहां जहां जिस योनि में जन्मता है पृथिवी पताल व आकाश वहां वहां तू सुख को ही चाहता है व तौल से पाता है क्यों मोह लट्टू हो फटे । आकाश के सीने में प्रसन्न है । हे तुलसी ! राम का यश के क्यों नहीं अमृत पीता है ॥ १३३ ॥

तोसेहौं फिर फिर हित प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत । सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुमग सुमग गहत ॥ छोटो बड़ो खोटो खरो जग जो जहं रहत । अपने अपने को भलो कहु सो को जो न चहत ॥ विधिलगि लघु कीट अवधि सुख सुखो दुख दहत । पशुलौं पशुपाल ईश बांधत छोरत नहत ॥ विषय मुद निहार भार शिर को कांधे ज्यों बहत । योंही जिय जानि मानि शठ तु साँसति सहत ॥ पायो केहि धूत विचार हरिणवारि महत । तुलसी तकु ताहि शरण जाते सब कहत ॥१३४॥

मैं तुझसे बारम्बार भले प्यारे पवित्र सत्य बचन कहता हूं सुनके मनमें सोच समझके क्यों नहीं सीधा मार्ग पकड़ता । नीच ऊंच के झूठे सच्चे संसार में जो जहां रहता है कह वह कौन जो अपने अपने की भलाई नहीं चाहता । ब्रह्मा से लेकर छोटे कीड़े तक मर्याद से सुखमें सुखी और दुख में तपते हैं। परमेश्वर जैसे पशुपाल को बांधता छोड़ता नहाता है विषयानन्द को देख जैसे सिर का भार कंधे पर रख लेता है ऐसे दी चित् में समझ के मानले । रे दुष्ट तू दुःखही सहता है विचार तो मृगजल मथने

से किसको घी मिलता है। हे तुलसी ! उसकी शरण देख जिससे सर्वस्व मिलता है ॥१३४॥

तातें हौं बार बार देवद्वार परि पुकार करत । आरत नति दीनता कहे प्रभु संकट हरत॥ लोकपाल शोक विकल रावण डर डरत । का सुनि सकुचे कृपालु नर शरीर धरत ॥ काशिक मुनितोय जनक शोच अनल जरत । साधन केहि शीतल भये सो न समुझि परत ॥ केवट खग शवरि सहज चरणकमल न रत । संमुख तोहि होत नाथ कुतरु सुफल फरत ॥ बन्धुबैर कपि विभीषण गुरु गलानि गरत । सेवा केहि रीझि राम किते सरिस भरत ॥ सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ताको लिये रामनाम सब को सुढर ढरत ॥ जाने बिन राम रीति पचि पचि जग मरत । परिहरि छल शरण गये तुलसिहु से तरत ॥१३५॥

हे देव ! इसीसे मैं बारंबार द्वारपर खड़ा पुकार करता हूं कि दुःख दीनता दरिद्रता कहे । प्रभुजी क्लेश हरनेवाले हैं क्योंकि इन्द्रादि लोकपाल दुःखों से व्याकुल रावण के डर से डरते थे उसे सुनके मनुष्य देह को धारण किये । हे दयालु ! क्या सकुचे थे कि विश्वामित्र अहल्या जनक चिन्ता की अग्नि में जलते थे । किसके साधन नष्ट हुए यह समझ नहीं पड़ता केवट जटायु शवरी जो कि स्वभाव से चरण कमलों के प्रेमी न थे परंतु तुम्हारे सामने होतेही बुरे वृक्षों में भी अच्छे फल फरे । भाई के बैर से सुग्रीव विभीषण बड़ी ग्लानी में गलते थे । हे राम! किस सेवा से प्रसन्न हो उन्हें भरत के समान बनाया । हनुमान सेवक होकर प्रभुके बराबर होगया । हे राम ! उसका नाम लेने से सबका अच्छा [illegible] हो जाता है । हे राम ! बिना रीति जाने संसार पक

पक के मरता है। कपट छोड़ शरण जाने से तुलसी के समान तरे जाते हैं ॥ १३५ ॥

राग सूहो बिलावल।

रामसनेही सों तैं न सनेह कियो। अगम जो अमर नहूं सो तनु तोहिं दियो ॥ दियो सुकुलजन्म शरीरसुन्दर हेतु जो फल चारि को। जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को ॥ यह भरतखण्ड समीप सुरसरि थल भलो सङ्गति भली। तेरी कुमति कायर कल्पवल्ली चहति है विष फल फली ॥ अजहूं समुझि चितदै सुनो परमारथ। है हित सो जगहूं जाहि ते स्वारथ ॥ स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो का तैं कौन वेद बखानई। देखु खल अहिखेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ॥ पितु मातु गुरु स्वामो अपनपौ तिय तनय सेवक सखा। प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिन हेतु हित नहिं तैं लखा ॥ दूरि न सो हितू हेरु हियेही है। छलहि छांड़ि सुमिरे छोह कियेही है ॥ किये छोह छाया कमलकर की भक्तपर भज तेहि भजै। जगदीश जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै ॥ हरिहि हरिता विधिहि विधिता शिवहि शिवता जो दई। सोइ जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मंगलमई ॥ ठाकुर अतिहि बड़ो शील सरल सुठि। ध्यान अगम शिवहू भेंट्यो केवट उठि ॥ भरिअङ्क भेंट्यो सजल नयन सनेह शिथिल शरीर सों। सुर सिद्ध मुनि कवि कहत को न प्रेमप्रिय रघुबीर सों ॥ खग शबरि निशिचर भालु कपि किये आपु ते वन्दित बड़े। तापर तिन्हकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥ स्वामी को स्वभाव कह्यो

सो जब उर आनिहैं। शोच सकल मिटिहैं राम भलो मन मानिहैं ॥ भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथे नाइहै॥ ततकाल तुलसीदास जीवन जन्म को फल पाइहै ॥ जपि नाम करहि प्रणाम कहि गुणग्राम रामहि धरि हिये। विचरहि अवनि अवनीश चरण सरोज मन मधुकर किये ॥१३६॥

तूने रामके समान सनेही से प्रेम नहीं किया, जो शरीर देवताओं को वह तुझे उन्होंने दिया। अच्छे कुल में जन्म उत्तम शरीर दिया जिससे अर्थ धर्म काम मोक्ष यह चारों पदार्थ मिल सकते हैं जिस शरीर से ज्ञानी शिवलोक और विष्णुलोक को जाते हैं। इस भरतखण्ड में गंगा के निकट उत्तमस्थान है अच्छी संगति है तो भी मेरी कायर बुद्धि की कल्पलता में विष का फल फलना चाहती है। अब भी समझ और मन लगाकर परमारथ को सुन संसार में भी वही भलाई है जिससे स्वार्थ हो प्यारा है वह स्वार्थ तेरा क्या है वेद किसे कहता है। रे दुष्ट मन! देख सांप का खेल छोड़ उस प्रभुको पहिचान पिता माता गुरु स्वामी और स्वयं तथा स्त्री पुत्र सेवक मित्र ये सब जिसके प्रेम से प्रिय लगते हैं जो विना कारण के हित हैं उसे तूने नहीं देखा। वह हितैषी दूर नहीं है ढूंढ बहुतेरे हृदय में ही है कपट छोड़कर ध्यान करने से कृपा करता है। भक्तों पर कमल के समान हाथों से दया की छाया करता और भजते को भजता है। जो जगदीश्वर सबका जीवन है और सबका सब साज साजता है। विष्णु को प्रभुता ब्रह्मा को कर्ता शिवको हर्ता उसने किया। वही सीतापति मधुरमूर्ति आनन्दमय और कल्याणमय श्री राम सबके स्वामी हैं। स्वभाव सीधा व सुन्दर है कि शिवको भीध्यान से दुर्लभ रामजी हैं जिन्होंने उठ कर केवट को भेंटा है। प्रेम से शिथिल शरीर आंखों में आंसू भर उसे अंग से छिपटा लिये। देवता सिद्ध मुनि और कविजन कहते हैं कि प्रेम के प्यारे श्री रामजी के समान दूसरा कोई नहीं है। जटायु शवरी बिभीषण जाम्बवान

हनुमान को अपने समान श्रेष्ठ और पूज्य तथा बड़ा कर दिया उस पर भी उनकी सेवाको यादकर संकोच से मानों गड़े जाते हैं। ऐसा प्रभुका स्वभाव वर्णन किया इसे जब चित्त में लावेगा तो सब शोच दूर होंगे और रामजी मन से भला मानैंगे। यदि हाथ जोड़ माथा झुकावेगा तो रामजी अच्छी भांति मानैंगे। हे तुलसी दास! उसी समय जन्म और जीवन का फल पावेगा। राम को हृदय में रखकर नाम जप कर गुणों का वर्णन कर प्रणाम कर राजा राम के चरण कमल में मनको भौंरा बनाकर जो पृथिवी में विचरेगा ॥१३६॥

जिय जबते हरिते बिलगान्यो। तबते देह गेह निज जान्यो ॥ मायावश स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते दारुण दुख पायो ॥ पायो जो दारुण दुसह दुख सुख लेश सपनेहु नहिं मिल्यो ॥ भवशूल शोक अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि २ चल्यो ॥ बहु योनि जन्म जरा विपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं। श्रीराम बिनु विश्राम मूढ़ विचार लखि पायो कहीं ॥ आनँद सिन्धु मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥ मृग भ्रम वारि सत्य जियजानी। तहँ तू मगन भयो सुखमानी ॥ तहँ मगन मज्जसि पानकरि त्रय-काल जल नाहीं जहां। निज सहज अनुभव रूप तू खल भूलि अब आयो तहां ॥ निर्मल निरञ्जन निर्विकार उदार सुख तैं परिहर्यो। निष्काज राज विहाय नृप इव स्वप्नका-रागृह पर्यो ॥ तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करनि गांठ गहि दीन्ही ॥ ताते परवश पर्यो अभागे। ता फल गर्भवास दुख आगे ॥ आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ। शिर हेट ऊपर चरण संकट बात नहिं पूछै कोऊ ॥ शोणित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवही

कोमल शरीर गँभीर वेदन शीश धुनि धुनि रोवहो ॥ तू निज कर्मजाल जहँ घेरे । श्रीहरिसंग तज्यो नहिं तेरो ॥ बहु विधि प्रतिपालनप्रभु कीन्हो । परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हो ॥ तोहि दियो ज्ञान विवेक जन्म अनेककी तब सुधिभई । तेहि ईश की हौं शरण जाकी विषममाया गुणमई ॥ जेहि किये जीवनिकाम वश रसहीन दिन दिन अति नई । सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जिन मति दई ॥ पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानो । अब जग जाय भजों चक्रपानी ॥ ऐसहि करि विचार चुप साधो । प्रसव पवन प्रेर्यो अपराधो ॥ प्रेर्यो जो परम प्रचण्डमारुत कष्ट नाना तैं सह्यो । सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव यातना पावक दह्यो ॥ अति खेद व्याकुल अल्प बल क्षण एक बोलि न आवई । तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हर्षित गावई । बाल दशा जेते दुख पाये । अति असीम नहिं जाहिं गनाये । क्षुधा व्याधि बाधा भइ भारी । वेदन नहिं जानै महतारी ॥ जननी न जानै पीर सो केहि हेतु शिशु रोदन करै । सोइ करै विविध उपाय जाते अधिक तुव छाती जरै ॥ कौमार शैशव अरु किशोर अपार अघ को कहि सकै । व्यतिरेक तोहिं निर्दय महाखल आन कहु को सहि सकै ॥ यौवन युवति संग रंगरात्यो । तब तू महामोह मदमात्यो ॥ ताते तजी धर्म मर्यादा । बिसरे तब सब प्रथम विषादा ॥ बिसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहिं फाटत हियो । फिरि गर्भगत आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥ कृमि भस्म विट परिणाम तनु तेहि लागि जगबैरी भयो । परदार परधन

द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥ देखतही आई बिरधाई । जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई ॥ ताके गुण कछु कहे न जाहों । सो अब प्रकट देखु जग माहीं ॥ सो प्रकट तनु जर्जर जरा वश व्याधि शूल सतावई । शिरकम्प इन्द्रियशक्तिप्रतिहत बचन काहु न भावई ॥ गृहपालहू ते अति निरादर खान पान न पावई । ऐसेहु दशा वैराग्य नहीं तृष्णा तरंग बढ़ावई ॥ कहि को सकै महाभव तेरे । जन्म एक के कछुक गनेरे ॥ खानिचारिसन्तत अवगाहीं ॥ अजहुँनकरबिचारमनमाहीं ॥ अजहूं विचारु विकार तजि भजु राम जनसुखदायकं । भवसिन्धुदुस्तरजलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ॥ बिनु हेतु करुणाकर उदार अपारमायातारणं । कैवल्यपति जगपति रमापति प्राणपति गतिकारणं । रघुपतिभक्तिसुलभसुखकारी । सोत्रयतापशोकभयहारी॥ बिनुसतसंगभक्तिनहिंहोई।ते तबमिलैं द्रवै जब सोई॥जब द्रवैं दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये। जहि दरश परश समागमादिक पापराशि नशाइये॥ जिनके मिले दुख सुख समान अमानतादिक गुण भये । मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध ते सहजहि गये ॥ सेवत साधु द्वैत भय भागै । श्रीरघुवीर चरण लय लागै ॥ देहजनित विकारसबत्यागै । तब फिरिनिज स्वरूप अनुरागै ॥ अनुराग सो निजरूप जो जग ते विलक्षण देखिये । संतोष शम शीतल सदा हम देहवन्त न लेखिये। निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष शोक न व्यापई । त्रैलोक्यपावन सो सदा जाकी दशा ऐसी भई ॥ जो तेहि पन्थ चलै मनलाई । तौ हरि काहे न होंहि सहाई ॥ जो मारग श्रुति साधु देखावैं । तेहि

पथ चलत सबै सुख पावैं ॥ पावैं सदा सुख हरिकृपा संसार आशा तजि रहै । सपनेहु नहीं दुख द्वैत दरशन बात कोटिक को कहै ॥ द्विज देव गुरु हरि सन्त बिनु संसार पार न पावई । यह जानि तुलसीदास त्रासहरं रमापति गावई ॥ १३७ ॥

जीव जब से राम से अलग हुआ तब से देह रूपी घर अपना जाना । माया में फँसकर अपना स्वरूप भूल गया उसी भ्रम से कठिन दुःख पाया । असह्य कठिन दुःख पाने ही से जो स्वप्न में भी सुख का लेश नहीं मिला । जिससे संसारी पीड़ा बहुत हो उसी मार्ग पर तू हठ से चला । हेमूर्ख ! अनेक योनियों में जन्म बुढ़ाई और विपत्ति आदि के होने से भगवान को भूल गया । रे मूढ ! बिचार कर देख बिना राम के तुझे कहीं नहीं बिश्राम मिल सकता। सुखरूपी समुद्र के बीच में तू रहता है बिना जाने क्यों प्यासों मरता है । मृग जल को भ्रम से मन में सच जान वही सुख मानकर तू सुखी है वहीं मग्न हो गोता लगाकर पीता है । जहां तीनों काल जल नहीं है, तू स्वभाव से ज्ञान रूप है रे दुष्ट ! भूल से अब यहां आया है । तूने स्वच्छ तेज स्वरूप निर्विकार उत्तम आनन्द को छोड़ दिया । राजा के समान राज्य को छोड़ बिना प्रयोजन स्वप्न के कारागार (जेलखाने) में पड़ा है । तुमनेही अपनी कर्म की डोरी को दृढ़ की है अपने हाथों पकड़ गांठ दी है रे अभागी ! इसी से पराधीन पड़ा है । उस फल से आगे भी गर्भवास का दुःख है आगे बहुत से जन्म मरणों के ढेर है उसे भी गर्भवास में जान चुका है । जब ठीक शिर पर कष्टों ने अपना पग रख दिया तो कोई बात नहीं पूंछना था जब कि रक्त विष्टामल मूत्र में सोता था । और उस कोमल शरीर में कठिन पीड़ा से सिर पीट पीट रोता था तौ भी वहां अपने कर्मजाल से घेरा गया था । तब रामजी ने तेरा साथ नहीं छोड़ा । बहुत भांति से प्रभु ने रक्षा किया अति दया की राह तुझे ज्ञान दिया तब बहुत जन्मों की

सुधि हुई। उसी प्रभु के शरण हूं जिसकी माया त्रिगुणात्मिका महा विषम है जिसने जीवों के ढेर को अपने वश कर लिये। निरस होकर भी प्रति दिन अति नई है अब वही राम शीघ्र संभालें जिसने विपत्तिकीवृद्धि किया। फिर मनमें अनेक प्रकार की ग्लानि मानकर अब संसार में आकर श्रीरामजी को भजूंगा। ऐसा विचार कर चुप साध लिया तो वह अपराधी सब को अर्थात् जन्म देनेवाली वायु चली। जब अति उग्र वायु ने प्रेरणा किया उस समय तूने अनेक प्रकार के कष्ट का सहन किया। उस ज्ञान ध्यान वैराग्य विचार आदि को वह प्रसव की वायु ने नष्ट कर दिया। बड़े दुःख में व्याकुल थोड़े बल से एक क्षण भी बोला नहीं जाता तेरे महा क्लेश को कोई नहीं जानता किन्तु प्रसन्न होकर सब लोग गीत गाते हैं। लड़कपन में जितने दुःख पाये वह बहुत ही बेहद हैं। गिनाये नहीं गिन सकते भूख और रोगों की पीड़ा अनेक हुई उस पीड़ा को माता भी नहीं जानती कि लड़का किस लिये रोता है। माता वह पीड़ा न जान कर भी अनेकों उपाय करती है जिससे तेरी छाती और जलती है लड़कपन कुमारावस्था और किशोरावस्था के दुःखको कौन सह सकता है। रे अति दुष्ट निर्दयी तुझसे विपरीत दूसरा कौन सह सकता है। जवानी में युवती के संग रंग में मिला तब तू बड़े मोह के मद में मस्त हुआ और उसी से धर्म की मर्यादा छोड़ दिया और पहिले के सब दुःख को भूल गये। दुःख समूह को भूल क्लेश को समझ हृदय नहीं फटता फिर गर्भ के फेर में पड़ संसारचक्र जिससे मिले वहीं काम किया। देहकी अन्तदशा कीड़ा भस्म औरा विष्टा है उसी के लिये संसार में वैरी हुआ। पराई स्त्री पराये धन में ईर्षा करते २ नित्य नया संसार बढ़ने लगा तेरे देखते २ बुढ़ापापन आगया, जिसे तूने स्वप्न में भी नहीं बुलाया। उसके गुण कुछ नहीं कहे जा सकते वे अब संसार में प्रत्यक्ष देख भी प्रगट नहीं करते। बुढ़ापा आने से जर्जरशरीर हो रोग और पीडाओं का घर हो जाता है शिर हिलने लगता इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं

और किसी की बात अच्छी नहीं लगती। घर के मालिक से भी बड़ा निरादर और खाने पीने की चति होने पर भी वैराग्य न हो कर तृष्णा की लहर बढ़ती जाती है। तेरा महा संसार कौन कह सकता है। अरे ये एक जन्म के कुछ गिने सदाचारों की खानि का थाह लेता अब भी मनमें विचार नहीं करता। विकार छोड़ कर अब भी सोच करो और भक्तों को सुख देनेवाले श्रीराम जी को भज। जो विना कारण कृपा करनेवाले दानी और अपार माया से छुड़ानेवाले मुक्ति देनेके स्वामी संसार के स्वामी और लक्ष्मी के स्वामी हैं। प्राण के स्वामी मोक्ष के कारण रघुनाथ भक्ति से सुलभ वे सुख के दाता हैं। तीनों ताप दुःख व भय को वही हरते हैं जो विना सत्संग भक्ति नहीं होती,वह तब मिलते हैं जब वही पसीजते हैं जब दीन दयाल राम पसीजते हैं तब साधुओं का संग मिलता है। जिनके मिल ने व दर्शन से पापों की राशि दहजाती है और जिनके मिलने से दुःख सुख बराबर हो जाते हैं। अभिमान आदि का दोष छूट जाता है निर्मल गुण आजाता है। ईर्षा मोह लोभ दुःख क्रोध ये ज्ञान से सहजही में भाग जाते हैं। साधुओं की सेवा से द्वन्द्व का भय छूट जाता है और रामजी के चरणों में अनुराग होता है। और देह से उत्पन्न सब विकार नष्ट हो जाते हैं तो फिर आत्म रूप में प्रेम होता है। वह आत्मरूप का प्रेम जो कि संसार से निराला दिखाई देता है सन्तोष व शान्ति से शीतल हो देखने से अनुमान होता है कि मैं देहवाला नहीं हूं। निर्मल निर्दोष एक रस हूं उस आनन्द से कष्ट नहीं होते हैं जिसकी ऐसी दशा हुई वहां सदा त्रैलोक्य में पवित्र है। जो उस मार्ग में मन लगा चले तो रामजी क्यों न सहाय हों। वेद शास्त्र और सन्त जन जो मार्ग दिखाते हैं उस मार्ग में चलते सभी सुख पाते हैं। संसार के भरोसे पर न रहें तो रामकी कृपा से सदा सुख पावे। करोड़ों बात कौन कहे स्वप्न में भी द्वन्द्व के दुःख नहीं देख पड़ते। ब्राह्मण

देवता गुरु राम साधु बिना संसार पार नहीं पाता यही जान तुलसीदास संसार के दुःख को हरनेवाले श्रीरामजी के यश का भूखा है ॥१३७॥

राग बिलावल ।

जो पै कृपा रघुपति कृपालु की वैर और के कहा सरै ॥ होय न बांकों बार भक्तको जो कोउ कोटि उपाय करै ॥ तकै नीच जो मीच साधु की सो पामर तेहि मीच मरै । वेद विदित प्रहलाद कथा सुनि को न भक्ति पथ पाउं धरै ॥ गज उधारि हरि थप्यो विभीषण ध्रुव अविचल कबहुं न टरै । अम्बरीषकी शाप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥ सो धौं कहा जु न कियो सुयोधन अबुध आपने मान जरै । प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय यश पाण्डव ने बरिआई बरै ॥ जो जो कूप खनैंगो पर कहँ सो शठ फिर तेहि कूप परे । सपनेहु सुख न सन्तद्रोही कहँ सुरतरु सोउ विषफरनि फरै ॥ हैं काके द्वै शीश ईश के जो हठि जन की सीम चरै । तुलसिदास रघुवीर बाहुबल सदा अभय काहु न डरे ॥१३८॥

जो दयालु श्री रामजी की दया है तो दूसरे के वैर का क्या असर है जो कोई करोड़ों उपाय करे परन्तु भक्त का बाल टेढ़ा नहीं होगा । जो नीच साधुकी मौत ताके वही पशु उस मौत से मरे ! वेद से प्रकट प्रह्लाद की कथा सुन भक्ति मार्गपर कौन पैर न धरेगा । श्री रामजी ने गजराज का उद्धार किया बिभीषण की रक्षा किया ध्रुव को स्थिर किया कि वे कभी नहीं हटते ।

अम्बरीष के शाप को यादकर दुर्वासा आज भी ग्लानि से गलते हैं। वह क्या जो दुर्योधन ने न किया कुबुद्धि अपनेही अभिमान में जलता है। प्रभु की प्रसन्नता से सौभाग्य विजय कीर्तिने अपने हठ से पाण्डवों को ही स्वीकार किया। जो जो पराये को कुआ खनेगा वह दुष्ट उलटा कुएँ में गिरेगा। साधु के वैरी को स्वप्न में भी सुख नहीं। कल्पवृक्ष होकर भी विषका फल फरे। किसके दो सिर हैं जो हठ से प्रभुकी मर्यादा को तोड़े। हे तुलसीदास श्री रामजी के भुजा के बल से सदा निर्भय रहो किसी को मत डरो ॥ १३८ ॥

कबहुं सो कर सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ शीश मेरे। जेहिकर अभय किये जन आरत बारक विवश नाम टेरे ॥ जेहि कर कमल कठोर शम्भुधनु भञ्जि जनक संशय मेट्यो। जेहि कर कमल उठाइ बन्धु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥ जेहि कर कमल कृपालु गीध कहँ पिण्डदेइ निज लोक दियो। जेहिकर बालि बिदारि दासहित कपिकुल पति सुग्रीव कियो ॥ आयो शरण सभीत विभीषण जेहिकर कमल तिलक कीन्हों। जेहि कर गहि शरचापअसुर हति अभयदान देवन दीन्हों ॥ शीतल सुखद छांह जेहि कर की मेटति ताप पाप माया। निशिवासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥ १३९ ॥

हे प्रभु ! रामजी कभी तो कमल के समान अपने हाथ मेरे शिरपर धरोगे। जिस हाथ से दुःख पूर्वक भक्तों को एक बार नाम लेने के विवश हो निर्भय किये हो। और जिस कमल के

समान कोमल हाथों से शिव का धनुष तोड़े। जनक का सन्देह छुड़ाया। जिसकर कमल से भाई के समान उठाकर प्रेमसे केवट को गले लगाया। और जिस कर कमल से हे दयानिधान! जटायु को जल दे अपना लोक दिया। जिस हाथ से भक्त के लिये बालिको मारकर बानर कुल का राजा सुग्रीव को बनाया। और शरण में आये सभय विभीषण को जिस हाथ से राज तिलक लगाया और जिस हाथ से धनुषवाण ले राक्षसों को मार देवतावों को निर्भय किया। जिस हाथ की सुख देने वाली शीतल छांह माया के ताप रूपी पाप का नाश करती है! उसी करकमल की छाया रात दिन तुलसीदास चाहता है॥ १३९॥

दीनदयालु दुरित दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत सबकी सब सुखहानि भई है॥
भुके वचन वेद बुध सम्मत मम मूरति महिदेव मई है।
तिनकी मति रिसराग मोह मद लोभ लालची लीलिलई है।
राजसमाजकुसाज कोटिकटुकलपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीनि ीतिपरिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥
आश्रम वर्ण धर्म विरहित जग लोक वेद मर्याद गई है॥
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने अपने रंगरई है।
शान्ति सत्य शुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है॥
सीदतसाधुसाधुनाशोचतिखलविलसतहुलसति खलई है।
परमारथस्वारथ साधन भये अफल सकल नहिं सिद्धिसई है॥
कामधेनु धरणी कलिगोमरविवश विकलजामति न बई है।
कलिकरणीबरणिये कहां लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दांत पीसि कर मींजत को जाने चित काह ठई है॥

त्यों त्यों नीच चढ़त शिर ऊपर ज्यों ज्यों शीलवशढीलदईहै।
सरुष बरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़ेकी जई है॥
दीजै दादि देखि नातो बलि मही मोद मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोगकहैं राम अवधिचितवनिचितई है॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुणावारि भूमिभिजई है।
रामराज भयो काज शकुन शुभ राजा राम जगत बिजई है॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृतसेन हारत जितई है।
सुजनस्वभाव सराहत सादर अनायाससांसति बितई है॥
उथपे थपन उजारि बसावन गई बहोरि बिरद सदई है।
तुलसी आरत प्रभुआर हितत अभयबांह केहिकेहिन दई है१४०

हे दीनदयालु! पाप दरिद्रता दुःख और असह्य तीनों तापों से संसार तप रहा है। हे नाथ! द्वारपर दुःखी हो पुकारता हूं। सभी को सब सुखों की हानि हुई प्रभु का कहना वेद विद्वानों की राय है कि ब्राह्मण मेरा स्वरूप है परन्तु उसकी बुद्धि को लालची लोभ क्रोध ममता मोह ईर्षा ने कवल कर लिया है। क्षत्रियगण करोड़ों बुरे साजसे बुराई विचारते मैले कुमार्ग से दबे हुए हैं। न्याय विश्वास प्रेम व धर्म मर्यादा को नास्तिकता ने हठ से ढूंढ़ के नष्ट कर दिया। संसार से वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो लोक वेद की मर्यादा चली गई। प्रजा भ्रष्ट हो पाप और पाखण्ड में लग कर अपने अहंकार में मरते हैं। शान्ति व सत्य की अच्छी चाल घट गई कपट कलईवाली चाल बढ़ी है। सज्जन दुःखी हैं सज्जनता सोचती है कि दुष्ट फूले फिरते हैं। दुष्टता प्रसन्न है परमार्थ और स्वार्थ के उद्योग पूरे निष्फल होगये सिद्धि की सच्चाई नहीं है। कामधेनु के समान पृथिवी कालियुग में कसाइयों के हाथ में पड़कर व्याकुल है बोई नहीं जामती। कलिके कर्म कहां तक कहैं

बिना मतलब के टारफेर करता फिरता है । उस पर भी दांत पीस हाथ मलता है कौन जाने मनमें क्या ठान लिया है । जैसे जैसे शील वश आप ढिलाई देते हैं वैसेही वैसे नीच सिरपर चढ़ाई करता है । यदि क्रोध से मनाकर अंगुली दिखा डांट दीजिये तो कुह्मड़े की बतियां के समान कुह्मिला जावेगी । मेरी नालिश देख दो नहिं तो बलि जाऊं पृथिवी सुख व मंगलों से खाली ही है । लोग भाग्य से प्रेम में भरके कहें कि श्रीरामजी ने इज्जत की निगाह से देखा ऐसी विनती सुन आनन्द से हंस के देख कृपा की धारा से राम जीने पृथिवी को भिगों दिये । राम के राज्य से शुभ शकुन और अच्छे काम होने लगे क्योंकि राजा राम संसार को जीतनेवाले हैं सुन्दर ज्ञान स्वरूप परमेश्वर समर्थ ने पुण्य की सेना को हारते हुए जिताया और सज्जनों के स्वभाव को आदर से सराहते एकाएक दुःख दूर किये । उखड़े को लगाना उजड़े को बसाना गई वस्तुको फिर लाना ऐसा बाना सदा आपकाही है । हे तुलसी प्रभुने दुखियों के दुःख दूरकर निर्भय का हाथ किस किस को नहीं दिया ॥१४०॥

ते नर नरकरूप जीवत जग भवभजनपदविमुखअ-भागी । निशिवासर रुचि पाप अशुचिमन खलमति मलिन निगम पथत्यागी ॥ नहि सतसंग भजन नहिं हरिको श्रवण न राम कथा अनुरागी । सुतवित दार भवन ममता निशि सोवत अति न कबहुँ मति जागी ॥ तुलसिदास हरि नाम सुधा तजि शठ हठि पियत विषय विषमांगी । शूकर श्वान शृगाल सरिस जन जन्मत जगत जननिदुख लागी ॥१४१॥

वे मनुष्य नरकरूपी संसार में जीते हुए अभागी हैं जो भगवान के चरणों से विमुख हैं । उन्हें दिनरात पापों में रुचि है अप-

विन्न मन दुष्ट व मलीन बुद्धिवाले हैं और वेदमार्ग का त्याग किये हैं। अच्छे का संग नहीं करते ईश्वर का भजन और कानों से रामकी कथा में प्रेम नहीं करते। पुत्र धन स्त्रीरूपी घर में ममत्वरूपी रात्रि में खूब सोते ज्ञान में कभी नहीं जागते हैं हे दुष्ट तुलसीदास ! रामनामरूपी अमृत को छोड़कर हठसे विषयरूपी विष मांग के पीता है। सूकर कुत्ता स्यार के बराबर लोग संसार में माता के दुःख देने को जन्म लेते हैं ॥१४१॥

रामचन्द्र रघुनायक तुमसों हौं बिनती केहि भांति करौं। अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं॥ परदुखदुखी सुखी परसुख ते सन्त शील नहिं हृदय धरौं। देखि आनकी बिपतिपरमसुख सुनिसंपति बिनु आगि जरौं॥ भक्ति बिराग ज्ञान साधन कहि बहुविधि डहँकतलोकफिरौं। शिवसरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं॥ जानतहूं निज पापजलधि जिय जलसीकर सम सुनत लरौं। रजसम परअवगुणसुमेरु करि गुणगिरिसम रजते निदरौं॥ नाना वेष बनाइ दिवसनिशि परबित जेहि तेहियुक्तिहरौं। एकौ पल न कबहुँ अलोलचित हित दै पदसरोज सुमिरौं॥ जो आचरण बिचारहु मेरो कल्पकोटि लगि औटि मरौं। तुलसिदास प्रभु कृपाबिलोकनिगोपदज्योंभयसिन्धुतरौं ॥१४२॥

हे रघुनाथ राम ! तुम से किस प्रकार बिनय करूं अपने बहुत पापों को देख और तुम्हारा निष्पाप नाम इस अनुमान से डरता हूं। पराये दुःख से दुःखी व पराये सुख से सुखी सज्जनों का स्वभाव हृदय में नहीं लाता हूं। भक्ति को छोड़ ज्ञान के साधन

कह बहुत भांति संसार में डहकता फिरता हूं। शिवका सर्वस्व सुख का घर तुम्हारा नाम बेंच नरक को देनेवाले पेट को भरता हूं। मनमें अपना पाप समुद्र के समान जानता हूं परन्तु बुन्द के बराबर सुन के लड़ता हूं। धूल बराबर पराया दोष देख पहाड़ के समान जान धूल से भी बदतर करता हूं। रात दिन अनेक वेष बना के पराये धन को जैसी तैसी युक्ति से लेलेताहूं। एक क्षण भी मन ठहरा के भलाई का चरणारविन्द को नहीं सुमिरता जो मेरा चलन सोचिये तो करोड़ों कल्प तक औटकर मरजाऊं। हे प्रभु! तुलसीदास तो आपकी कृपादृष्टि से ही गौ के खुर के समान संसार सागर तरना चाहता है ॥ १४२ ॥

सकुचतहौं अति रामकृपानिधि क्यों करि विनय सुनावौं। सकल कर्म विपरीत करत केहि भांति नाथ मन भावौं ॥ जानत हौं हरिरूप चराचर मैं हठि नयन न लावौं। अंजन केशशिखा युवती तहँ लोचन शलभ पठावौं। श्रवणनि को फल कथा तुम्हारो यह समुझौं समुझावौं ॥ तिन श्रवणनि परदोष निरन्तर सुनि सुनि भरि भरि तावौं। जेहि रसना गुण गाइ तिहारे बिन प्रयास सुख पावौं ॥ तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जन्म नशावौं ॥ करहु हृदय अतिविमल बसहिं हरिकहि कहिसबहि सिखावौं। हौं निज उर अभिमान मोह मद खल मण्डली बसावौं ॥ जो तनु धरि हरिपद साधहि जन सो बिनुकाज गंवावौं। हाटक घट भरि धन्यो सुधागृह तजि नभ कूप खनावौं ॥ मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ ते करि यतन दुरावौं। पर प्रेरित ईर्षा वश कबहुंक किय कछु शुभ सो जनावौं ॥ विप्र द्रोह जनु बांट पन्यो हठि सबसों बैर बढावौं।

ताहू पर निज मति विलास सब सन्तन मांझ गनावों ॥
निगम शेष शारद निहोरि जो अपने दोष कहावों।
तौ न सिराहिं कल्प शत लगि प्रभु कहा एक मुख गावों ॥
जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि शरण हौं आवों।
मृदुल स्वभाव शील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावो ॥
तुलसिदास प्रभु सो गुण नहिं जेहि सपनेहु तुमहिं रिझा-
वों। नाथकृपा भव सिन्धु धेनु पद सम जो समुझि निय-
रावों ॥ १४३ ॥

हे दयासागर! राम मैं बहुत सकुचता हूं क्योंकर बिनती सुनाऊं। सारे कर्म तो उलटे करता हूं प्रभु का किस भांति मन भावना होऊं। मैं जानता हूं कि संसार ईश्वर स्वरूप है परन्तु हठसे आंखें नहीं लगाता किन्तु जहां अग्नि के समान स्त्री भाव है वहां पतंग से नेत्र को भेजता हूं तुम्हारी कथाही का सुनना कानों का फल है यह समझता व समझाता हूं तो भी उन कानों को पराये दोषों से सदा सुन २ भरके बन्द करता हूं। जिस जिह्वा से तुम्हारे गुणों को गाय कर विना परिश्रम के सुख मिले उसी मुख से पराये दोषों को मेढक के समान रट रट कर जन्म नष्ट करता हूं। सबको तो कह कह कर सिखाता हूं कि हृदय बहुत निर्मल करो जिसमें रामजी ठहरें। परन्तु मैं अपने हृदय में अभि मान मोह ईर्षा दुष्टता आदि के समूह को ठहराता हूं। जिस देह को लेकर मनुष्य विष्णुलोक पासकते हैं उसे व्यर्थ खोता हूं। मन वचन कर्म में लग के जो पाप किये हैं उन्हें उपाय करके छिपाता हूं। किसी के कहने से मदके वश कभी कुछ अच्छा किया तो वह प्रकट करता हूं। ब्राह्मणों से द्वेष रखना तो मानों हिस्से में पड़ गया हठ कर सबसे वैर ही बढ़ाता हूं। उस पर भी अपनी बुद्धि की चपलता से सब सज्जनों के बीच अपने को गिनाता हूं। वेद शेष सरस्वती को भी राजी करके जो अपने दोष को उनसे

कहलाऊं तो भी हे प्रभो सैकड़ों कल्प तक न चुकें। फिर एक मुख से क्या कहूं। जो अपने कर्मों का विचार करूं तो क्या शरण आ सकता हूं रामजी का कोमल स्वभाव शील है वही बल मनको दिखलाता हूं। हे नाथ! तुलसीदास के वह गुण नहीं हैं जिससे स्वप्न में भी तुम्हें प्रसन्न करे। प्रभुकी कृपाही से संसार सागर को गौ के खुर के समान जान नष्ट करना चाहते हैं ॥१४३॥

सुनहु राम रघुवीर गुसाईं मन अनीतिरत मेरो। चरण सरोज बिसारि तिहारे निशि दिन फिरत अनेरो ॥ मानत नाहि निगम अनुशासन त्रास न काहू केरो। भूल्यो शूल कर्म कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारिन पेरो ॥ जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो। लोभ मोह मद काम क्रोधरत तिन्ह सो प्रेम घनेरो। परगुण सुनत दाह परदूषण सुनत हर्ष बहुतेरो। आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत परखेरो ॥ साधन फल श्रुतिसार नाम तव भवसरिता कहं बेरो। सो परकर काकिनी लागि शठ बेंचि होत हठि चेरो ॥ कबहुँक हौं संगति स्वभावते जाउँ सुमारग नेरो। तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥ इक हौं दीन मलीन हीनमति विपतिजाल अति घेरो। तापर सहि न जाय करुणानिधि मनको दुसह दरेरो ॥ हारि पर्यों करि यत्न बहुत विधि ताते कहत सबेरो। तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥१४४॥

हे स्वामी रघुवीर! रामजी सुनिये, मेरा मन अन्याय में लग कर चरण कमल छोड़कर रात दिन उससे दूर भागता है। वेदों की आज्ञा नहीं मानता और न किसी का डर वे दुःख भूल गये जब कर्मरूपी कोल्हू ने तिलके समान बहुत बार परा था। जहां

सत्संग व राम की कथा है वहां स्वप्न में भी नहीं जाता, लोभ मोह ईर्षा काम क्रोध में लगा उन्हीं से बहुत स्नेह करता है। पराये गुण को सुन के जल जाता और पराये दोष को सुन बहुत प्रसन्न होता है। अपना तो पापों का नगर बसाता और पराया खेरा भी नहीं सहन कर सकता है। साधनों का फल वेदों का सारांश तुम्हारा नाम है जो कि संसाररूपी नदी के लिये नौका है। उसे पराये हाथ कौड़ी के लिये बेंचकर हठ से गुलाम होता है। कभी मैं सत्संग के स्वभाव से सुमार्ग के पास जाता हूं तब क्रोध करके बुरी इच्छायें साथ दे दुर्जेय बीरों को भिड़ा देता है मैं अकेला दरिद्री मलीन अज्ञानी दुःखो के जाल जो कि बहुत घेरे हैं हे दयानिधान! उस पर भी मनकी कठिन दबाव सहा नहीं जाता है। बहुत भांति उपाय करके हार गया इस लिये कहता हूं अभी सबेरा है तुलसीदास का यह दुःख तभी मिटेगा जब तुम हृदय में डेरा (वास) करोगे ॥ १४४ ॥

सो धौं को जो नाम लाज ते नहि राख्यो रघुबीर। कारुणीक बिनु कारणही हरि हरहु विषम भवभीर ॥ वेद विदित जग विदित अजामिल विप्रबन्धु अघधाम। घोर यमालय जात निवार्यो सुतहित सुमिरत नाम ॥ पशु पामर अभिमान सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह। सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हरेउ दुसह उर दाह ॥ व्याध निषाद गृद्ध गणिकादिक अगणित अवगुण मूल। नाम ओट ते राम सबन को दूरि करेउ भवशूल ॥ केहि आचरण घाटि हौं तिनते रघुकुलभूषण भूप। सीदत तुलसिदास निशिवासर पर्‍यो भीम तमकूप ॥ १४५ ॥

वह कौन है जिसको राम ने नाम की लज्जा से नहीं रक्खा। हे दयानिधि! भगवान्! बिना कारण ही सबसे सारा दुःख हरते हो। वेदों में प्रकट संसार में विदित है कि अजामिल ब्राह्मण

पापों का घर था उसे नाम याद करते ही सुन के घोर यम लोक को जाने से रोक लिया। पशु नीच का घमंड का समुद्र गज को जब ग्राह ने आकर ग्रसा तो एक बार ध्यान करते ही शीघ्र आके प्रभु ने हृदय की कठिन दाह को हर लिये। व्याध केवट गीध वेश्या आदि जिनमें कि अनेकों दोष थे राम ने नाम की आड़ से सभों की सब पीड़ा दूर कर दी। हे रघुबंशशिरोमणि! महाराज! किस चाल चलन में उनसे कम हूं तुलसीदास तो रातो दिन महा भयंकर कुएं में पड़ा हुआ दुखी हो रहा है १४५॥

कृपासिन्धु जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे। जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे॥ गज प्रहलाद पाण्डुसुत कपि सबके रिपु संकट मेट्यो। प्रणत बन्धुभय विकल विभीषण उठि सो भरत ज्यों भेंट्यो॥ मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम यक उर आपने बसावों। भजन विवेक विराग लोग भले मैं क्रम २ करि ल्यावों॥ सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक करहि जोर बरिआईं। तिन्हहिं उजारि नारि अरिगन पुर राखहिं राम गुसाईं॥ सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हार्यो। बिनु कारण के कलह बड़ो दुख प्रभु सों प्रकटि पुकार्यो॥ सुर स्वारथी अनीश अलायक निठुर दया चित नाहीं। जाउं कहां को विपति निवारक भवतारक जग माहीं॥ तुलसी यद्यपि पोच तौ तुम्हरो और न काहू केरो। दीजै भक्ति बांह बारक ज्यों सुबश बसे अब खेरो॥१४६॥

हे कृपानिधान! गरीब सेवक आपके द्वार पर क्यों नहीं नालिश करने पाता। जब जहां तुमको दुःखियों ने पुकारा तभी उनके दुःख भस्म किये। गज प्रहलाद पाण्डव सुग्रीव सभा के शत्रुरूपी कांटे को नष्ट किये हो। भाई के डरसे व्याकुल विभी-

षण जब शरण आया तब उसे उठ के भरत के समान हृदय से लगाये। मैं तुम्हारे नामों को लेकर अपने हृदय में एक ग्राम बसाता हूं उसमें ज्ञान वैराग्य और भजनरूपी भले आदमियों को मैं धीरे धीरे लाता हूं यह सुनकर काम आदि जबरदस्ती जोर करते हैं उन्हें उजाड़ स्त्री शत्रुता द्रव्य को उस पुर में रखते हैं॥ हे इन्द्रियेश राम साम दान दण्ड भेद के सेवन से मैं उपाय रच के थक कर हार गया। बिना कारण की लड़ाई है प्रभु से यह दुःख जाहिर करके कह दिया। देवता स्वार्थी असमर्थ नालायक और निर्दयी हैं मन में दया नहीं रखते। कहां जाऊं संसार में कौन दुःखदूर करनेवाला और जन्म मरण से तारनेवाला है ॥१४६॥

हौं सब निधि राम रावरो चाहत भयो चेरो। ठौरठौर साहबी होत है ख्याल कालकलि केरो॥ काल कर्म इन्द्रिय विषय गाहक गण घेरो। हौं न कबूलत बांधिकै मोल करत करेरो॥ बन्दिछोर तेरो नाम है विरुदैत बड़ेरो। मैं कह्यों तब छल प्रीति कै मांगै उर डेरो॥ नाम ओट अब लगि बच्यों मलयुग जग जेरो। अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो॥ जेहि कौतुक बक श्वान को प्रभु न्याव निबेरो। तेहि हेतुक कहिये कृपालु तुलसी है मेरो॥ १४७॥

हे राम! मैं सब भांति से आप ही का दास हुआ चाहता हूं। जगह जगह दूसरों की साहबी हो रही है। यह तमाशा कलि काल का है। कालकर्म इन्द्रियों के विषय ये खरीदनेवालों ने घेर लिया है में कबूलता नहीं हूं। बांध के अधिक मोल करते हैं तुम्हारा नाम बन्दीछोर है व बहुत बड़ा यश है उसे मैंने कहा तब कपट से स्नेह करके हृदय में जगह मांगी। अब तक तो नाम की ओट से बचा। परन्तु पापी युग संसार को उजार रहा है अब गरीब सेवक की रक्षा कीजिये। नहीं तो ढूंढ़ भी नहीं पाइयेगा।

जिस खेल से पत्ती और कुत्ते का न्याय प्रभु ने कर दिया उसी खेल से हे कृपालु! कहिये कि यह तुलसी मेरा है ॥ १४७ ॥

कृपासिन्धु तातें रहौं निशि दिन मन मारे। महाराज लाज आपुहि निज जांघ उघारे॥ मिल्यो रहैं मारयो चहैं कामादि सँघाती। मो बिनु रहैं न मेरि ये जारैं छल छाती॥ बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली। कियो कथिक दो दण्ड हौं जड़ कर्म कुचाली॥ देखो सुनो न आजु लौं अपनायति ऐसो। करहिं सबै शिर मोहो फिरि परै अनैसो॥ बड़े अलेखो लखि परे परिहरे न जाहीं॥ असमंजस मैं मगन हौं लाजै गहि बाहीं॥ बारक बलि अवलोकिये कौतुक जन जीको। अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को॥ १४८ ॥

हे रामजी! इसी से रात दिन चुप रहता हूं कि महाराज को अपनी जांघ उघारने में आप ही लज्जा होगी। काम क्रोधादि संगी लोग मिले भी रहते मारना भी चाहते व बिना मेरे रहते नहीं वह मेरे ही छल से छाती जलाते हैं हृदय में रहते हैं हित समझ मने सबकी इच्छा पूरी की। परन्तु मूर्ख कुमार्गी कर्मों ने मुझे कथिक का दण्डा कर लिया। ऐसी आपस तो आज तक नहीं देखी सुनी सब तो करते उलटे मेरे ही सिर खराबी पड़ती। बड़े ही अनोखी देख पड़े जो छोड़ने से भी नहीं जाते मैं सोच में डूबता हूं हाथ पकड़ लो। बलि जाऊं एक बार दास के चित्त का तमाशा देखिये तो तुलसीदास का क्लेश बिना परिश्रम हट जावेगा ॥ १४८ ॥

कहौं कौन मुहं लाइकै रघुबीर गुसाईं। सकुचत समुझत आपनो सब साँइ दुहाई॥ सेवत वश सुमिरत सखा शरणागत सों हौं। गुणगण सीतानाथ के चित करत न हौं

हौं ॥ कृपासिन्धु बन्धु दीन के आरतहितकारी । प्रणतपाल बिरदावली सुनि जानि बिसारी ॥ सेइ न धेइ न सुमिरि के पदप्रीति सुधारी । पाइ सुसाहिब राम सों भरि पेट बिगारी ॥ नाथ गरीबनिवाज हैं मैं गही न गरीबी । तुलसी प्रभु निज ओरते बनिपरै सोकीबी ॥१४९॥

हे स्वामी राम ! कौन मुंह लगा कर कहूं । प्रभुकी दोहाई हमें सभी संकोच है मैं अपनीही भूल समझता हूं । सेवा से वश होने ध्यान से मित्र शरण आये से संमुख होते हो । श्री सीताजी के पति रामजी के गुणों को मैं मनमें नहीं लाता । कृपा के समुद्र दीनों के हितैषी शरण आये के रक्षक हैं । यह महायश सुन व जानके भुला दिया न सेवा किये न ध्यान किये। और न या दृभर चरणों को प्रेम से सुधार किया ! किन्तु राम के समान स्वामी पाकर पेट भर कर बिगाड़ डाला प्रभुतो गरीब निवाजही हैं किन्तु मैनेही गरीबी नहीं पकड़ी हे नाथ ! तुलसी को अपनीही ओर से जो बन पड़े वह करिये ॥१४९॥

कहाँ जाउँ कासों कहौं और ठौर न मेरे । जन्म गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ॥ मैं तो बिगरा नाथ सों आरति के लीन्हे । तोहिं कृपानिधि क्यों बने मेरी सो कीन्हे दिन दुर्दिन दिन दुर्दशा दिन दुख दिन दूषण । जब लौं तू न बिलोकिहै रघुवंशविभूषण ॥ दई पीठि बिनु डीठ मैं तुम विश्वविलोचन । तोसो तुही न दूसरो नतशोचविमोचन। पराधीन देव दीन हौ स्वाधीन गुसाईं । बोलनिहारे सों करै बलि विनय की झाईं ॥ आपु देखि मोहिं देखिये जन मानिय सांचो । बड़ो ओट राम नाम को जेहि लयो सो बांचो ॥ रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है । ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥१५०॥

कहां जाऊं किससे कहूं मेरे तो दूसरी जगह नहीं है तुम्हारे ही द्वारपर तुम्हारे सेवक ने जन्म पूरा किया। मन तो गरीबी को लेने से प्रभु से बिगाड़ किया परन्तु तुम्हें कृपानिधि होके मेरी ऐसी किये कैसे बनेगी। वे दिन दुर्दिन हैं वे दिन दुर्दशा के हैं वे दिन दुःख के हैं वे दिन दोषों से पूर्ण हैं हे रघुवंशशिरोमणि! जब तक तुम नहीं निगाह करते मैं तो अन्धा हूं जो तुमसे विमुख हूं। परन्तु तुम संसार को देखनेवाले हो, तुम्हारे समान तुमही हो दूसरा नहीं। गिरे हुए के दुःख को दूर करनेवाले हो हे देव! मैं पराधीन और दुःखी हूं। आप स्वाधीन स्वामी हैं। बलि जाऊं बोलनेवाले से क्या छाया बिनती कर सकतीहै। अपनी ओर को देख मुझे देखिये तो सेवक को सच मानिये। हे रामजी! नाम की बड़ी आड़ है जिसने लिया वही संसार में बचा। हे राम! आप की रहनि रीति सदा हृदय में उमंगती है जैसे अच्छा लगे वैसे कृपा करो तुलसी तुम्हाराही है ॥१५०॥

रामभद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहों। जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं॥ नातो बड़े समर्थ सों यक ओर किधौं हूं। ताको मोसे अति घने मोंको इक तोहूं॥ बड़ि गलानि हानि है हिये सर्वज्ञ गुसाईं। क्रूर कुसेवक कहत हों सेवक की नाईं॥ भलो पोच रामको कहैं मोहिं सब नर नारी। बिगरे सेवक श्वान ज्यों साहिब शिर गारी॥ असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै। दीनबन्धु कीजै सोई बनिपरै जो बूझै॥ विरदावली विलोकिये तिन्ह में कोइ हौं हौं। तुलसो प्रभु को परिहर्यो शरणागत सोंहौं॥ १५१॥

हे राम! मंगल स्वरूप हो मुझे अपना सोच नहीं सोच यह है कि संसार में सब जीव दुःख के भाजन (पात्र) हैं। सो नहीं

अति समर्थ से नाता एक और किया है कि तुमको तो मेरे ऐसे अनेकों हैं परन्तु मुझे तो एक तुम्हीं हो, हे अन्तर्यामी ! स्वामी हृदय में यह एक बड़ा सोच है। कायर कुसेवक होके सेवक की भांति कहता हूं। सब स्त्री पुरुष भला बुरा मुझे रामका ही कहते हैं। सेवक का दोष कुत्ता के समान है कि पालन करने वाले हो सिर गाली होता है। चित्तका असमंजस (दुविधा) मिटे वह उपाय नहीं सूझता हे दीनबन्धु ! वही कीजिये जो समझिये कि अच्छा हो । अपने यश की पंक्ति में देखिये तो उनमें मैं भी कोई हूं तुलसी परब्रह्म को छोड़ तुम्हारे सामने शरण है ॥ १५१ ॥

जोपै चेराई राम को करते न लजातो । तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥ जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो । बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥ जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो । सीतापति सम्मुख सुखी सब ठांव समातो ॥ राम सुहाते तोहि जो तू सबहि सुहातो । काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कुहातो ॥ राम नाम अनुरागही जिय जो रति आतो । स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो ॥ सेइ साधु सुनि समुझिकै परपीर पिरातो । जन्म कोटि को कान्दलो हृद हृदय थिरातो ॥ भवमग अगम अनन्त है बिनु श्रमहि सिरातो । महिमा उलटे नाम को मुनि कियो किरातो ॥ अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाइ न जातो । होतो मंगलमूल तू अनुकूल विधातो ॥ जो मन प्रीति प्रतीति सों रामनामहि रातो । तुलसी रामप्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो ॥ १५२ ॥

जो तू राम की सेवा करते लज्जित न होता तो कीमती

होकर भी खोटा के समान हाथ हाथ विकता । जीभ से राम का नाम लेते न अलसाता तो नट की तरह सूमों से दुष्ट मिट्टी न खाता । रे मन ! जो तू मेरे कहने से राम नाम कमाता तो राम के सामने सुखी होकर सभी जगह आदर पाता । जो तुझे राम अच्छे लगते तो तू सभी को अच्छा लगता । और सबके कारण काल कर्म भी कोई क्रोध नहीं करते । जो रामके नामही में प्रेम की आसक्ति चित में आती तो स्वार्थ परमार्थ में चलने वाले सभी तुझे मानते । साधुको सुन समझ के सेवा करता तो पराई दर्द से पीड़ा होता । करोड़ों जन्म के मैला से भरा हृदय कुण्ड निर्मल होता तो फिर जो संसारी मार्ग अथाह व अपार है विना परिश्रम तर जाता । उलटे नामकी महिमा ने भील को मुनि बना दिया । देवों को दुर्लभ यह देह पाके रे मूर्ख ! जन्म लेकर फिर न होता वरन् मुक्त हो जाता दैव भी दहिने हो जाता रे मन ! जो प्रेम व विश्वास से राम नाम अच्छा लगता तुलसी दास कहते हैं कि राम की प्रसन्नता से संसार के तीनों ताप तुझे न तपाते ॥१५२॥

रामभलाई आपनी भल कियो न काको । युग युग जानकिनाथ को जग जागत साको ॥ ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख वसुधा को । रविकुल कैरवचन्द भो आनन्द सुधा को ॥ कौशिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को । प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥ हन्यो पाप आप जायके संताप शिला को । शोचमगन काढ्यो सही साहब मिथिला को ॥ रोषराशि भृगुपति धनी अहमिति ममता को ॥ मुदित मानि आयसु चले वन मातु पिता को । धर्मधुरन्धर धीर सो गुण शील जिता को ॥ गुह गरीब गत ज्ञातिहु जेहि जिउ न भखा को । पायो

पावन प्रेम ते सनमान सखा को ॥ सद्गति शबरी गृध्र की सादर करता को ॥ शोचसर्वी सुग्रीव के संकट हरताको। राखि विभीषण को सके तेहि काल कहां को। आज विराजत राजहो दशकंठ जहां को ॥ बालि सवासी अ ध के बूझिये न खाको। ते पांवर पहुंचे तहाँ जहँ मुनिमन थाको ॥ गति न लहै रामनाम सों विधि सो सिरजा को। सुमिरत कहत प्रचारिकै वल्लभ गिरिजा को ॥ अकनि अजामिल की कथा सानन्द न भाको। नाम लेन कलि-कालहूँ हरिपुरहि न गाको ॥ रामनाम महिमा करै काम भूरुह आको। साक्षी वेद पुराण हैं तुलसी तन ताको ॥ १५३ ॥

रामने अपनी नेकी से किसकी भलाई नहीं किये। युग युग में श्रीरामजी की कीर्ति संसार में जागती है। ब्रह्मा आदि ने पृथिवी का दुःख कहके विनय किया तो आनन्दसागर ब्रह्म सूर्यवंश रूपी कमलमें चन्द्रमा के समान हुआ। ताडुका के तेज को देख जैसे पाला विश्वामित्र गले जाते थे। परन्तु प्रभु ने शत्रु को क्रोध का भी फल कृपा से भलाई ही दिये। स्वयं जाकर अहल्या के पाप रूपी ताप को दूर किये। सोच में डूबते जनक को काढ़ ही लिया। क्रोध की राशि परशुराम को जो अभिमान रूपी मोह के धनी थे देखते ही शान्ति व समता का पात्र बना दिया। माता पिता की आज्ञा मान प्रसन्नता से बनको गये। धर्म धैर्य और उत्तम गुणों को धारण करने में और शील में कौन बिजयी है। गरीब केवट जाति में हीन जिसने कौन जीव नहीं खाये शुद्ध प्रीति से मित्रों का आदर पाया। शबरी व गीध की मुक्ति कौन आदर से करता, सोच की सीमापर पहुंचे सुग्रीव के क्लेश को

कौन दूर करता। विभीषण को वहां उस समय कौन रख सकता जहां का राजा होके रावण आज विद्यमान था। मूर्ख अयोध्यावासी नासमझ धोबी वे वहां पहुंचे जहां मुनियों के मन नहीं पहुंचते। राम नाम से मुक्ति न पावे वह कौन ब्रह्मा का बनाया है। ऐसा पार्वती के पति शिव ध्यान धर पुकार के कहते हैं कि अजामिल की कथा सुन कौन सुखी नहीं हुआ। कलियुग में भी नाम लेते कौन वैकुण्ठ नहीं गया। राम नाम की महिमा मदार को कल्पवृक्ष करता है। वेद पुराण साक्षी हैं तुलसी ही की ओर देखो ॥ १५३ ॥

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलिजाऊं। निलज नीच निर्धन निर्गुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाऊं ॥ हैं घर घर भव भरे सुसाहिब सूझत सबनि आपनो दाऊँ। बानर बन्धु विभीषण हितबिनु कोशलपालकहूं न समाऊँ॥ प्रणतारति भंजन जन रंजन शरणागत पवि पंजर नाऊं। कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाऊं॥ १५४ ॥

हे राम! बलिजाऊं मुझे आपही की गति है। निर्लज्ज अधम दरिद्र मुझ निर्गुण को संसार में न दूसरी जगह न दूसरा स्वामी ही है। संसार में घर घर मालिक भरे हैं परन्तु सबको अपनाही दावं सूझता है। बानरों के सखा विभीषण के हितकारी अवधराज के बिना कहीं नहीं समाऊंगा। शरणागत के दुःखनाशक शरण आये हुये को वज्र के बने पींजरे के समान भक्तों के प्रेमी तुम्हारे नाम हैं। तुलसीदास को दास करिये हे कृपासिन्धु अब बिना मोह के बिकता हूं ॥ १५४ ॥

देव दूसरो कौन दीन को दयाल। शीलनिधान सुजान शिरोमणि शरणागत प्रिय प्रणतपाल ॥ को समर्थ

सर्वज्ञ सकल प्रभु शिव सनेह मानस मराल । कोसाहिब किये मीत प्रीतिवश खगनिशिचर कपिभोलभाल ॥ नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुण कर्म काल । तुलसि दास भलो पोच रावरो नेकु निरखि कीजिये निहाल॥ १५५॥

हे रामजी ! गरिबों पर दया करनेवाला दूसरा कौन है । शील के निधान सज्जनों में शिरोमणि प्रणत जनों के रक्षक शरणागत के प्रिय हो । सबके प्रभु सबको जाननेवाले समर्थ शिवके मन को हंस के समान प्रेमी कौन है । किस राजा ने प्रेम के वश हो पक्षी राक्षस बानर भालु आदिकों को मित्र किये । प्रभु के हाथ में सब माया का प्रपंच व जीवों के दोष गुण कर्म काल है । तुलसीदास का भला बुरा आपही का है नेक देखिके निहाल कीजिये ॥ १५५ ॥

राग सारंग ।

विश्वास एक राम नाम को । मानत नहीं प्रतीत अनत ऐसोई स्वभाव मन बाम को ॥ पढ़िबो परयो न छठो छमत ऋग यजुर अथर्वण सामको । व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचिमरै करै तनु क्षाम को ॥ कर्मजाल कलि-काल कठिन आधीन सुसाधित दाम को । ज्ञान विराग योग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ॥ सब दिन सब लायक भवगायक रघुनायक गुण ग्रामको । बैठे नाम कामतरु तर डर कौन घोरधन घाम को ॥ को जानै को जैहै यमपुर को सुरपुर परधाम को । तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥ १५६ ॥

केवल राम नामही का विश्वास है । कुटिल मन का ऐसाही

स्वभाव है कि और मैं बिश्वास नहीं मानता। छओं शास्त्र चारों वेदों का पढ़ना मेरी छट्ठी में न पड़ा। उपवास तीर्थ और तपस्या सुन के सूख जाता कि कौन देह दुर्बल करके पचमरे। कलियुग कें कर्मों का झगड़ा कठिन है उन्हें साध्य होना द्रव्य के आधीन है। ज्ञान वैराग्य योग जप तप में लोभ मोह क्रोध काम का डर लगा है। सब दिनों में सब लायक जिसे शिव गाते राम के गुणों की राशिही है। नामरूप कल्पवृक्ष के नीचे बैठके बहुत बादल व घाम का कौन डर है। कौन जाने कि कौन नरक जायगा कौन स्वर्ग व मुक्त होगा। संसार में तुलसी को तो रामकी सेवकाई का जीवन बहुत प्यारा लगता है॥ १५६॥

कलि नाम कामतरु राम को। दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को॥ नाम लेत दाहिनो होत मन वाम बिधाता वाम को। कहत मुनीश महेश महा-तम उलटे सूधे नाम को॥ भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को। तुलसी जग जानियत नाम ते शोच न कूंच मुकाम को॥ १५७॥

कलि में राम का नाम कल्पवृक्ष है। दीनता अकाल दुःख और दोषों के कठिन ताप को बादल के समान नाश करता है। नाम लेते ही टेढ़े भी दैव का कुटिल मन सीधा हो जाता है। उलटे व सीधे नाम का माहात्म्य वाल्मीकि व शिवजी कहते हैं। उसको लोक परलोक में अच्छा है जिसको मनोहर प्यारे रामजी का बल है। हे तुलसी! संसार में नाम से जन्म मरण के सोच नहीं जान पड़ते॥ १५७॥

सेइये सुसाहब रामसो। सुखद सुखद सुशील सु-जान शूर शुचि सुन्दर कोटिक काम सो॥ शारद शेष साधु महिमा कहैं गुणगणगायक साम सो। सुमिरि सप्रेम

नाम जासों रति चाहत चन्द्रललाम सो। गमन विदेश न लेश क्लेशको सकुचत सकृत प्रणाम सो। साक्षी ताको विदित विभीषण बैठो है अविचलधाम सो। टहल सहज जन महल महल जागत चारों युग याम सो। देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुणग्राम सो॥ जाको भजे तिलकनिलक भये त्रिजग योनि तनु ताम सो। तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न ताहि विधाता वाम सो॥ १५८॥

राम के समान राजा की सेवा करिये! वह सुखदाता सुशील सज्जन शूरवीर पवित्र और करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर हैं। शारदा शेष साधु और साम वेद को गानेवाले उनके गुणों का माहात्म्य कहते हैं। चन्द्रललाम शिव वह नाम को स्मरण कर प्रेम से जिसमें प्रीति चाहते हैं उन्हें परलोक जाने के क्लेश नहीं वह ऐसा है कि एक बार के भी प्रणाम से सकुचता है। उसका गवाह प्रत्यक्ष विभीषण है जो कि निश्चल जगह में बैठा है, वही सेवा से सरल होके भक्तों के हृदय में चारों युग सब दिन उदय रहता है। दोषों को देख क्रोध नहीं करता किन्तु वह भक्तों के गुण गण सुन प्रसन्न होता है। उसकी सेवा से पशु पक्षी और अहंकारी देहवाले भी तीनों लोक में उत्तम हुए तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे स्वामी की भी सेवा जो न करे उसका दैवही टेढ़ा है॥ १५८॥

राग नट।

कैसे देउँ नाथहि खोरि। काम लोलुप भ्रमत मन हरि भक्ति परिहरि तोरि॥ बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि। देत सिख सिखयो न मानत मूढ़ता असि

मोरि ॥ किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि। संगवश किये शुभ सुनाये सकल लोक निहोरि॥ करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत शिला बटोरि। पैठि उर बरबश दयानिधि दम्भ लेत अजोरि॥ लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आशाडोरि। बात कहौं बनाय बुध ज्यों वर विराग निचोरि॥ एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि। निलजता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहि छोरि ॥ १५६।

नाथ को किस प्रकार दोष दूं। हे राम जी! काम का लोभी चित्त तुम्हारी भक्ति छोड़ कर घूमता है। अपने पुजाने में तो बड़ी प्रीति है और दूसरे के आदर मे थोड़ी। सिखलाने से भी सिखलाना नहीं मानता ऐसी मेरी मूर्खता है प्रेम के साथ जो पाप किये उन्हेंतो हृदय में चुरा रखता हूं और सतसंग के वश जो पुण्य किये उन्हें सब लोगों के सामने निहोरा लगा कर सुनाता हूं। जो कुछ पचाकर सच्चे पुण्य केढेर इकट्ठे भी करके रखता हूं तो हेराम! उन्हें पाखण्ड में पैठ हठ से छीन लेता है। लोभ मनको गलेमें भरोसा की डोर बनाकर बानर के समान नचाता है तोभी विद्वानों के समान बातें बनाकर उत्तम वैराग्य कहकर टपकाता फिरता हूं। इतने परभी तुम्हारा कहलाता हूं हा! लज्जा घोरकर पान कर लिया है इस निर्लज्जता पर प्रसन्न हो हे राम! तुलसी को छोर दीजिये॥ १५६॥

है प्रभु मेरोई सब दोषु।

शीलसिन्धु कृपालु नाथ अनाथ आरतपोषु ॥ वेष बचन विराग मन अघ अवगुणनिको कोसु। रामप्रीति प्रतीति पोलो कपट करतब ठोसु ॥ राग रंग कुसंग ही सों साधु

संगति रोसु । चहत केहरि यशहि सेइ शृगाल ज्यों खर-
गोसु ॥ शम्भु सिखवन रसनहू नित राम नामहिं घोसु । दम्भहूँ
कलि नाम कुम्भज शोचसागरसोषु । मोद मंगलमूल अति
अनुकूल निज निरजोषु । रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहु परम
संतोषु ॥ १६० ॥

हेप्रभु ! मेरा ही दोष सब है । आप कृपा और शील के सागर अनाथ और दुखियों के स्वामी और रक्षक हैं । मेरी बात और मेरे वेष वैराग्य के हैं मन पाप व अवगुणों का घर है । श्रीरामजी में प्रेम विश्वास पोला और छलके कामोंसे भरा है । मन कुसंग के रंगमें ही रंगा है सत्संग से जल उठता है जैसे खरगोस स्यार की सेवा कर सिंह का यश चाहता है । शिवजी का सिखाना है कि जीभ से रोज राम नामहीं रट पाखण्ड से भी कलि में नाम सोच के समुद्रका सुखानेवाला अगस्त्य के समान है । बेतौल आनंद मंगल की मूल अपने अति दाहिने है रामनाम का प्रभाव सुन तुलसी को भी बड़ा सन्तोष है ॥ १६० ॥

मैं हरि पतितपावन सुने ।

मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने ॥ व्याध
गणिका गज अजामिल साखि निगमनि भने । और अधम
अनेक तारे जात कापै गने । जानि नाम अजानि लीन्हे
नरक यमपुर मने । दासतुलसी शरण आयो राखिये
अपने ॥ १६१ ॥

मैंने भगवान को पतितपावन सुना है, तो मैं पतित हूं तुम पतितपावन हो दोनों का बनाना बन गया । व्याध वेश्या गजराज अजामिल इसमें गवाह है । और वेद भी कहते हैं कि दूसरे बहुत नीचों को तार दिये वे क्या गिने जा सकते हैं । नाम को जान या अजान में लेवे तो यमपुर के नरकमें न जावे । इससे तुलसीदास शरण आया है कि अपने यहां राखिये ॥ १६१ ॥

राग मलार ।

तोसा प्रभु जोपे कहूं कोउ होतो ।
तौ सहि निपट निरादर निशि दिन रटि लटि ऐसो घटि कोतो । कृपासुधा जलदान मांगिबो कबों सो सांच निसोतो । स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत चितचातक मो पोतो ॥ काल कर्म वश मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुं कुछ भोतो । ज्यों मुदमय बसि मीन वारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥ जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो । तेरे राज राय दशरथ के लयो बयो बिनु जोतो ॥ १६२ ॥

हे प्रभु ! तुमारे समान कहीं कोई होता तो निपट निरादर सहके रात दिन रट कर ऐसी क्यों घटती, तुह्मारी कृपारूपी अमृत का जलजान मांगना चाहता हूं वह बिलकुल ठीक है । मेरा चित्त पपीहा के बच्चे के समान स्वाती के जल का सुख चाहता है । काल और कर्म के बश मन बुरी इच्छा को छोड़ कर कभी कभी कुछ हुआ तो जैसे आनन्दमयी जल में रहती मछली उसे छोड़ उछल के जोर भर गोता लगावे वैसे लगाता है । जितना छल तुलसीदास के हृदय में है उतना क्यों कर कहने में आ सकता है । राजा दशरथ के पुत्र ! तुह्मारी राज्य में बिना जोते बोये मिलता है ॥ १६२ ॥

राग सोरठ ।

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति योग विराग यतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।

सो गति देत गीध शबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो सम्पति दशशीश अर्पि करि रावण शिव पहँ लीन्हीं ।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरण करैं कृपानिधि तेरो ॥१६३॥

संसार में ऐसा दानी कौन है जो बिना सेवा गरीबों पर राम के समान पिघले ऐसा कोई नहीं है । जिस गति को योग वैराग्य से उपाय करके मुनि और ब्रह्मज्ञानी नहीं पाते । उसी गति को जटायु और शबरी को प्रभुने देते हुए मनमें बहुत नहीं समझा जिस ऐश्वर्य को रावण ने दशों सिर देकर शिवजीसे लिया । वही ऐश्वर्य विभीषण को बड़े संकोच के साथ श्रीराम जी ने दिया । तुलसीदास कहते हैं कि अरे मेरे मन ! जो सब प्रकार से सुख चाहो तो श्रीरामजी का भजन करो सबका काम श्री रामजी पूरा करते हैं ॥ १६३ ॥

एकै दानिशिरोमणि सांचो ।
जिहि याच्यो सोइ याचकतावश फिरि बहु नाच न नाचो ॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये ।
कोशलपाल कृपालु कल्पतरु द्रवत सकृत शिरनाये॥ हरिहुँ और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई । लै तण्डुल निधि दई सुदामहिं यद्यपि बालमिताई ॥ कपि शबरी सुग्रीव विभीषण को नहिं कियो अयाची । अब तुलसिहि दुख देत दयानिधि दारुण आश पिशाची ॥ १६४ ॥

सच्चे दानियों में शिरोमणि श्रीरामजी एकही हैं । जिसने मांगा वह फिर भिक्षा के वश होकर अनेक नाच नहीं नाचे और न तो विमुख फिरे । देवता दैत्य मुनि सब स्वार्थी हैं कोई बिना

पाये नहीं देता है । परन्तु दयालु अवधराज श्रीरामजी कल्पवृक्ष के समान हैं जो एक बार के भी सिर झुकाने से पिघल जाते हैं और मनुष्य की कामना का फल देते हैं । भगवान ने अपने अवतारों में वेदों को श्रेष्ठ माना है कि सुदामा का चावल ले के कुबेर के समान ऐश्वर्य दिया यद्यपि लड़कपन की मित्रता थी । हनुमान शबरी विभीषण को राम ने क्या सन्तुष्ट नहीं किया है कृपासिन्धु! तुलसी को अब राक्षसी आशा कठिन दुःख देती है ॥ १६४ ॥

जानत प्रीतिरीति रघुराई ।

नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥ नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अचल चलाई । ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता गुण गरुआई । तियबिरही सुग्रीव सखा लखि प्राणप्रिया बिसराई । रण पन्यो बन्धु विभीषणही को शोच हृदय अधिकाई ॥ घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई । तब तहँ कहे शबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई ॥ सहज स्वरूप कथा मुनि वर्णत रहत सकुचि शिरनाई । केवट मीत कहे सुख मानत बानरबंधु बड़ाई ॥ प्रेमकनौड़ो राम सों प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई । ऋणी तोर हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि को सेवकाई ॥ तुलसी राम सनेह शील लखि जो न भक्ति उर आई । तौ तोहिं जन्मि जाय जननी जड़ तनु तरुणता गँवाई ॥ १६५ ॥

श्री रामजी प्रीति के रीति को जानते हैं । प्रीति के सम्बन्ध से रामजी सब प्रकार के नाते बाहर कर रखते हैं । दशरथ ने प्रीति का निर्वाह कर शरीर को छोड़ कीर्ति को निश्चल चलाया ।

ऐसे भी पिता से अधिक जटायुपर ममता किये कि उसके गुण की गरुवाई से गरू हो गये। स्त्री का वियोगी सुग्रीव मित्र को देख अपनी प्राणप्यारी को भूल गये, युद्ध में लक्ष्मण के गिरने पर बिभीषण ही का सोच हृदय में अधिक हुआ अपने घर गुरू के घर मित्रों के घर ससुराल जब जहां खातिर हुई तब वहां कहा कि शेवरी के फलों का स्वाद और मीठापन नहीं पाया। ब्रह्म स्वरूप की कथा कहते तो मुनियों से सिर झुका कर दबे रहते और निषाद को मित्र कहने से सुख मानते और बानरों के वन्धु हो कहने से अपनी बड़ाई मानते। प्रीति से ऋणी होना राम के समान है। हे भाई! तीनों लोक में तीनों काल नहीं है कि बानर से कहा कि तुमारा ऋणी हूं ऐसा कौन सेवा मानेगा। हे तुलसीदास! रामका प्रेम और शील देख के जो हृदय में भक्ति न हुई तो रे मूर्ख! मुझे पैदा करके बृथा ही माता ने देह की जवानी खोई ॥ १६५ ॥

रघुबर रावरि यहै बड़ाइ।

निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥ थके देव साधन अनेक करि सपनेहु नहिं देत दिखाई। केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकुल सँग भाई ॥ मिलि मुनिबृंद फिरत दण्डकबन से चरचो न चलाई। बारहि बार गोध शबरो की वर्णत प्रीति सुहाई ॥ श्वान कहे ते किय पुर बाहर यती गयन्द चढ़ाई। सियनिन्दक मतिमन्द प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥ यह दरबार दीन वते आदर रीति सदा चलि आई। दीनदयाल दीन तुलसो की काहु न सुरति कराई ॥ १६६ ॥

हे रामजी! आप की बड़ाई यही है कि धनियों को छोड़ गरीबों पर अधिक कृपा करते हो। देवता लोग बहुत सी साधना करके थक गये उन्हें स्वप्न में भी दिखाई नहीं पड़ते हो। केवट और

बानर भालु को राजा कर दिया और उनके परिवार के साथ भाईपनेका बर्ताव किया। मुनियों से मिलकर दण्डकबन में घूमे परन्तु उसकी चर्चा तक नहीं चलाई और बारंबार गीध जटायु और भीलनी शवरी की प्रीति अच्छे प्रकार कही। कुत्ते के कहने से तो यति को हाथी पर चढ़ा के अयोध्या से बाहर किये। परन्तु मूर्ख स्त्री निन्दक प्रजा धोबी को अपने साथ नित्य नये रहने वाले अर्थात् स्वर्ग में बसाया। इस दरबार में आदर की रीति सदा से चली आई है। परन्तु हे दयानिधि ! गरीब तुलसी की किसी ने याद नहीं कराई ॥१६६॥

ऐसे राम दीनहितकारी।

अतिकोमल करुणानिधान बिनु कारण पर उपकारी ॥ साधन हीन दीन निज अघ वश शिला भई मुनिनारी। गृह ते गवनि परसि पद पावन घोरशाप ते तारी ॥ हिंसा रत निषाद तामस वपु पशुसमान बनचारी। भेंट्यो हृदय लगाय प्रेमवश नहिं कुल जाति बिचारी ॥ यद्यपि द्रोह कियो सुरपतिसुत कहि न जाय अति भारी। सकल लोक अवलोकि शोक हत शरण गये भय टारी ॥ विहगयोनि आमिष अहारपर गीध कौन ब्रतधारी। जनकसमान क्रिया ताका निज कर सब भांति संवारी ॥ अधमजाति शवरी योषित शठ लोक वेद ते न्यारी। जानि प्रीति दै दरश कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥ कपि सुग्रीव बंधुभय व्या कुल आयो शरण पुकारी। सहि न सके दारुण दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ॥ रिपु को बंधु विभीषण निशि चर कौन भजन अधिकारी। शरण गये आगे ह्वै लीन्हो भेंट्यो भुजा पसारी ॥ अशुभ होइ जिनके सुमिरे ते बानर

ऋच्छ विकारी। वेदबिदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥ कहं लगि कहौं दीन अगणित जिनकी तुम विपति निवारी। कलिमलग्रसित दासतुलसी पर काहे कृपा बिसारो ॥१६७॥

श्री रामजी ऐसे गरीबों के हितकारी अति कोमल दयालु बिना कारण परोपकारी हैं। साधनाओं से रहित दीन अपने कर्म बश से अहल्या शिला होगई उसे घर जाके पवित्र चरण को छुआकर महा भयंकर शाप से छुड़ाया। जीवों का मारनेवाला केवट तामसी शरीरवाला जो कि पशु के समान बन का रहने वाला था प्रीति के कारण उसे हृदय से लगाये। कुल और जाति का बिचार न किये, इन्द्र का लड़का जयन्त यद्यपि बड़ा भारी अपराध किया कि कहने योग्य नहीं परन्तु जब सब लोक से घूम कर शरण में आया तो उसे निर्भय कर सुखी किये। पक्षी की योनि जटायु ने मांसाहारी होकर भी कौन ब्रत किया था जो कि पिता के समान उसका कर्म अपने हाथों से सब भांति से किया नीच जाति शवरी मूर्ख स्त्री जो कि लोक और वेद से बाहर थी प्रीति पहचान दयावान हो दर्शन दे रघुनाथ ने उसका उद्धार किया बानर सुग्रीव भाई बालि के भय से व्याकुलता पूर्वक शरण में आया तो भक्त के कठिन क्लेश से क्षुभित हो गाली सह कर बालि को मारा। शत्रु का भाई राक्षस विभीषण किस सेवा का अधिकारी था। शरण जाने से आगे होके लिया हाथ फैला के हृदय से लिपटाये। अवगुणी बानर भालु जिनका स्मरण करनें से अमंगल होता है यह वेद शास्त्र में प्रगट है उन सब को हेप्रभु तुमारी महिमा ने पवित्र कर दिया। कहां तक कहूं अन गिनत गरीब हैं जिनके दुःख तुमने दूर किये। अब कलिके पापों से ग्रसित तुलसीदास पर क्यों कृपा भुला दिये ॥१६७॥

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जाने सोइ जेहि बनिआई ॥

जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी। शफरी संमुख जलप्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥ ज्यों शर्करा मिलै सिकता महँ बलते न कोउ बिलगावै। अतिरसज्ञ शूक्षम पिपीलिका बिनु प्रयासही पावै॥ सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी। सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी॥ शोक मोह भय हर्ष दिवस निशि देश काल तहँ नाहीं। तुलसिदास यहि दशाहीन संशय निर्मूल न जाहीं॥ १६८॥

श्री रामजी की भक्ति करने में अति कठिन है। कहने में तो सहज परन्तु करने में अन्त नहीं मिलता। वही जाने जिससे बनपड़ी है क्योंकि जो जिस विद्या में चतुर है उसे वही सरल और सदा सुखदायी है। देखो गंगाजी के जल धाराका सामना मछलियां करती हैं बड़ाभारी हाथी बह जाता है। जैसे धूलि में शक्कर मिल जावे तो कोई बलसे नहीं अलग कर सकता परन्तु रसको जाननेवाले छोटी च्यूंटी विना परिश्रम के अलग कर सकती है। योगी जन आलस्य छोड़ कर सब संसार अपने ही भीतर डाल के आराम करता है। वही अत्यन्त द्वन्दसे छूटकर परमानन्द ब्रह्म का स्वाद लेता है और दुःख भ्रम डर सुख दिन रात स्थान समय वहां नहीं रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस दशाके विना सन्देह का मूल नष्ट नहीं होता॥१६८॥

जो पै रामचरण रति होतो।

तौ कत त्रिविध शूल निशिवासर सहते विपति निसोती॥ जो संतोषसुधा निशि बासर सपनेहु कबहुंक पावै। तौ कत विषय विलोकि झूठ जल मनकुरंग ज्यों धावै॥ जो श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाये। तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाये॥ जे लोलुप भये दास आस के ते सबही

के चेरे। प्रभु विश्वास आस जीती जिनते सेवक हरिकेरे ॥ नहिं एको आचरण भजन को बिनय करत हौं ताते। कीजै कृपा दासतुलसी पर नाथ नाम के नाते ॥ १६९ ॥

यदि रामजी के चरणों में प्रीति होती तो त्रिविध ताप और खालिस दुःख क्यों दिन रात सहन करते । जो दिन रात स्वप्न में भी सन्तोष रूपी अमृत कभी पान करे तो झूठे विषय रूपी जल को देख मृगा के समान क्यों मन दौड़ता फिरता । जो भगवान की महिमा हृदय में विचारकर अधिक भावना से भजन करता तो द्वार द्वार क्यों कुत्ता के समान पेट खलाये फिरता । जो लालची आशा के दास हैं वे सभी के गुलाम हैं । और ईश्वर के विश्वास में जिन्होंने आशा को जीत लिया वेही भगवान के सेवक हैं । मुझ में सेवा का चलन एक भी नहीं है इस लिये बिनती करता हूं कि स्वामी नाम के नाते से तुलसीदास पर कृपा कीजिये ॥ १६९ ॥

जो मोहि राम लागते मीठे ।

तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥ बंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु दीठे । यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाय उबीठे ॥ तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे । नामकि लाज राम करुणाकरि केहि न दिये करि चीठे ॥ १७० ॥

यदि मुझे रामजी मीठे लगते तो नव रस और छ रस नीरस हो सब फीके होजाते । अनेक प्रकार की देह धारण करके विषय रूपी ठगों को समझा सुना और देखा अपने हृदय में यह जानता हूं कि स्वप्न में भी तृप्त न हुआ कि उबीठे हो । तुलसीदास को प्रभु से एकही बड़ा बल है जो कि ढिठाई से कहता हूं कि हेराम ! नाम की लज्जा से दया करके किस को चिट्ठी लिखके नहीं दिया ॥ १७० ॥

यों मन कबहुं तुमहिं न लाग्यो।

ज्यों छल छांड़ि स्वभाव निरन्तर रहत विषय अनुराग्यो॥ ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के। त्यों न साधु सुरसरि तरंग निरमल गुणगण रघुबर के॥ ज्यों नासा सुगन्धरस वश रसना षटरस रति मानी। रामप्रसाद माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी॥ चन्दन चन्दबदनि भूषण पट ज्यों चह पांवर परस्यो। त्यों रघुपतिपदपद्म परस को तनु पातकी न तरस्यो॥ ज्यों सब भांति कुदेव कुठाकुर सेये वपु बचन हिये हूं। त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रणाम कियेहूं॥ चञ्चल चरण लाभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे। राम सीय आश्रमनि चलत त्यों भये न श्रमित अभागे॥ सकल अंग पदबिमुख नाथ मुख नाम की ओट लयी है। है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है। १७१॥

तुम में कभी मन ऐसा न लगा जैसा कि छल छोड़ सहजही रोज विषयों में प्रीति करता रहता है जैसे पराई स्त्रियों को देखता और घर २ के पाप और विषयों की बातें सुनता है। वैसे साधु गंगा की लहर और रामजी के निर्मल गुणों के समूह नहीं देखता सुनता जैसे नाक सुगान्धित रस के वश में हैं और जीभ छओं रसों से प्रीति करती है राम के प्रसाद की माला भोग में वैसे लग के प्रेम से नहीं ललचाती है। चन्दन स्त्रीका चन्द्रमा के समान मुख आभूषण और वस्त्रों को जैसे क्षुद्र देहवाला स्पर्श चाहता है वैसे राम के चरण कमल के स्पर्श का पापी शरीर ने लालच नहीं किया। जैसे सब तरह से बुरे देवता और दुष्ट राजा के देह व बचन

का हृदय से सेवा किया वैसे राम की दया को न जाने जो कि एक बार भी प्रणाम करने से ही सकुचाते हैं। चंचल चरण लोभ से लाभ के लिये संसार में द्वारद्वार बंधने से फिरते वैसे अभागी सीताराम के मन्दिरों में चलते हुए थक के भी नहीं बैठे । सब अंग तो प्रभु के चरणों से विमुख हैं केवल मुखने नाम की आड़ लिया है इससे हेप्रभु ! तुलसी को एक यही विश्वास है कि तुम्हारी मूर्ति कृपामयी है ॥ १७१ ॥

कीजै मोको जग यातनामयी ।

राम तुम से शुचि सुहृद साहिबहि मैं शठ पीठि दयी ॥ गर्भवास दशमास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हो । जड़हि विवेक सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हो ॥ कपट करों अन्तर्यामिहुँ सो अघ व्यापकहि दुरावों । ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावों ॥ उदर भरों किंकर कहाइ बेंच्यो विषयनि हाथ हियो है । मोको बंचक को कृपालु छल छांड़िके छोह कियो है ॥ पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके । भिद्यो न कुलिशहु ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सियपीके ॥ स्वामी की सेवकहितता सब कछु निज साइँ दोहाई । मैं मति तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिशि गरुआई ॥ एतेहु पर हित करत नाथ मेरो करि आयो अरु करिहैं । तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ोइ भरिहैं ॥१७२॥

मुझको संसारी दुःखरूपी कीजिये । क्योंकि हे रामजी ! तुम समान पवित्र मित्र ईश्वर से मैं विमुख रहा । गर्भवास से दश महीने माता पिता के रूप से तुमने मेरी रक्षा करके भलाई किये

तुमने अज्ञानी का ज्ञान दुष्ट की सज्जनता अपराधी का आदर किया मैं अन्तर्यामी से छल करता सर्वव्यापी से भी पाप छिपाता हूं। ऐसे भी मूढ़ सेवक पर रामजी ने अपना मन टेढ़ा नहीं किये। दास कहा पेट भरता हूं विषयों के हाथ हृदय बेंचता हूं मेरे बराबर कपटी कौन होगा। तौ भी कृपालु ने छल छोड़कर दया किये आपके एक एक त्नण की भलाई अच्छी तरह सुन समझ के वज्र के समान मेरा हृदय श्री रामजी के प्रेम से कभी न छेदा गया। प्रभु की दास पर भलाई पूरी न कुछ अपना छल और प्रभुका शपथ मन बुद्धिकी तराजू में तौल के देखा तो मेरी ही और गरुवाई हुई। इस पर भी प्रभु ने मेरी भलाई करते हैं और करेंगे तुलसी अपनी तरफ से जानता है कि प्रभु ही इस ऋण से रक्षा करेंगे ॥१७२॥

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत स्वभाव गहौंगो। परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥ परुषबचन अतिदुसह श्रवणसुनि तेहि पावक न दहौंगो। विगतमान सम शीतल मन पर गुण नहिं दोष कहौंगो॥ परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो। तुलसिदासप्रभु यहि पथ रहि अविचलहरिभक्तिलहौंगो॥ १७३॥

क्या कभी मैं इस चलन से रहूंगा। दयालु श्रीराम जी की कृपा से सज्जनों का स्वभाव पकड़ूं। जो मिले उसीमें सन्तोष कर सदा किसी से कुछ भी न चाहूं। सदा पराये हित में लग कर मन बचन कर्म से नियम निर्वाह करूं। अति दुःसह कठोर बचन कानों से सुनकर अग्नि से न जलूं। अपने आदर को छोड़ समता से मन को ठण्ढा करके पराये गुण को लेकर अवगुण को न कहूं। देह से उत्पन्न चिन्ता दुःख सुख छोड़ स्थिर ज्ञान से सहूं हे प्रभु।

तुलसीदास इस मार्ग में रहकर रामकी निश्चल भक्ति पायेगा ॥ १७३ ॥

नाहिन आवत आन भरोसो ।

यहिकलिकाल सकल साधन तरु श्रम फलनिहै फरोसो ॥ तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो । पायहिपै जानिबो कर्मफल भरि भरि वेद परोसो ॥ आगम विधि जप योग करत नर सरत न काज खरो सो । सुख सपनेहु न योग सिधिसाधन रोग वियोग धरोसो ॥ काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो । बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरोसो ॥ बहुमत सुनि बहुपंथ पुराणनि जहां तहां झगरोसो । गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं रामराज डगरोसो ॥ तुलसो बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचिमरै मरोसो । रामनाम बोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो ॥ १७४ ॥

दूसरे का भरोसा नहीं आता क्योंकि इस कलियुग में सभी साधनारूपी वृक्ष परिश्रम के फलों से फले हुए हैं तप तीर्थ व्रत दान यज्ञ जिसका जी अच्छा लगे वह करे । परन्तु कर्म का फल पानेही पर जाना जायगा वेदों ने तो भर भर के परोस दिया ॥ शास्त्र की विधि से जप योग करते भी मनुष्य का सच्चा काम नहीं होता है । स्वप्न में भी सुख नहीं योग सिद्धि की साधना में रोग वियोग ही धरा है । काम क्रोध ईर्षा लोभ मोह में मिल के ज्ञान वैराग्य को हर लिया संन्यास लेते मन विगड़ा जैसे कच्चे घड़ा से जल टपके बहुत मत व बहुत पंथ हैं । पुराणों में भी जहां तहां झगड़ाही सुन पड़ता है गुरु ने राम भजन बतलाया वह राम राज्य का मार्ग मुझे अच्छा लगता है । तुलसीदास कहते हैं बिना विश्वास व प्रेम के लौट लौट के पच मरै संसार सागर में राम का नाम नौका है जो तरना चाहे वह तरे ॥१७४॥

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो छांड़िये कोटि बैरो सम यद्यपि परम सनेही ॥ तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषण बंधु भरत महतारो । बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रज बनितनि भये जग मंगल कारी ॥ नातो नेह राम के मनियत सुहृद् सुसेब्य जहां लों । अंजन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहों कहां लों ॥ तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो । जासो होय सनेह रामपद येतो मतो हमारो ॥ १७५ ॥

जिसको सीता राम प्रिय न हों । यद्यपि बड़ा प्रेमी हो परन्तु उसे सौ करोड़ शत्रु के समान जानकर छोड़ना चाहिये क्योंकि प्रह्लाद ने पिता को छोड़ दिया बिभीषण ने भाई को भरत ने माता कैकेयी को बालिने गुरू के बचन को गोपियों ने अपने पति को छोड़ दिये जिनके नाम आजतक संसार में मंगल कारी है । जहां तक मित्र हों मान्य हो राम के प्रेम के नाते से माने । वह अंजन क्या जिससे आंखही फूटे । बहुत कहां तक कहूं । तुलसी कहते हैं कि वह सब प्रकार से बड़े हितकारी पूज्य प्राणों से भी प्यारा है जिससे रामके चरणों में प्रेम हो यही मेरी सम्मति है ॥ १७५ ॥

जो पै रहनि राम सों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर शूकर सों जाय जियत जग माहीं ॥ काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबहीके । मनुजदेह सुर साधु सराहत सो सनेह सियपीके ॥ शूर सुजान सुपूत सुलक्षण गणियत गुण गरुआई । बिनु हरिभजन इँदारुण के फल तजत नहीं करुआई ॥ कीरति कुल करतूति

भूलि भलि शील स्वरूप सलोने ॥ तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥ १७६ ॥

जिसे राम से प्रेम नहीं है तो वह मनुष्य गदहा कुत्ता सूकर मान जन्म लेकर संसार में जीता है। काम क्रोध ईर्षा लोभ निद्रा भय क्षुधा प्यास आदि सभी को है। मनुष्य देह की देवता साधु आदि सभी प्रसंशा करते हैं। वह सीता पति के प्रेम से ही शूर बीर सज्जन सुपूत सुलक्षण गुणवान् गुरू गिना जाता है। बिना राम की सेवा इन्द्रायण के फल बराबर है जो कडुवापन को नहीं छोड़ता। यश वंश कर्म ऐश्वर्य्य अच्छा हो और स्वभाव स्वरूप भी सुन्दर हो परन्तु हेतुलसीदास! प्रभु के प्रेम के बिना अलोना साग सलोने के समान है ॥ १७६ ॥

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो। एते अनादर होतहूँ तैं न हातो ॥ जोरे नये नाते नेह फोकट के फीके। देह के दाहक गाहक जो के ॥ अपने अपने को सब चाहत नीको। मूलदुहुं को दयालु दूलह सीको ॥ जीव के जीवन प्राण के प्यारे। सुखहू को सुख राम सो बिसारे ॥ कियो करैगो तोसे खल को भलो। ऐसे सुसाहिब सों तू कुचाल क्यों चलो ॥ तुलसी तेरो भलाई अजहूं बूझै। राड़उ राउत होत फिरिकै जूझै ॥ १७७ ॥

रे नीच! राम के समान प्रभु से प्रेम और सम्बन्ध नहीं किया। जो कि इतने अपमान पर भी तुझे बाहर नहीं किया। तूने व्यर्थ बिना लज्जत के नये नातों में प्रेम लगाया। जो देह को जलानेवाले और प्राण लेनेवाले हैं। ये अपना और अपने का सब भला चाहते हैं और जानकी जी के पति दयालु दोनों के मूल हैं। जीव के जीवन और प्राणों का प्यारा आनन्दहू को आनन्द है। उस रामको भूल गया जो कि तेरे ऐसे दुष्टों का भला किया है

और करेंगे । ऐसे ईश्वर से तू बुरी चाल चला क्यों है तुलसी ! अब भी समझ तो तेरी अच्छाई है कायर भी लौट के लड़े तो बहादुर होता है ॥ १७७ ॥

जो तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागों। परिहरि पायँ काहि अनुरागों ॥ सुखद सुप्रभु तुमसों जग माहीं । श्रवण नमन मन गोचर नाहीं ॥ हौं जड़ जीव ईश रघुराया । तुम मायापति हौं वशमाया ॥ हौं तो कुयाचक स्वामि सुदाता । हौं कुपूत तुमही पितु माता ॥ जौं कहुं कोउ बूझत बातो । तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥१७८॥

हे रामजी ! जो तुम छोड़ दोगे तो भी मैं नहीं छोड़ूंगा, तुम्हारे चरण छोड़ किसमें प्रेम लगाऊंगा । सुख देनेवाले ईश्वर तुमारे समान संसार में कान आंख मनके आगे नहीं जान पड़ता मैं जड़ जीव हूं हे राम ! जो तुम ईश्वर हो तुम माया के स्वामी हो मैं माया के वश हूं मैं तो बुरा चाहनेवाला याचक हूं तुम अच्छे देनेवाले स्वामी हो, मैं कुपुत्र हूं तुम पिता माता हो यदि कोई कहीं पर मुझसे बात भी पूछता तो तुलसी अब तक बिना मोलही बिक गया होता ॥१७८॥

भयहु उदास राम मेरे आश रावरी । आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥ जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिये । प्रेमनेम को निबाहे चातक सराहिये ॥ मीन ते न लाभ लेश पानी पुण्य पीन को । जल बिनु थल कहा मीच बिनु मीनको ॥ बड़ेही की ओट बलि बचि आये छोटे हैं । चलत खरे के संग जहां तहा खोटे हैं ॥ यहि दरबार भलो दाहिनेहु बाम को । मोको शुभदायक भरोसो रामनाम को ॥ कहत नशानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है । जानतकृपानिधान तुलसीके जीकी है ॥ १७९ ॥

रामजी उदासीन हो तो भी भरोसा आपही का है। आरत स्वार्थी ये सब बावली बातें कहा करते हैं। जल देनेवाले मेघ को क्या चाहिये परन्तु प्रीति के नियम का निर्वाह करता है जिससे पपीहा की बड़ाई होती है। अति पवित्र जल को मछली से कोई प्रयोजन नहीं परन्तु मछली को बिना जल के मरण कहा है। इस लिये बलि जाऊं बड़े की आड़ में छोटे बचते चले आये हैं। जहां जहां छोटे हैं उत्तम के ही संग में चल सकते हैं। इस आप की सभा में तो सीधे टेढ़े सभी को अच्छा है मुझे तो मंगल देनेवाले हो रामनाम काही भरोसा है। कहने में तो हानि होगी परन्तु प्रभु! चित्त में तो अच्छाई है। हे दयानिधि तुलसी के मन की हाल को तो जानते ही हो॥ १७६॥

राग बिलावल।

कहां जाउँ कासों कहों को सुनै दीन की। त्रिभुवन तुहीं गति सब संग हीन की॥ जग जगदीश घर घरनि घनेरे है। निराधार को अधार गुण गण तेरे हैं॥ गजराज काज खगराज तजि धायो को। मोसे दोष कोप पोसे तोसे माय जायो को॥ मोसे क्रूर कायर कुपूत कौड़ी आध के। किये बहु मोल तैं करैया गीध श्राध के॥ तुलसी कि तेरेही बनाये बलि बनैगी। प्रभुकी विलम्ब अम्ब दोष दुख जनैगो॥ १८०॥

कहां जाऊं किससे कहूं कौन दीनों की सुनता है। सब प्रकार के संगति से छूटे हुए की गति तीनों लोक में तुम्हीं हो। संसार में संसारी मालिक तो घर घर भरे पड़े हैं परन्तु बिना भरोसा वाले को आधार तुम्हारे ही गुणों की राशि है अर्थात् उसी को कह सुनकर लोग आवागमन से छूट जाते हैं। गजेन्द्र के लिये गरुड़ छोड़ कौन दौड़ा था पापों का घर हमारे ऐसे की रक्षा करनेवाले तुमारे समान कौन माता ने पैदा किया। मुझ से क्रूर कायर कुपूत आधी कौड़ीवाले को हे जटायु को सन्तोष देनेवाले

तुमने अनमोल कर दिये। तुलसी का तुम्हारे ही बनाने से बनेगी बलि जाऊं प्रभु की देर से माता (माया) क्लेश के दोष को ही उत्पन्न करेगी ॥ १८० ॥

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो।

राय दशरथ के तू उथपन थापनो साहिब शरणपाल शबल न दूसरो। तेरो नाम लेतही सुखेत होत ऊसरो वचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं। देखे सुने जाने से जहान जेते बड़े हैं॥ कौने कियो समाधान सनमान शिला को। भृगुनाथ सो ऋषी जितैया कौन लीला॥ को मातु पितु बन्धु हित लोक वेद पाल को। बोल को अचल नत करत निहाल को॥ संगही सनेह वश अधम असाधु को। गोध शबरो को कहो करिहै शराध को॥ निराधार को अधार दीन को दयालु को। मीत कपि केवट रजनिचर भालु को॥ रङ्क निरगुणी नीच जितने निवाजे हैं। महाराज सुजन समाज ते बिराजे हैं॥ सांचो विरदावली न बढ़ि कहि गई है। शीलसिन्धु ढील तुलसी की बार भई है॥१८१॥

बलि जाऊं मुझे एक बार देखकर अपना करलो, हे राजा दशरथ के पुत्र तुम उजड़े हुए को बसाते हो हे प्रभु! शरण आये हुए के रक्षक हो दूसरा बलवान् नहीं है। तुम्हारा नाम लेने से ऊसर भी अच्छा खेत होता है, तुम्हारा कहना व न कहना हमारे चित्तमें गड़ा है। संसार में जितने बड़े हैं मैंने देखा सुना समझा शिला का आदर कर किसने शान्त किया। परशुराम के समान ऋषि के यशको कौन जीत सकता है माता पिता भाई का हितकारी लोक व वेदों का रक्षा करनेवाला कौन है, जो सत्य बोलनेवाला गरीबों को निहाल करनेवाला नीच व दुर्जन को भी प्रेम के बश कौन स्वीकार कर सकता है। कहिये गीध शवरी को कौन सन्तुष्ट

करेगा। निराधार को आधार और गरीबों को दयालु कौन है। बानर राक्षस और भालुओं का मित्र कौन होगा। गरीब मूर्ख नीच तुमने जितने पर कृपा की है प्रभु! वे सज्जनों की सभा में विराजते हैं यह तुम्हारी सच्ची कीर्ति है। बढ़ा कर नहीं कही गई है शीलनिधान! अब तुलसी की बार अधिक देर हो रही है ॥१८१॥

केहू भांति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिये।
मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिये॥ सहस शिला ते अति जड़मति भई है। कासों कहौं कौन गति पाहनहि दई है॥ पदरागयाग चहौं कौशिक ज्यों कियो हैं। कलिमल खल देखि भारी भीत भियो है। करम कपीन बालि बली त्रास त्रस्यो हैं। चाहत अनाथ नाथ तेरो बांह बस्यो हैं॥ महामोह रावण बिभीषण ज्यों हयो है। त्राहि तुलसी त्राहि तिहूँ ताप तयो है ॥१८२॥

हे दयानिधान! किसी भांति मेरी ओर देखिये। मुझे दूसरी जगह नहीं एक तुम्हाराही आधार है। हजारों पत्थर के शिला से भी कठोर (मोटी) बुद्धि हुई है किससे कहूं किसने पत्थर को मुक्ति दिया है। चरणों का प्रेमरूपी यज्ञ चाहता हूं जैसा कि विश्वामित्र ने किया है। कलिके पापरूपी दुष्ट को देख महाभय से डरता हूं। कर्मरूपी बलवान् बालि के त्रास से सुग्रीव के समान पीड़ित हूं। हे अनाथों के नाथ! तुम्हारे हाथ के नीचे बसना चाहता हूं। महा मोहरूपी रावण से बिभीषण के समान ताड़ित हूं तीनों तापों ने तपा रक्खा है हे तुलसी के प्रभु! त्राहि २ ॥१८२॥

नाथ गुणगाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबे की जानौं भगति न भाउ सो॥ करम स्वभाव काल ठाकुर न ठाउ सो। सुधन न सुतन सुमन न सुआउ

सो ॥ याचों जल जाहि कहै अमिय पियाउ सो । कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥ बाप बलिजाउँ आप करिये उपाउ सो । तेरेही निहारे परै हारेहू सुदाउं सो । तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो । तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥ नाम अवलम्ब अम्बु दीन मीन राउ सो । प्रभुसों बनाइ कहौं जीह जरिजाउ सो ॥ सब भांति बिगरी है एक सुबनाउ सो । तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो ॥१८३॥

प्रभु के गुणों की कथा सुन चित्त में उमंग होता है । परन्तु रामजी की प्रसन्नता के लिये वह भक्ति की भावना नहीं जानता काल कर्म स्वभाव देश दैवभी नहीं सुन्दर देह बंधन नहीं है न वह उम्र व मन अच्छा है जिससे जल मांगता वह कहता कि अमृत पिला किससे कहूं किसी से वह दिल नहीं बढ़ता । बलि जाऊं आप पिता हैं वह यत्न कीजिये तुम्हारे देखने सेही हार में भी अच्छा दांव पड़ता है । तुम्हारे ही दिखलाने से देख पड़ता है अलख को दिखादो वह तुम्हारेही समझाने सेजान पड़ता है । उस अज्ञान को बतला दो, मुझ दीन मछली को जल रूप वह नामही आधार है । यदि प्रभु से बनाके कहूं तो वह जबान जल जावे । सब प्रकार से तो बिगाड़ा ही है एक वही अच्छाई है उसे तुलसी ने प्रभुको बतला दिया है ॥१८३॥

राग आसावरी ।

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत हैं । बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करै ऐसो बिरदावलि बलिवेद मनियत है ॥ गीध को कियो शराध भीलनी को खायो फल सोउ साधु सभा भलीभांति भनियत है । रावरे आदरे लोक

वेदहु आदरियत योग ज्ञानहू ते गरू गनियत है ॥ प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलिहू काल महिमा समुझि उर अनियत हैं। तुलसी पराये वश भये अनरस दीनबन्धु द्वारे तेरे हठ ठनियत हैं ॥ १८४ ॥

हे राम जी! प्रीति की रीति आप अच्छी जानते है। वडे की बडाई और छोटे की निचाई को दूर करती है ऐसी तुम्हारी कीर्ति को बलि जाता हूं। जटायु का श्राद्ध किये शबरी का फल खाये वे भी सन्तों के समाज में अच्छे गिने जाते हैं। आप आदर करते तो संसार और वेदों में भी आदर होता है। उसे योग व ज्ञान से भी श्रेष्ठ गिनते हैं। कठिन कलियुग में भी दयालु प्रभु की कृपा की महिमा समझ कर हृदय में लाता हूं। पराधीनता से तुलसी का रस सूख गया इससे हे दीनबन्धु तुम्हारे द्वार पर हठ ठान के पड़ा है ॥१८४॥

रामनाम के जपे जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये जैसे तमनाशिबे को चित्र के तरनि ॥ करम कलाप परिताप पाप साने सब ज्योंसू फूल फूलै तरु फोकट फरनि। दम्भ लोभ लालच उपासना विनाश नीके सुगति साधन खई उदर भरनि ॥ योग न समाधि निरुपाधि न विराग ज्ञान बचन विशेष वेष कबहू न करनि। कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥ मरत महेश उपदेश है कहा करत सुरसरि तीर काशी धरमधरनि। रामनामको प्रताप हर कहैं जपैं आप युग युग जानैं जग वेदहू बरनि ॥ मति रामनामही सों रति रामनामही सो गति रामनामही की विपति हरनि।

रामनामही सों प्रतीति प्रीति राखै कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम अपनी ढरनि ॥ १८५ ॥

रामनाम के जपने से जीव का ताप दूर होता है कलिकाल में दूसरे उपाय हैं वह बिना पैर के हो गये जैसे अँधेरा नष्ट करने को तसबीर के सूर्य । कर्मों के ढेर व परिताप पापों से मिले ऐसे हैं जैसे वृक्ष अच्छे फूल फूले हों परन्तु फलों से व्यर्थ हो । लालच से पाखण्ड व लोभ ने उपासना को अच्छी तरह नष्ट कर दिया जिससे मुक्ति का साधन पेट भरना हो गया । योग की समाधि निर्विघ्न नहीं न तो ज्ञान वैराग्यही है । बिशेष कर वेष बनाते हैं करना तो कहीं नहीं है । करोड़ो छल के कुमार्ग हैं चलन व बात खोटी है तो भी अपने अपने आचरण की बड़ाई करते हैं । धर्म का स्थान काशी जहां गंगाजी का किनारा है मरते समय शिवजी उपदेश करते कहते हैं । वह राम नाम का प्रताप है कि शिवजी आप जपते व कहते हैं और संसार युग २ में जानता है और वेद भी वर्णन करते हैं । कि राम नामही में बुद्धि दो राम नामही में प्रेम करो । राम नामही का शरण दुःख से छुड़ाता है राम नाम में बिश्वास व प्रेम रखने से कभी हेतुलसी! राम अपनी दयालुता से पसीजैंगे ही ॥ १८५ ॥

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरण बिसारि शोच तजि जो हरि तुमकहँ भावत ॥ सकल संग तजि भजत जाहि मुनि जप तप याग बनावत। मो सम मन्द महाखल पामर कौन यतन तेहि पावत ॥ हरि निर्मल मलग्रसित हृदय असमंजस मोहिं जनावत। जेहि सर काक कंक बक शूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥ जाको शरण जाय कोविद दारुण त्रय ताप बुझावत । तहूं गये मद मोह लोभ अति सरगहु मिटत नसावत ॥ भवसरिता कहँ नाव

संत यह कहि औरनि समुझावत । हौं तिन सों हरि परम वैर करि तुमसों भलो मनावत ॥ नाहिंन और ठौर मो कहँ ताते हठि नातो लावत । राखु शरण उदारचूड़ामणि तुलसिदास गुण गावत ॥ १८६ ॥

हेरामजी! तुम को अच्छा लगता वह धर्म बिना सोचे छोड़कर सेवक कहलाते मुझे लज्जा नहीं आती । सब प्रकार की संगतिको छोड़कर मुनि जप तप यज्ञ को सुधारते जिसकी सेवा करते हैं मेरे समान नीच अति दुष्ट पशु किस उपाय से उसे पा सकता है । रामजी तो शुद्ध स्वरूप हैं यह मन मलीनता से ग्रसित है । मुझे दुबिधा जनाती है कि जिस तालाब में कौवे चील्हें बगुले और सूअर हों वहां क्या हंम आ सकते हैं । जिसकी शरण जाके विद्वान् कठिन तीनों ताप बुझाते हैं वहां भी जाके ईर्षा मोह लोभ की अधिकता स्वर्ग में भी सोते भाव नहीं छूटता है । संसार रूपी नदी को सज्जन नौका है यह कह कर दूसरों को तो समझाता हूं । परन्तु हेराम ! मैं उन से बहुत बैर कर के तुम से अपनी अच्छाई मनाता हूं । मुझे दूसरा स्थानही नहीं इसी से हठकर नाता लगाता हूं दानियों में चूड़ामणि ! तुम्हारा गुण गाता है तुलसीदास को शरण में रखिये ॥ १८६ ॥

कौन यतन विनती करिये ।

निज आचरण विचारि हारि हिय मानो जानि डारिये ॥ जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये । जाते विपतिजाल निशि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिये ॥ जानतहूं मन कर्म बचन परहित कीन्हे तरिये । सो विपरीत देखि पर सुख बिनु कारणही जरिये ॥ श्रुति पुराण सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये । निज अभिमान मोह ईर्षा वश तिन्हहिं न आदरिये ॥ सन्तत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते

भवनिधि परिये। कहो अब नाथ कौन बल ते संसार शोक हरिये॥ जब कब निज करुणास्वभाव ते द्रवहु सो निस्तरिये। तुलसिदास विश्वास आन नहिं कत पचिपचि मरिये॥१८७॥

अपने चाल चलन को सोच समझ के मन में हार मानकर डरता हूं कि किस उपाय से विनती करूं। हे राम! जिस साधना से सेवक जान दया करते हो। उसे तो हठ से छोड़ता हूं व जिससे क्लेशों के फांस में रात दिन दुःखी होकर उस मार्ग में चलता हूं जानता हूं कि मन बचन कर्म से पराया भला करने से पार होऊंगा। परन्तु उससे उलटा पराया सुख देख बिना कारण जलता हूं। वेद पुराण सभी की यह राय है कि सत्संग को दृढ़ होकर पकड़िये परन्तु अपने अभिमान मोह ईर्षा के बश में होकर उनका आदर नहीं करता हूं। सदैव मुझे वही प्रिय है जिससे सदा मुझे वही प्रिय है जिससे नित्यही संसार सागर में पड़ा रहूं हे प्रभु! कहिये अब किस बल से संसारी शोक का नाश होगा जब कभी अपनी दया के स्वभाव से पसीजोगे तभी पार होऊंगा तुलसीदास का दूसरा विश्वास नहीं है क्योंकि पक पक कर के मरता हूं॥१८७॥

ताहि ते आयों शरण सबेरे।

ज्ञान विराग भक्ति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे॥ लोभ मोह मद क्रोध बोधरिपु फिरत रैनि दिन घेरे। तिनहिं मिले मन भयो कुपथरत फिरे तिहारेहि फेरे॥ दोष निलय यह विषय शोकप्रद कहत संत श्रुति टेरे। जानतहूं अनुराग तहां अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥ विष पियूष सम करहु अग्नि हिम तारिसकहु बिनु बेरे। तुम सम ईश कृपालु परमहित पुनि न पाइहौं हेरे॥ यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे। तुलसिदास यहि बिपति बागुरो तुमसों बनिहि निबेरे॥१८८॥

इसी से पहलेही शरण आया हूं कि वैराग्य भक्ति की साधना तो हे प्रभु ! कुछ मेरे स्वप्न में भी नहीं है। लोभ मोह ईर्षा क्रोध अज्ञानही रातादिन घेरे फिरते हैं व उन्हीं में मिलके मन कुमार्ग में लग गया है। अब तुम्हारेही लौटाने से फिरेगा. ये विषय दोषों के घर व दुःख देनेवाले हैं ऐसा सन्त व वेद पुकार के कहते हैं। जानता भी हूं परन्तु वही बड़ी प्रीति है वह तुम्हारे फेरने से है। विषको अमृत के समान और अग्नि को शीतल करते हो और बिना नावके तार सकते हो। तुम्हारे समान दयालु ईश्वर अति हितकारी ढूंढ़ने पर न पाऊंगा। यह चित्त में जान सबको छोड़ हे रामजी। तुमारे भरोसे पर रहता हूं। तुलसीदास के इस बंधन का दुःख तुमहीं से छुड़ाते बनेगा ॥१८८॥

मैं तू अब जान्यो संसार।

बांधि न सकहि मोहिं हरि के बल प्रकट कपट आगार॥ देख-तही कमनीय कछु नाहिन पुनि पुनि किये बिचार। ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुं न निकरत सार॥ तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार। महामोह मृगजल सरिता महं बोर्‌यो हौं बारहिं बार॥ सुनु खल छल बल कोटि किये वश होहिं न भक्त उदार। सहित सहाय तहां बसि अब जेहि हृदय न नन्दकुमार॥ तासों करहु चातुरी जो नहिं जाने मर्म तुम्हार। सो परि मरै डरै रजु अहिते बूझै नहिं व्यवहार॥ निजहित सुनु शठ हठ न करहि जो चहहि कुशल परिवार। तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि भजहि जहां मदमार॥ १८९॥

हे संसार ! मैने तुझे अब जाना कि तू छल कपट का घर है परन्तु श्री रामजी के बल से मुझे बांध नहीं सकोगे। देखने ही में मनोहर है बारम्बार बिचार करने से कुछ भी नहीं है। जैसे केले

के वृक्ष में भीतर देखने से कभी सार (गूदा) नहीं निकलता तेरे लिये मैंने अनेकों जन्म लेकर घूमे परन्तु अन्त नहीं पाये। अत्यन्त मोहरूपी मृग जल की नदी में बारम्बार मुझे डुबाया इस लिये रे दुष्ट! सुन करोड़ों छल बल करने से भी राम के भक्त तेरे वश में न होंगे। इससे सेना सहित वहां अब रह जिसके हृदय में भगवान् कृष्ण न हों। और उसीसे चतुराई करो जो तुम्हारा भेद न जानता हो वही रस्सी के सर्प से डर कर गिर के मरेगा जो उस सम्बन्ध को नहीं जानता। मूर्ख! सुन जो अपना भला और अपने परिवार का कुशल चाहे तो हठ न कर। तुलसीदास के स्वामी राम के सेवकों को छोड़ जहां इर्षा और रोग हों वहां रह॥ १८९॥

राग गौरी।

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे। नहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे॥ बांस पुराना साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे। हमहिं दिहलकरि कुटिल करमचँद मंद गोल बिनु डोलारे॥ विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पावु बटोरा रे। मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे॥ कांट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठांव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूर तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे॥ मारग अगम संग नहि संबल नांव गांव कर भूला रे। तुलसिदासभव त्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे॥ १९०॥

अरे भाई ! राम कहते चल राम कहते मर राम कहते जा । नहीं तो संसारी बेगार में पड़ेगा तो छूटने में कठिनता होगी । पुराने बांस से जिसमें सभी साज काठका है कमजोर तिकोना खटोला है नीच कर्मचन्द ने कुटिलता से बिना माल लिये डोला हमें दिया है । इन्द्रिय कहार हैं कामना की नशा में मस्त पैर सीधा कर नहीं चलते हैं । नीच ऊंच में अभिड़ दुरेरा पाके खींची खींचा से दुःख होता है। कुमार्ग (व्यसन) में काटे (हानि) लिप टौना (लाभ) में पड़े जगह २ काम क्रोधादि विकारों के क्लेश होते हैं । जैसे जैसे चलते वैसेही वैसे आत्मा का स्थान दूर हो जाता मिलने का पता नहीं । दुर्गम (विषय) मार्ग में साथ व खर्च (पुण्य व नाम भी नहीं । नगर का नाम भूल गया अब हे राम ! तुलसीदास के संसारी क्लेश को दूर कर सन्मुख हूजिये ॥१६०॥

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह । ताते भवभाजन भयो सुनु अजहुँ सिखावन येह ॥ ज्यों मुख मुकुर विलोकिये अरु चित न रहे अनुहारि । त्यों सेवतहु न आपने ये मातु पिता सुत नारि ॥ दे दै सुमन तिल बासिकै अरु परिहरि रस लेत । स्वारथहित भूतल भरे मन मेचक तनु सेत ॥ करि बीत्यो अब करत हौं करिबे हित मीत अपारा । कबहुं न कोउ रघुबीर सों नेह निबाहनहारा ॥ जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि । ताते कछु समुझत नहीं कहा लाभ कह हानि ॥ सांचो जान्यो झूठ कै झूठे कहँ सांचो जानि । को न गयो को न जात है को न जैहै करि हित हानि ॥ वेद कह्यो बुध कहत हैं अरु हौंहुँ कहतहौं टेरि । तुलसी

प्रभु सांचो हितू तू हियेकी आंखिन हेरि ॥ १६१ ॥

प्रेम शील राम से तूने सनेह नहीं किया इसी से संसार का पात्र हुआ। अब भी यह शिक्षा सुन कि जैसे दर्पण में मुख देखिये और प्रतिबिम्ब अनुहारि झूठा मालूम होता है वह चित्त में नहीं रहता है। वैसेही यह माता पिता पुत्र स्त्री के व्यवहार होते भी आत्मा के नहीं है। जैसे फूल दे दे कर तिलों को सुगान्धित बना के फिर खली को छोड़कर केवल तेल लेते हैं। ऐसेही स्वार्थी को चाहनेवाले पृथ्वी में भरे हैं कि मन काला और देह सफेद। भलाई के लिये बहुत मित्र कर चुका व करता हूं और करूंगा परन्तु राम के समान प्रेम को निबाहनेवाला कभी कोई नहीं। जिसका संबंध सब सत्य है उससे पहिचान न किये इसी से कुछ समझही नहीं कि क्या लाभ है क्या हानि है। सत्य को तो झूठ जान और झूठ को सत्य जान अपने हित की बात खोकर कौन नहीं इस जग से गया। कौन नहीं जाता है कौन नहीं जायगा। वेद पंडित कहते और मैं भी पुकार के कहता हूं हे तुलसी रामही सचे हितकारी हैं तू हृदय के आंखों से ढूंढ़ ॥ १६१ ॥

एक सनेही सांचिलो केवल कोशलपालु।

प्रेमकनौड़ो राम सों नहि दूसरो दयालु ॥ तनु साथी सब स्वारथी सुर व्यवहार सुजान। आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान ॥ नाद निठुर समचर शिखी सलिल सनेह न शूर। शशि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपथ कूर ॥ जाको मन जासो बंध्यो ताको सुखदायक सोइ। सरल शील साहब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥ सुनि सेवा सहि को करै परिहरै को दूषण देखि। केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग बिशेखि ॥ खग शवरी

पितु मातु ज्यों माने कपि को किये मीत । केवट भेंट्यो भरत ज्यों ऐसो को कहु पतित पुनीत ॥ देइ अभागहि भाग को राखे शरण सभीत ॥ वेद विदित विरदावली कवि कोविद गावत गीत ॥ कैसेउ पामर पातकी जेहि लई नाम की ओट । गांठी बांध्यो राम सो परख्यो न फेरि खर खोट ॥ मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज । सो तुलसी कियो आपनो रघुवीर गरीब निवाज ॥१६२॥

एक सच्चे प्रेमी केवल अवधराज रामजी हैं । राम के समान प्रेम का ऋषी और दयालु दूसरा कोई नहीं है । देह के साथी सभी स्वार्थी हैं देवता भी व्यवहार (लेन देन) में चतुर हैं आरत और अधम तथा अनाथों का हितकरनेवाला राम के समान कौन है । शब्द निर्दयी है वैसेही अग्नि और जल भी प्रीति करनेमें चोर नहीं हैं । रोगी चन्द्रमा और सूर्य तथा बड़े प्रेम पथ में कठोर ही हैं जिसका मन जिसमें बंध गया उसको वही सुख देनेवाला है । परन्तु सदा सीधा स्वभाव प्रभु राम के समान कोई नहीं । क्योंकि सुनकेही कौन सेवा को सच्च मानेगा और देखकर भी दोषों को कौन छोड़ देगा । किसके दरबार में रोज गरीबों का आदर और प्रेम अधिक है । पक्षी भिलनी को माता पिता के समान किसने माना बंदरों को मित्र किसने किया । केवट को भरत के समान भेंटे कहिये ऐसा कौन पतितपावन है । अभागी को कौन भाग देगा डरे हुए को किसने शरण रखा है । ये सभी कीर्ति वेदों में प्रकट है और कवि पण्डित सभी गान करते हैं । कैसे हूं अधम पापी जिसने नाम का आड़ लिया उसे भी राम ने गांठी बांधा अर्थात् स्वीकार किया फिर के नीच ऊंच नहीं देखा । कालि में भी मुझ मन मलीन को जिस के किये कर्म को

सुनतेही पापी हो जाना होता है उस तुलसी को भी अपनाया ऐसे गरीब निवाज राम हैं ॥ १६२ ॥

जो पै जानकीनाथ सों नातो नेह न नीच। स्वारथ परमारथ कहां कलि कुटिल बिगोयो बीच॥ धर्म वर्ण आश्रमनि के पैयत पोथिहि पुराण। करतब विनु वेष देखिये ज्यों शरोर बिनु प्राण॥ वेद विदित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि। राम प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता विनु वारि॥ नाना पथ निर्वाण के नाना विधान बहु भांति। तुलसी तू मेरे कहे जपु राम नाम दिन राति॥ १६३॥

अरे नीच। जानकीनाथ रामजी से जो प्रेम का नाता नहीं तो स्वार्थ परमार्थ कैसे होगा, कपटी कलि ने तो बीच ही में बिगाड़ दिया वर्णाश्रमों के धर्म पुस्तक पुराणों ही में मिलते हैं परन्तु बिना कर्म किये वेषही दिखाई पड़ते हैं जैसे बिना प्राण के देह। वेदों से कही हुई सर्व साधनायें चारों फल देनेवाली सुनाई पड़ती है परन्तु रामजी की प्रीति बिना उन्हें ऐसा जानना चाहिये जैसे तालाब नदी बिना जल के सूखे हों। मुक्ति के अनेक मार्ग अनेक विधान से बहुत भांति के हैं हे तुलसी! तुम मेरे कहने से रात दिन नाम को जपो॥ १६३॥

अजहुं आपने राम के करतब समुझत हित होय। कहँ तु कहँ कोशलधनी तोकों कहा कहत सब कोय॥ रीझि निवाज्यो कबहिं तू कब खीझि दई तोहिं गारि। दर्पण बदन निहारिकै सुविचार मान हिय हारि॥ बिगरी जन्म अनेक को सुधरत पल लगै न साधु। पाहि कृपानिधि

प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ॥ बालमीकि केवट कथा कपि भील भालु सनमान । सुनि सन्मुख जो न राम सों तिहि को उपदेशहि ज्ञान ॥ का सेवा सुग्रीव की का प्रीति निरबाहु । जासु बन्धु बध्यो व्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ॥ भजन विभीषण को कहा फल कहा दियो रघुराज । राम गरीबनिवाज के बड़ी बांह बोल की लाज ॥ जपहि नाम रघुनाथ को चर्चा दूसरी न चालु ॥ सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥ सजल नयन गदगद गिरा गहवर मन पुलक शरीर । गावत गुणगण राम के केहिकी न मिटी भव भीर ॥ प्रभु कृतज्ञ सर्वज्ञ हैं परिहरु पाछिलो गलानि । तुलसी तोसों राम सों कछु नइ न जान पहिचानि ॥ १६४ ॥

अब भी अपने राम के कर्तव्य को समझने से भलाई होगी कहां तो तू और कहां राम । तुझे सब लोग क्या कहते हैं । कब तू लट्टू हो भलाई चाही और तुझे से नाराज हो कब उन्होंने गाली दी । दर्पण से मुख देख के अच्छे बिचार से हृदय में हार मान । अनेक जन्मों की खराबी सुधरने में आधा पलक भी न लगेगा । हेकृपानिधान ! रक्षा करो ऐसा प्रेम के साथ कहने से रामजी सन्मुख न होवें तो कौन ज्ञान का उपदेश देवे । सुग्रीव ने क्या सेवा किया और प्रीति की रीति क्या निबाही जिसके भाई को बहेलिया के समान होकर मार डाले यह सुनतेही किस को अच्छा नहीं लगता । विभीषणही की सेवा क्या थी रामजी ने फल क्या दिया, दीन दयालु रामको तो बांह और बचन की बड़ी लज्जा है । इससे राम का नाम जपो दूसरी बात मत उठावो । प्रभु सुख देनेवाले सुन्दर मुख सुन्दर बुद्धि समर्थ दयालु और गरीबों के रक्षक हैं । आंखों में आंसू भर वाणी से गद्गद हो मन को

दृढ़ करके पुलकित देह से रामजी के गुणों को कहते हुए जिसके जन्म मरण की भीड़ नहीं दूर हुई प्रभुजी आप उपकारी और सर्वज्ञ हैं पिछली ग्लानि छोड़दो हे तुलसी ! तुम से रामजी से कुछ नई जानकारी (पहिचान) नहीं है ॥ १९४ ॥

जो अनुराग न रामसनेहीसों । तो लह्यो लाहु कहा नर देहीसों ॥ जो तनु धरि परिहरि सब सुख भय सुमति रामअनुरागी । सो तनु पाइ अघाइ किये अघ अवगुण अधम अभागी ॥ ज्ञान विराग योग जप तप मख जग मुद मग नहिं थोरे । राम प्रेम बिनु प्रेम जाय जैसे मृगजल जलधि हिलोरे ॥ लोक विलोकि पुराण वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी । प्रीति प्रतीति रामपदपंकज सकल सुमङ्गल खानी ॥ अजहुँ जानि जियहारि मानि हिय होय पलक महँ नीको । सुमिरुसनेहसहित हित रामहिं मानुमतो तुलसी को ॥ १९५ ॥

जो प्रीति करनेवाले रामजी से प्रेम नहीं तो मनुष्य के जन्म से क्या लाभ पाया । जिस देह को लेकर सब प्रकार के विषय सुख भय आदि को छोड़ सुबुद्धि जन रामजी में प्रीति करते वह देह पाके खूब कपट के पाप किये रे अवगुणी नीच तू अभागी है ज्ञान वैराग्य योग जप तप यज्ञ संसार में सुख के मार्ग बहुत हैं, परन्तु बिना राम में प्रेम किये वे सब वृथा हैं । जैसे मृग जल के समुद्र में हिलोरें संसार को देख पुराण व वेदों को सुन के समझ गुरु व ज्ञानियों से पूछ श्री रामजी के चरण कमलों में प्रीति विश्वास के साथ सब मंगलों की खानि है । अबभी मनमें समझ हृदय से हार मान पल भरमे अच्छाई होगी । प्रेम के साथ हित कारी राम का ध्यान कर तुलसी की राय को मान ले ॥ १९५ ॥

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजिये कृपा अपनी

नाईं ॥ परमारथ सुरपुर साधन सब स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपो सुचाल निज कठिन कुचाल चलाई ॥
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव विषाद अधि-
काई । रुचि भावतो भभरि भागहि समुहाहि अमित अनभाई॥
आधि मगन मन व्याधि बिकल तनु बचन मलोन झुठाई ।
येतेहु पर तुमसों तुलसोको प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ १९६ ॥

मैं बलि जाऊं हे स्वामी ! राम अपने समान कृपा करिये । मोक्ष व स्वर्ग के साधन सब सुख देनेवाले स्वार्थ की सब भलाई का कलियुग ने अपने क्रोध से कठिन कुमार्ग चला कर अच्छी चालें नष्ट कर दिया है । जहां जहां मन भलाई देखता है वहीं रोज नये दुःख बढ़ते हैं । मन रुचि की चीजें तो सामर्थ्य भर भागती हैं और अरुचिकी चीजें बहुत सी सामने आती हैं । मन मानसी पीड़ा में डूबा है देह रोगों से व्याकुल है और झुठाई से बचन साफ नहीं इतने पर भी हे प्रभु ! तुमसे तुलसी का सब प्रेम व सम्बन्ध है ॥१९६॥

काहे को फिरत मन करत बहु यतन मिटै न दुख विमुख रघुकुलवीर । कीजै जो कोटि उपाय त्रिविध ताप न जाय कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर ॥ सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखु बिचारि मिलै न मथत बारि घृत बिनु क्षीर । समुझि तजहि भ्रम भजहि पद युगम सेवत सुगम गुण गहन गँभीर ॥ आगम निगम ग्रन्थ ऋषि मुनि सुर सन्त सबही को एक मत सुन मति धीर । तुलसीदास प्रभु बिनु प्यास मरै पशु यद्यपि है निकट सुरसरि तीर ॥ १९७ ॥

हे मन ! क्योंकर चक्कर खाता बहुत उपाय करता भी है

राम जी से पीठ दिये दुःख नहीं छूटेंगे। जो करोड़ों यत्न करेगा तो भी तीनों ताप न मिटैगी। जिसे मुनीश्वर शुकदेव ने हाथ उठाके कह रखा है हर समय की आदत छोड़ तुम्हीं हाथ उठाके दखलो। बिना पानी के दूध मथने से घी नहीं मिल सकता है। समझ के भ्रम छोड़ कर श्री रामजी के चरणों को भज सेवा से सुगम होंगे क्योंकि वे सब गुणों से भरे अथाह हैं। बेद शास्त्र ऋषि मुनि देवता सन्त सभी की यही एक राय है। धीर बुद्धि से सुन हे तुलसीदास! बिना मालिक पशु प्यासाही मरता है यद्यपि पासही में गंगा का किनारा हो तौभी॥ १६७॥

नाहिन चरणरति ताहि ते सहौं विपति कहत श्रुति सकल मुनि मतिधीर। बसै जो शशि उछङ्ग सुधास्वादित कुरंग ताहि क्यों भ्रम निरखि रबिकर नीर॥ सुनियत नाना पुराण मिटत नहीं अज्ञान पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर। बूझत बिनहिं पास सेमरसुमन आस करत चरत तेइ फल बिनु हीर॥ कछु न साधन सिधि जानों न निगम विधि नहि जप तप वश मन न समीर। तुलसिदास भरोस परमकरुणाकोस प्रभु हरिहैं विषय भव भीर॥ १६८॥

राम के चरणों में प्रेम नहीं इसीसे क्लेश सहता हूं वेद पंडित मुनि आदि कहते हैं कि जो मृग चन्द्रमा की गोद मे अमृत की स्वाद लेता है। उसे सूर्य किरण देख कर क्यों भ्रम होगा अज्ञान नहीं मिटता। जैसे तोता पक्षी राम २ पढ़ता समझता नहीं विना समझ में बध कर सेमर के फूलों की इच्छा करता और उसके फलों को विना गूदे के काट डालता, न तो कुछ साधना सिद्धि जानता न वेद की विधि न जप तप न मनो निग्रह न प्राणायाम तुलसीदास का भरोसा अति कृपा के

मन्दिर राम का है प्रभुही विषम जन्म मरण के समूह को दूर करेंगे ॥ १६८ ॥

मन पछितैहै अवसर बीते। दुर्लभ देह पाय हरिपद भजु करम बचन अरु हीते ॥ सहसबाहु दशबदन आदि नृप बचे न काल बली ते। हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ॥ सुत बनितादि जानि स्वारथरत करु न नेह सबही ते। अन्तहु तोहिं तजैंगे पामर तु न तजहि अबही ते ॥ अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुराशा जीते। बुझै न काम अग्नि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घीते ॥ १६६ ॥

हे मन! समय बीत जाने पर पछताओगे। दुर्लभ देह पाकर मन बचन कर्म से भगवान के चरणों को भज। सहस्नार्जुन रावण आदि राजा भी बलवान काल से नहीं बचे। हम हम कर द्रव्य घर और समाज के अन्त में खाली उठे चले गये। पुत्र स्त्री आदि को स्वार्थ में लगे जान सभी से प्रीति न कर अन्त में तुझे छोड़ देंगे। रे नीच! तू क्यों न अभी से छोड़ दे और अब प्रभु में प्रेमकर रे मूर्ख! जाग चित्त से दुराशा छोड़। हे तुलसी! कभी भी विषय भोग रूपी बहुत स्त्री से काम रूपी आग नहीं बुझती ॥ १६६ ॥

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो। तजि हरिचरण सरोज सुधारस रविकर जल लय लायो ॥ त्रियुग देव नर असुर अपर जग योनि सकल भ्रमि आयो। गृह बनिता सुत बन्धु भये बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥ जाते निरय निकाय निरन्तर सोउ न तोहिं सिखायो। तब हित होय कटहिं भवबन्धन सो मगु तोहिं न बतायो

अजहुँ विषय कहं यतन करत यद्यपि बहु बिधि डहकायो। पावककाम भोग घृतते शठ कैसे परत बुझायो॥ विषय हीन दुख मिले विपति अति सुखसपनेहु नहिं पायो। उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो॥ त्तण त्तण त्तीण होत जीवन दुर्लभ तन वृथा गंवायो। तुलसिदास हरि भजहि आश तजि काल उरग जग खायो॥ २००॥

रे मूर्ख मन! क्यों दौड़ता फिरता है रामजी के चरण कमल का अमृत के समान रस छोड़ कर सूर्य के किरण के जल में मन लगाता है। पशु पत्ती देवता मनुष्य असुर दूसरी संसारी योनि में भी घूम आया गृह स्त्री पुत्र भाई माता पिता बहुत हुए जिन्होंने कि उत्पन्न किया और जिससे सदैव नरक के ढेर हों वही उन्होंने तुझे सिखलाया। जिसमें तुम्हारी भलाई हो संसार के बन्धन छूटें वह मार्ग तुझे नहीं बतलाई अभी विषपीने का उपाय करता है बहुत तरह से पीड़ित भी हो चुका। रे दुष्ट! भोगरूपी घी से कामरूपी अग्नि क्योंकर बुझेगी। बिना विषय के भी दुख मिले बड़ी विपत्ति मिली सुख तो स्वप्न में भी नहीं पाया दोनों प्रकार से दुःख ही मिलने से अगिया बैताल द्रव्य को तो मुनियों ने दुःख का रूप ही कहा है और त्तण त्तण में आयु घटती जाती है इसमें दुर्लभ देह का वृथाही खोना है। हे तुलसीदास! काल रूपी सर्प संसार को ग्रसित किये है आशा छोड़कर भगवान के चरण को भजो॥२००॥

तांबे सों पोठि मनहुं तनु पायो। नीच मीच जानत न शशि पर ईश निपट बिसरायो॥ अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत के न इनहिं अपनायो। काके भये गये सँग काके सब सनेह छल धायो॥ जिन्ह भूपनि जग जीति

बांधि यम अपनी बांह फंसाये। तेऊ काल कलेऊ कीन्हें तू गिनती कब गाये ॥ देखु विचारि सार का सांचो कहा निगम भज गाये। भजहि न अजहुं समुझि तुलसी तेहि जेहि महेश मन लाया ॥ २०१ ॥

मानों तांबे के समान पीठवाली मढ़ी देह पाई है। रे नीच! मौत को जानता नहीं सिर पर है ईश्वर को बिल्कुल भुला दिया है। भूमि स्त्री द्रव्य घर मित्र पुत्र इन्हें किसने नहीं अपनाया परन्तु यह किसके हुए और किस के संग गये। सभी छल की प्रीति में मढ़े हैं। जिन राजाओं ने संसार को जीत यमराज को बांध अपने हाथ के नीचे रखा उन्हें भी काल ने खा लिया। तू कब गिनती में आवेगा। सोच के देख कौन तत्व सच्चा है और वेदों ने स्वयं क्या कहा है ॥ २०१ ॥

लाभ कहा मानुष तनु पाये।

काय वचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराये ॥ जौं सुख सुरपुर नरक गेह वन आवत बिनहिं बुलाये। तेहि सुखकहँ बहु यतन करत मन समुझत नहिं समुझाये ॥ परदारा परद्रोह मोहवश किये मूढ़ मन भाये। गर्भवास दुखराशि यातना तीव्र विपति बिसराये ॥ भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जाये। सुरदुर्लभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गंवाये ॥ गई न निज पर बुद्धि शुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये। तुलसिदास यहि अवसर बीते का पुनिके पछिताये ॥ २०२ ॥

मनुष्य की देह से क्या लाभ जब कि मन वचन कर्म से कभी स्वप्न में भी पराये कार्य को न किये। जो सुख स्वर्ग नरक घर बनमें बिना बुलाये आते हैं उन सुख के लिये बाढ़

उपाय करता है रे मन! समझाने से नहीं समझता मूर्ख! भ्रमके वश हो पराई स्त्री में दूरसे द्रोह कर मनमाना किया क्या गर्भ वास के दुःखों की राशि घोर नरक की पीड़ा भूल गई। भय निद्रा मैथुन भोजन ये संसार में सबको बराबर होते हैं, देवताओं को भी दुर्लभ देह पाकर राम का नहीं भजन किया अहंकार में खो दिया अपनी पराई बुद्धि को न छोड़ा पवित्र हो राम में मन लगाके नहीं रहा है हे तुलसीदास! यह समय बीत जाने पर पीछे पछताने से क्या हो सकेगा॥ २०२॥

काज कहा नरतनु धरि सारेउ। पर उपकार सार श्रुति को सो धोकेउ मैं न बिचारेउ॥ द्वैतमूल भय शूल शोक फल भवतरु टरै न टारेउ। राम भजन तीक्ष्ण कुठार लै सो नहिं काटि निवारेउ॥ संशय सिन्धु नाम बोहित भजि निज आत्मा न तारेउ। जन्म अनेक विवेक दीन बहुयोनि भ्रमत नहिं हारेउ॥ देखि आन की सहज सम्पदा द्वेषअनल मन जारेउ। शम दम दया दीनपालन शीतलहिय हरि न सँभारेउ॥ प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति में मन क्रम बचन बिसारेउ। तुलसिदास यहि आशचरण राखिहि जेहि गीध उधारेउ॥ २०३॥

मनुष्य का तन पाकर क्या काम किये, वेद का कहना है कि पराया उपकार करो वह भूल में भी नहीं विचार किया। द्वन्द्व की जड़ भय पीड़ा और शोकही है फल जिसका ऐसा संसार वृक्ष जो कि हटाये नहीं हटता। उसको रामकी सेवा रूपी पैनी कुल्हाड़ी ले उसे काट के दूर नहीं किया। सन्देह रूपी समुद्र का नाम नौका है उसे भजन करके अपनी आत्मा को पार नहीं किया। अनेक जन्मों तक बहुत योनियों में घूमते हुए हार नहीं

माना। दूसरे की थोड़ी सम्पत्ति देख ईर्षा की आग्नि में मन को जला दिया। शम दम दया और दीनों के पालन से शीतल मन में भगवान को स्थिर नहीं किया। स्वामी गुरु पिता मित्र ऐसे राम को मन कर्म बचन से भूल गया, तुलसीदास को यही आशा है कि जिन्हों ने गिद्धका उद्धार किया है ॥२०३॥

श्रीहरि गुरु पदकमल भजहु मन तजि अभिमान। जेहि सेवत पाइय हरि सुखनिधान भगवान ॥ परिवार प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि। यद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरि पूरि ॥ दुइज द्वैत मति छांड़ि चरहि महिमण्डल धीर। विगत मोह माया मद हृदय सदा रघुबीर ॥ तजि त्रिगुण पर परम पुरुष श्रीरमण मुकुन्द। गुण स्वभाव त्यागे बिनु दुर्लभ परमानन्द ॥ चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन चित अहंकार। बिमल विचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥ पांचइ पांच परस रस शब्द गन्ध अरु रूप। इन्ह कर कहा न कीजिये बहुरि परब भवकूप ॥ छठि षटबर्ग करिय जय जनकसुतापति लागि। रघुपतिकृपा वारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ॥ सातें सप्तधातु निर्मित तनु करिय बिचार। तेहि तनु केर एक फल कीजिय पर उपकार। आठइँ आठ प्रकृति पर निर्विकार श्रीराम। केहि प्रकार पाइय हरि हृदय बसहिं बहु काम ॥ नवमी नवद्वार पर वसि जेहि न आपु भल कीन्ह। ते नर योनि अनेक भ्रमत दारुण दुख दीन्ह ॥ दशइँ दशहुँ कर संयम जो न करिय जिय जानि। साधन बृथा होइँ सब मिलहिं न शारंगपानि ॥ एकादशी एक मन बशकै सेवहु जाइ। सोइ ब्रतकर फल पावै आवा-

गमन नशाइ ॥ द्वादशि दान देहु अस अभय होय त्रैलोक। परहित निरत सो पारन बहुरि न व्यापै शोक ॥ तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त। मन क्रम बचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनन्त ॥ चौदिश चौदह भुवन अचर रूप गोपाल। भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ॥ पूनो प्रेम भक्तिरस हरिरस जानहिं दास ॥ त्रिविध शूल होलिया गालिय खेलिय अब फागु। जो जिय चहसि परम सुख तौ यहि मारगलागु ॥ श्रुति पुराण बुध सम्मत चांचरि चरित मुरारि। करि विचार भवतरिय परिय न कबहुं यम धारि॥ संशयशमन दमनदुख सुखनिधान हरि एक। साधुकृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाय अनेक ॥ भवसागर कहं नाव शुद्ध सन्तन के चरण। तुलसीदास प्रयासु बिनु मिलहिं राम दुख हरण ॥ २०४ ॥

रे मन! अभिमान छोड़ भगवान गुरु के चरण कमल की सेवा कर जिसकी सेवा करने से सुख के आधार भगवान परमेश्वर को पावोगे। जो तिथि पहले बिना प्रेम रामको मिलना बड़ी दूर है। यद्यपि पासही अपने हृदय में सर्वत्र पूर्ण हो भरे हैं तिथि २ बुद्धि से द्वन्द्व को छोड़ धैर्य से टहले बिना पृथिवी में बिचरिये माया मोह का मद छोड़दें रामजी सदा हृदय में हैं। तिथि ३ गुणों से परे पुरुषोत्तम लक्ष्मी पति भगवान् जोकि परम आनन्दरूप हैं बिना गुण स्वभाव छोड़े दुर्लभ हैं। तिथि ४ए चारों बुद्धि मन चित्त अहंकार को दूर करो। शुद्ध ज्ञान मुक्त रूप उत्तम आत्मानन्द स्वाभाविक है। ५ तिथि पांचो विषय स्पर्श रस शब्द गन्ध व रूप इनका कहना न कीजिये नहीं तो फिर संसार कूप में पड़ोगे। तिथि ६ राम में मन लगा कर कामादि छओं को जीतो बिना रामकी कृपारूपी जल के लोभ रूपी अग्नि नहीं बुझती। तिथि ७ सात धातुके बने हुए

शरीर में विचार करिये उस देह का एक ही फल है कि पराया उपकार करिये। तिथि ८ प्रकृति से न्यारे निर्विकार राम हैं उन भगवान को कैसे पाऊँ क्योंकि हृदय में अनेक इच्छायें रहती हैं। तिथि ९ द्वारके पुरमें रहके जिन्होंने अपना भला न किया वे मनुष्य बहुत योनियों में घूमते कठिन दुःख दिया करते हैं। १० दस इन्द्रियों का दमन जिसने चित्तमें सोच के न किया उसके सब साधन व्यर्थ होते हैं और भगवान् नहीं मिलते। ११ एक मन को स्वाधीन बनाने का नियम करो उसी व्रत का फल मिलेगा आना जाना दूर होगा। १२ ऐसा दान दो कि तीनों लोक निर्भय हो और बुराई भलाई में लगे वही पारण है फिर कष्ट नहीं मिलैंगे। १३ तीन अवस्था (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति) की भावना छोड़ भगवान् को भजो जो मन कर्म बाणी से अलग व्यापक और व्याप्य रूपसे अनन्त हैं। चौदहों भुवन में अचर रूपी गोपाल को बिना भेदके रामजी से सारभ्रम को निर्मूल नहीं करते। १५ प्रेमरूपी भक्ति के रस भक्त भगवान् का स्वाद जानते हैं। वे समतासे शीतल बिना मान के ज्ञान में लगे विषयों से विरक्त हैं। तीनों प्रकार के ताप रूपी होली को जला के फागँ खेलिये। जो चित्तमें परमानन्द चाहता है तो इस मार्गमें चल। वेद पुराण विद्वानों की राय है कि कृष्णके चरितही चांचरि है। विचार करके संसार से पार हो तो कभी नरक का द्वार न देखना पड़ेगा सब प्रकार सन्देह को नाश करने में समर्थ तथा दुखों को नाश करनेवाले एक मात्र सुखके निधान प्रभू हैं लेकिन वे प्रभु बिना साधु कृपाके मिलही नहीं सकते चाहे कितनाहीं उपाय क्यों न किया जाय। इस भवसागर से पार होने के लिए साधुवों का पवित्र चरण ही नाव है। तुलसी दासजी कहते हैं कि यदि तेरे ऊपर साधुवों की कृपा हो जाय तो बिना किसी तरह प्रयास कियेही दुःखों के नाश करनेवाले भगवान रामचन्द्र जी मिल जायं॥ २०४॥

राग कान्हरा।

जो मन लागै रामचरण अस। देह गेह सुत बित

कलत्र महँ मगन होत बिनु यतन किये जस । द्वन्द्वरहित गतमान ज्ञानरत विषय विरत खटाई नाना कस । सुख-निधान सुजान कोशलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस ॥ सर्वभूत हित निर्व्यलीक चित भक्ति प्रेम दृढ़ नेम एकरस । तुलसिदास यह होहु तबहिं जब द्रवैं ईश जेहि हत्यो शीशदश ॥ २०५ ॥

जैसा कि शरीर, घर, स्त्री पुत्र तथा धन को देखकर मन उसी में मग्न हो जाता हैं उसके लिए किसी प्रकार कोई यत्न नहीं करना पड़ता । उसी तरह सांसारिक झगड़ों से अलग होकर अभिमान से बिमुख हो ज्ञानोपार्ज्जन में लग जाय विविध प्रकार की विषय वासना से यदि मुंह मोड़ ले तो सुखके समुद्र भक्तों के मन की जाननेवाले अयोध्या नरेश रामचन्द्रजी प्रसन्न हो कर क्यों न अपने वश में हो जांय क्योंकि वे सहज कृपालु हैं अपने मन में किसी प्रकार का मैल नहीं रहने देते । सर्वदा प्रेम तथा भक्ति काही रस पान करने में मग्न रहते हैं । तुलसीदास जी कहते हैं कि यह तभी हो सकता है जब रावण के नाश करने वाले प्रभु रामचन्द्रजी कृपा करें ॥ २०५ ॥

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु । तौ तजि विषय विकार सार भजु अजहूं जो मैं कहौं सोई करु ॥ सम सन्तोष बिचार विमलमति सतसंगति एचारि दृढ़ करि धरु । काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निशेषकरि परिहरु ॥ श्रवण कथा मुख नाम हृदय हरि शिर प्रमाण सेवाकर अनुसरु । नैनन निरखि कृपासमुद्र हरि अग जग रूप भूप सीतावरु ॥ यहै भक्ति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह शुभव्रत आचरु । तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहु नाहिंन डरु ॥ २०६ ॥

अरे मन! यदि तू भगवान रूपी कल्प वृक्ष की सेवा करना चाहता है तो इन संसारिक विषय वासनावों का परित्याग कर दे और जैसा मैं कहता हूं उसे कर। आपत्ति के आजाने पर भी धैर्य रख जो कुछ अपनी इच्छा से प्राप्त हो जाय उसी में सन्तोष कर सर्वदा अपने किए हुए कर्मों पर विचार कर और सत्संग में सदा लवलीन रह। काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, राग, द्वेष इन सब के सबों को त्याग दे। कानों से रामचन्द्रजी की कथा सुन मुख से प्रभु का नाम ले हृदय में प्रभु को आसन दे मस्तक से उनको प्रणाम कर और सेवावृत्ति से प्रभु को प्रसन्न करने की चेष्टा कर। आंखों से कृपा के समुद्र रामजी का दर्शन कर क्यों कि इस जगत् में केवल सीतापतिही नित्य हैं और सब अनित्य हैं। जो मैंने तुझे बतला दिया यही भक्ति, वैराग्य तथा भगवान को प्रसन्न करने के लिए सब से सरल साधन है। यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो इसी व्रत का आचरण कर। तुलसीदासजी कहते हैं कि रेमन! यह बड़ाही कल्याणप्रद मार्ग है यदि तू इस तरह चलता रहेगा तो तुझेस्वप्न में भी किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा॥ २०६॥

नाहिन और कोउ शरण लायक दूजो श्रीरघुपति सम विपति निवारन। काको सहजस्वभाव सेवकवश काहि प्रणत पर प्रीति अकारन॥ जन गुण अलप गनत सुमेरु करि अवगुण कोटि बिलोकि बिसारन। परमकृपालु भक्त चिन्तामणि विरद पुनीत पतितजन तारन॥ सुमिरत सुलभ दासदुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सँभारन। साखि पुराण निगम आगम सब जानत द्रुपदसुता अरु बारन॥ जाको यश गावत कवि कोविद जिनके लोभ मोह मद मारन। तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोशलपति मुनिबधू उधारन॥ २०७॥

श्रीरामजी के सिवाय दूसरा कोई भी शरणागत के विपत्ति का नाश करनेवाला नहीं है। किसका इतना सरल स्वभाव होगा जो सेवक के पीछे २ घूमे कौन ऐसा होगा जो निष्प्रयोजन आर्त्तजनों पर प्रेम करता हो। वे प्रभु भक्त के थोड़े से गुण को पर्वत के समान समझते और अवगुण की राशि को एक बारगी भूलही जाया करते हैं। वे बड़ेही कृपालु भक्तों के लिए चिन्तामणिकी भांति हैं जिसका पुनीत यश संसार में छाया हुआ है पतित मनुष्यों का ऊद्धार करते हैं जो प्रभु थोड़ासा स्मरण करतेही पहुंच जाते और अपने सेवक की विपत्ति को दूर करने के लिए पुकार सुनतेही अपने वस्त्रों को संभालते हुए दौड़ पड़ते हैं। समस्त पुराण वेद शास्त्र द्रौपदी और गजराज इस के साक्षी हैं इनको प्रभुकी व्यवस्था भली भांति मालूम है। अच्छे से अच्छे कवि विद्वान् भी जिनके लोभ मोह मद के नाश करनेवाले यश का गान किया करते हैं। तुलसीदासजी का कथन है कि भाई! संसार की सब प्रकार आशा का परित्याग कर उसका भजन करो जिसने अहल्या का उद्धार किया था ॥ २०७ ॥

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस शरणप्रद दूजो नाहिं न। आनँदभवन सुखदवदन शोकशमन रमारमण गुण गनत सिराहिं न ॥ आरत अधम कुजाति कुटिलखल पतित सभीत कहूं जे समाहिं न। सुमिरत नाम विवशहूं बारक पावत सो पद जहां सुर जाहिं न ॥ जाके पदकमल लुब्ध मुनिमधुकर विरति जे परम सुगतिहु लुभाहिं न। तुलसिदास शठ तेहि न भजसि कस कारुणीक जो अनाथहि दाहिन ॥ २०८ ॥

भजन करने के योग्य सुखके दाता रामजी के सदृश शरणागत का रक्षक दूसरा कोई भी नहीं है। वे प्रभु आनन्द के आगार हैं जिनका मुखारविन्द अनुपम सुखका देनेवाला है सब प्रकार के

शोक सन्ताप का नाशक लक्ष्मी के पति उन प्रभु के गुण गणकी गणना करते २ कभी समाप्त नहीं हो सकता। दुःखी नीच अछूत जाति कुटिल दुष्ट पतित और डरे हुए जो कहीं नहीं समा सकते वह विह्वल होकर एक बारभी नामका ध्यान करते भरमें अपने स्थान को पाजाते हैं। जिसके चरण कमल पर मुनिगण भौंरा के समान लोभ करते जो कि वैराग्य से मोक्ष में भी लोभ नहीं करते हैं। हे मूर्ख तुलसीदास! इसे क्यों नहीं भजता जो दयालु होकर अनाथों के दाहिने रहते हैं॥ २०८॥

राग कल्याण।

नाथ सों कौन विनती कहि सुनावों। त्रिविध अनगणित अवलोकि अघ आपने शरण सन्मुख होत संकुचित शिर नावों॥ विरंचि हरि भक्त को वेष वरवाटिका कपटदल हरितपल्लवनि लावों। नाम लगि लाइ लासा ललित वचन कहि व्याध ज्यों विषय विहँगनि बझावों॥ कुटिल शत कोटि मेरे रोम पर वारियहि साधुगनतीमों पहिलहिं गनावों। परम बर्बर खर्ब गर्व पर्वत चढ़्यो अज्ञ सर्वज्ञ जनमणि जनावों॥ सांच किधौं झूठ मोको कहत कोउ कोउ राम रावरो होहुं तुमरोइ कहावों। विरद की लाज करि दासतुलसीहि देव लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावों॥ २०९॥

प्रभु से कौन विनय करके सुनाऊं क्योंकि अनेक पाप अपने देख के सामने शरण होते हुए और सिर को नवाते हुएही उनके संकोच हो जाता है। राम भक्तों का वेष बना और जैसे छल कपट की सेना की अच्छी टाटी (टट्टी) की ओट हरे पत्तों से छिपाता हूं। नाम रूपी लगी लालसा के समान मीठे बचन बहेलिया की भांति विषयरूपी अनेक पक्षियोंको पकड़ता हूं। सैकड़ों करोड़ कुटिल तो मेरे रोयें पर न्यौछावर हैं तो भी साधुओं की गणना में पहिले

ही अपने को गिनाता हूं। अत्यन्त बावला नीच अभिमान के पर्वत पर चढ़कर मूर्ख हो के भी अपने को ब्रह्मज्ञानी और भक्तोंमें उत्तम बतलाता हूं। हेरामजी ! सत्य अथवा झूठ मुझे कोई कोई कहते हैं कि आपही का हूं व तुम्हारा कहलाता भी हूं। इससे कीर्ति की लज्जा करके हेदेव ! तुलसीदास को भी अपने में मिलाओ॥२०६॥

नांहिनो नाथ अवलम्ब मोहिं आनिकी। कर्म मन बचन प्रण सत्य करुणानिधे एक गति राम भवदीय पदत्रानकी॥ कोह मद मोह ममतायतन जानि मन बात नहिं जात कहि ज्ञान विज्ञान को। कामसङ्कल्प उर निरखि बहु बासनहिं आश नहिं एकहु आंक निर्वानकी॥ वेदबोधित कर्म धर्म बिनु अगम अति यदपि जिय लालसा अमरपुर जानको। सिद्धसुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन द्रवहिं हठयोग दिये भोगबलि प्रानकी॥ भक्ति दुर्लभ परम शम्भु शुक मुनि मधुप प्यास पदकंज मकरंद मधुसानकी। पतितपावन सुनत नाम विश्रामकृत भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान को॥ नरक अधिकार मम घोर संसार तमकूप कहि भूप मोहिं शक्ति आपान की। दास-तुलसी सोउ त्रास नहिं गनत मन सुमिरि गुह गीध गजज्ञाति हनुमान की॥ २१०॥

हे प्रभु ! मुझे दूसरे का भरोसा नहीं है कर्म मन बचन से सच्चे प्रणसे हे दयासिंधु रामजी ! आपके जूतोंके समान एकही गति है। क्रोध ईर्षा मोह ममत्वके भवन मनको जान ज्ञान विज्ञान की बात कही जाती है। और हृदय में अभिलाषाओं की इच्छा से बढ़ी हुई वासना देख एक अंश भी मुक्ति की आशा नहीं है। वेदों के समझे हुए कर्म धर्म के बिना यद्यपि बहुत दुर्लभ स्वर्ग है परन्तु मनकी लालसा तो वहां जानेकी है। सिद्ध देवता

मनुष्य दैत्य आदि की सेवामें कठिनाई है इनका दया करना हठयोग दान भोजन और प्राणी की बलिके समान है। भक्ति भी अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि शिवजी शुकदेवमुनि और भी मुनि लोग भौंरेके समान चरण कमल के रसके मीठेपनको पीने में प्यासे रहते हैं ॥ २१० ॥

और कहँ ठौर रघुबंशमणि मेरे। पतितपावन प्रणतपाल अशरणशरण बांकुरे विरद विरुदैत केहि केरे ॥ समुझि जिय दोष अति रोष करि राम जेहि करत नहिं कान विनती वदन फेरे। तथापि ह्वै निडर हौं कहौं करुणासिंधु क्यों वहि जात सुनि पात बिनु हेरे ॥ मुख्य रुचि होत बसिबे को पुर रावरे राम तेहि रुचिहि कामादिगण घेरे। अगम अपवर्ग अरु स्वर्ग सुकृतैक फल नामबल क्यों बसों यमनगर नेरे ॥ कतहुं नहिं ठाउं कहँ जाउं कोशलनाथ दीन वितहीन हौं बिकल बिनु डेरे। दासतुलसिहि वास देहु अब करि कृपा बसत जग गृद्धव्याधादि जेहि खेरे ॥ २११ ॥

हे रामजी! मुझे दूसरी जगह कहां। किस की बांकी कीर्ति फैली है जो पतित को भी पवित्र करनेवाली हो। और भक्तों की रक्षा कर अशरण को शरण दे। हे रामजी! जीवों के दोष को समझ जिससे अति क्रोध करके मुख को मोड़ विनती सुनने को कान नहीं करते हो। तौ भी मैं निर्भय होकर कहता हूं कि हे रामजी! क्या मोर ऐसी आंखें बिना देखनेवाली की बातें सुनी जा सकती है। वैकुण्ठ में रहने की खास इच्छा होती है हे रामजी! उस इच्छा को काम आदि की सेनाओं ने घेर लिया है। मोक्ष दुर्लभ है और स्वर्ग एक पुण्यही का फल है। नाम के बलसे उसमें क्यों रहूं क्योंकि नरक तो पासही है कहीं जगह

नहीं है हे रामजी ? कहां जाऊं । बिनाधन के दुःखी और बिना स्थान के व्याकुल हूं अब कृपा करके जिस पांत में गज गिद्ध बहेलिया आदि रहते हैं वहीं तुलसीदास को राखिये यही एक लालसा है ॥ २११ ॥

कबहुँ रघुबंशमणि सो कृपा करहुगे । जेहि कृपा व्याध गज बिप्र खल नर तरे तिनहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे ॥ योनि बहु जन्मि किय कर्म खल त्रिविध बिधि अधम आचरण कछु हृदय नहिं धरहुगे । दीनहित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रणतपाल चित मृदुल निजगुणनि अनुसरहुगे ॥ मोह मद मान कामादि खलमंडली सकुल निर्मूल करि दुसह दुख हरहुगे । योग जप यज्ञ विज्ञान ते अधिक असि अमल दृढ़ भक्ति दै परम सुख भरहुगे ॥ मन्दजनमौलिमणि सकल साधन हीन कुटिल मन मलिन जिय जानि जो डरहुगे । दासतुलसी वेद बिदित बिरदावली विमल यश नाथ केहि भांति बिस्तरहुगे ॥ २१२ ॥

हे रामजी ! कभी वह कृपाकरोगे जिस कृपासे बहेलिया गज अजामिल औरभी कितने दुष्ट मनुष्य तर गये उन्हीं के समान मुझे मानकर हे प्रभु ! उद्धार करोगे । अनेक योनियों में जन्म लेकर मन बचन कायसे दुष्ट कर्म किये वे बुरे चलन को मनमें तो न लाओगे । दीनों के हितकारी सबसे परे अन्तर्यामी शरण आये हुए की रक्षा करनेवाले कोमल हृदय आदि अपने गुणों में चलोगे । मोह ईर्षा मान काम आदि दुष्ट गणों को परिवार सहित नष्ट करके क्यों कठिन दुःख दूर करोगे । योग जप यज्ञ विज्ञानसे भी अधिक अति निर्मल दृढ़भक्ति को देकर क्यों परम आनन्द से मुझे पूर्ण करदोगे । यदि नीचों का सिरताज सब साधनाओं से भ्रष्ट कपटी मनका मलीन समझ मुझसे

चिसमें डरोगे तो हे प्रभु ! तुलसी कहताहै कि वेदों से कहे हुए यशकी छटा निर्मल यशसे किस प्रकार फैलाओगे ॥ २१२ ॥

राग केदारा ।

रघुपति विपतिदवन। परमकृपालु प्रणतप्रतिपालक पतित पावन ॥ क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन यवन। सुमिरत राम नाम पठये सब अपने भवन ॥ गज पिंगला अजामिल से खल गने धौं कवन । तुलसिदास प्रभु केहि न दीन गति जानकीरवन ॥ २१३ ॥

दुःखों को नाश करनेवाले श्रीरामजी अति दयालु हैं शरण आये हुए की रक्षा करते पतितों को पवित्र करते हैं ! दुष्ट कुटिल नीच अनाथ अति मलीन यवन सबको नाम के याद करतेही श्री रामजी ने वैकुण्ठ भेज दिये । गज वेश्या अजामिलके समान दुष्टों को कौन गिनैगा । हे तुलसीदास ! सीतापति रामने किस को मुक्ति नहीं दिया है ॥ २१३ ॥

हरिसम आपदाहरन । नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुखसागर तरन ॥ गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो शरन । दीन वचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनामधरन॥ द्रुपदसुता कहं लग्यो दुशासन नगन करन । हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ॥ इहै जानि सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन । तुलसीदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ॥ २१४ ॥

रामके समान दुःखों को हरण करनेवाले स्वभाव से दयालु कठिन दुःखों के समुद्र तारनेवाले कोई नहीं है । गजेन्द्रने अपनी बल देखि फिर कमलसे शरण हुआ तो दुःख की बाणी सुन कर

कमलनाभ ने उद्धार करने को गरुड़ का भी परित्याग कर के शीघ्रता से पहुंचे और कठिन आपत्ति से बचाया। जिस समय द्रौपदी को भरी सभा में नंगी करने के लिए दुःशासन आगे बढ़ा बेचारी द्रुपद नन्दिनी के "हे हरि! मेरी रक्षा करो" इस शब्द को सुनतेही अनेकों रङ्ग से युक्त उस की साड़ी को इतनी बढ़ाया कि उस दुष्ट दुःशासन के छक्के छूट गए। आप के इसी सुयश को सुन कर बड़े २ विद्वान् तथा मुनि गण सब को छोड़ कर आप के चरणों की सेवा करते हैं। प्रभो! आप ने नृग का तो उद्धार किया लेकिन न जाने क्या समझ कर अब तक तुलसीदास को अभयदान नहीं दिए॥ ११४॥

ऐसी कौन प्रभुकी रीति। विरद हेत पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति॥ गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपालु यादवराइ॥ काममोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन्ह। जगतपिता विरंचि जिन्हके चरण की रज लीन्ह॥ नेम ते शिशुपाल दिनप्रति देत गनि गनि गारि। कियो लीन सो आपु में हरि राज सभा मँझारि॥ व्याध चित दै चरण मार्‍यो मूढ़मति मृग जानि। सो सदेह स्वलोक पठायो प्रकट करि निज बानि॥ कौन तिन्हकी कहै जिनके सुकृत अरु अघ दोउ। प्रकट पातकरूप तुलसी शरण राख्यो सोउ॥ २१५॥

हे स्वामिन्! यह आप की विचित्र रीति है कि अपने यश के लिए बड़े २ पूतात्मावों का परित्याग कर नीचों पर अनुराग करते हैं। पूतना नामवाली दुष्टा राक्षसी अपने स्तनों में विष लगा कर मारने के लिए गई थी लेकिन आप उसे माता के समान गति दिये। काम से मोहित गोपियों पर अथाह कृपा करनेवाले संसार के पिता ब्रह्माजीने भी जिनके चरणों का रजालिया।

राजा शिशुपाल नियम से प्रतिदिन गिन करके गाली देता था भगवान ने बीच राज सभा में उसे अपना लिया। मूढ़ व्याधा चरणों में मन लगा कर मृगा जान कर मार डाला ऊसे अपना स्वभाव प्रकट कर के उसी शरीर से स्वर्ग को पठाये। फिर उनकी कौन कहे जिनके कि पुण्य पाप दोनों थे, तुलसी तो प्रत्यक्ष पाप रूपी है उसे भी शरण में रख लिया ॥ २१५ ॥

श्रीरघुबीर की यह बानि। नीचहूं सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥ परमअधम निषाद पांवर कौन ताकी कानि। लियो सो उरलाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि ॥ गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि। जनक ज्यों रघुनाथ ता कहं दियो जल निज पानि ॥ प्रकृतिमलिन कुजाति शबरी सकल अवगुण खानि। खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥ रजनिचर अरु रिपु विभीषण शरण आयो जानि। भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह दशा भुलानि ॥ कौन सौम्य सुशील बानर जिनहिं सुमिरत हानि। किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ॥ राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिन दानि। भजहि ऐसे प्रभुहिं तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥ २१६ ॥

रामजी का यह स्वभाव है कि अच्छा प्रेम चित्त से देख के नीचसे भी प्रेम करते हैं। महापापी निषाद नीच क्या उसकी मर्यादा प्रेम को पहिचान कर उसे पुत्र के समान हृदय से लगाये जटायु में क्या दया थी जिसे हिंसा की वृत्ति देकर विधाता ने रचना किया उसे रामजी ने पिताके समान अपने हाथ जलदान किया। स्वभाव से मलीन नीच शबरी सब अवगुण की खानि थी परन्तु उसी के दिये फलको बड़ी रुचि से खाये और उसकी बड़ाई किये। विभीषण राक्षस था फिर भी शत्रु परन्तु शरण

आया जान कर उसे भरत के समान उठके भेंटते देह की दशा भूल गई। बानर कौन से सीधे शीलवान् थे जिनकी सुधि आने से हानि होती है उन सबको मित्र बनाकर अपने घर लिवा लाये और सभों का आदर किया। रामजी स्वभाव से दयालु कोमल गरीबों के हितकारी नित्यही उदार हैं हे तुलसी! ऐसे प्रभु का छल कपट न करके भजन करो॥ २१६॥

हरि तजि और भजिये काहि। नहिंन कोऊ राम सों ममता प्रणत पर जाहि॥ कनककशिपु विरंचि को जन कर्म मन अरु बात। सुतहि दुखवत विधि न बरज्यो काल के घर जात॥ शम्भु सेवक जान जग बहु बार दिय दशशीश। करत राम विरोध सो सपनेहुँ न हटक्यो ईश॥ और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मोत। कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ शरण गये सभीत॥ को न सेवत देत सम्पति लोकहू यह रीति। दासतुलसी दीन पर यक रामही की प्रीति॥ २१७॥

श्री रामजी को छोड़ किसकी सेवा करूं क्योंकि रामके समान कोई नहीं है। जिसके शरण आये पर प्रेम हो। हिरण्य कश्यप ब्रह्मा का भक्त कर्म वचन मनसे परन्तु उसे ब्रह्मा ने पुत्र को दुःख देते और कालके घर जाने से नहीं रोका। संसार जानता है शिवका सेवक रावण अनेकों वार अपना सिर काट कर चढ़ा दिया परन्तु रामसे वैर करते उसे शिवजी स्वप्न में भी नहीं रोक सके दूसरे देवताओं को क्या कहूँ वे तो स्वार्थ के ही मित्र हैं। कभी किसी भयभीत को शरण जाने पर किसी ने नहीं रखा और सेवा से धन कौन नहीं देता। यह रीति तो संसारही में है। हे तुलसीदास! गरीब पर प्रीति एक रामही की है॥ २१७॥

जा पै दूसरो कोउ होइ। तौ हों बारहिं बार प्रभु

कत दुःख सुनावों रोइ ॥ काहि ममता दीन पर का को पतितपावन नाम। पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ॥ रहे शम्भु विरंचि सुरपति लोकपाल अनेक । शोकसरि बूड़त करीशहि दई काहु न टेक ॥ विपुल भूपतिसदसि महँ नर नारि कह्यो प्रभु पाहि। सकल समरथ रहे काहु न वसन दीन्हों ताहि ॥ एक मुख क्यों कहों करुणासिन्धु के गुणगाथ। भक्तिहित धरि देह काह न कियो कोशलनाथ ॥ आपसे कहुँ सौंपिये मोहिं जोपै अतिहि घिनात। दासतुलसी और विधि क्यों चरण परिहरि जात ॥ २१८ ॥

जो दूसरा कोई होता तो मैं बारम्बार हे प्रभु। क्यों रोता और दुःख सुनाता किसका प्रेम गरीबों पर है । और किसका पतितपावन नाम है। पापों का मूल अजामिल को किसका अपना स्थान दिया। शिव ब्रह्मा इन्द्र और बहुत से लोकपाल गजेन्द्र को दुःख की नदी में डूबते किसी ने अवलम्ब नहीं दिया। भरी राजसभा में द्रौपदी ने कहा हे प्रभो! रक्षा करो तो सब देवता वहीं थे पर किसी ने उसे वस्त्र नहीं दिया । कृपासिन्धु के गुणों का वर्णन एक मुख से कैसे होसकता है जो भक्तों के लिये शरीर को धारण कर हे रामजी! क्या नहीं किया। पर जो मुझे बहुत घिनाते हो तो जो कोई आपके समान हो उसे सपुर्द कीजिये। तुलसीदास दूसरे उपाय से क्यों चरण छोड़ने लगा ॥ २१८ ॥

कबहिं देखाइहौ हरि चरण।

शमन सकल कलेश कलिमल सकल मंगल करण ॥ शरदभव सुन्दर तरुणतर अरुण वारिज वरण। लच्छिलालित

ललित करतल छवि अनूपम धरण ॥ गंगजनक अनंग अरिप्रिय कपटवटु बलिछरण । विप्रतिय नृग बधिक के दुख दोष दारुण दरण ॥ सिद्ध सुर मुनि वृन्द वन्दित सुखद सब कहँ शरण । सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारण तरण ॥ कृपासिंधु सुजान रघुवर प्रणत आरति हरण । दरश आस पियास तुलसीदास चाहत मरण ॥ २१६ ॥

सब क्लेश रहित पापों को नाश करनेवाले और सब प्रकार मंगल देनेवाले चरण कमल हे राम ! कब दिखलाओगे । शरत्काल में पैदा होनेवाले जो लाल कमल उस का जो खूब फूलना उस रंगके समान सुन्दर हैं । लक्ष्मी के सुन्दर हाथों से मींजे हुए उत्तम शोभासे भरे हुए हैं और गंगाजी को उत्पन्न करनेवाले हैं शिवजी के प्यारे हैं छलसे वामन का रूप धारण कर बलिको छले थे । अहल्या राजा नृग और व्याध के कठिन दुःख और दोषों को नष्ट किये । सिद्ध देवता मुनिगण जिनकी स्तुति करते और वह सुखदायी सबको शरण देते हैं । जिन्हें एक बार हृदय में लाते तो भक्त तारने के पात्र हैं । हे कृपा के समुद्र सज्जन रघुकुल शिरोमणि शरणागत के दुःख को दूर करनेवाले तुलसीदास दर्शन की आशा का प्यासा मरना चाहता है । अर्थात् भक्तों को चाहिये कि परमात्मा के दर्शन के बिना चैन न पावे सदा भगवान के प्रेम की आशा बनाये रखे ॥ २१६ ॥

द्वारे हौं भोरही को आज ।

रटत ररिहा आरि और न कौरही के काज ॥ कलि कराल दुकाल दारुण सब कुभांति कुसाज । नीच जन मन ऊँच जैसो कोढ़ में की खाज ॥ हहरि हिय में सदय

बूझ्यों जाइ साधु समाज । मोहुँ से कहु कतहुं कोउ तिन कह्यो कोशलराज ।। दीनता दारिद दलै को कृपावारिधि वाज । दानि दशरथराय के सुत बानइत शिरताज ।। जनम को भूखो भिखारी हौं गरीबनेवाज । पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भक्ति सुधा सुजान ।। २२० ।।

आज मैं भोर ही से रिरियाता और रटन करता हूं दूसरा काम नहीं । टुकड़े से ही काम है । भयंकर कालिकाल के अकाल की कठिनाई में बुरी तरह के सभी सामान खराब है क्यों कि जैसे नीच जन में ऊँचा मन जैसे कोढ़ की खाज से । तो मैं सूखा हृदय हो दयालु साधु समाज में जाके पूछा कि मेरे समान कोई कहीं है । उन्होंने कहा राम हैं जो कि दुःख दारिद्र नाश करनेवाले कृपा के समुद्र कहे जाते हैं राजा दशरथ के पुत्र दानियों में शिरोमणि का बाना बांधे हैं । हे गरीबनिवाज ! जन्म से भूखे मुझ मांगता तुलसी को पेट भर भक्ति रूपी मीठा अन्न का भोजन दीजिये ।। २२० ।।

करिय संभार कोशलराय ।

और ठौर न और गति अवलम्ब नाम बिहाय ।। बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय । राम राउर नाम गुरु सुर स्वामी सखा सहाय ।। रामराज न चले मानसमलिन के छलछाय । कोप तेहि कलिकाल कायर सुयहि घालय घाय ।। लेत केहरि सों बयर ज्यों भेक हनि गोमाय । त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ।। अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय । सुखी हरिपुर बसत होत परीक्षितहि पछिताय ।। कृपासिन्धु विलोकिये जन मन कि सांसति साय । शरण आयो देव दीनदयालु देखन पाय ।। निकट

बोलि न बरजिये बलिजाउ हनिय न हाय। देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय॥ अरुणमुख भ्रू विकट पिङ्गलनयन रोष कषाय। बोर सुमिरि समीर को हटिहैं चपल चित चाय॥ विनय सुनि विहँसे अनुज सों बचन के कहि भाय। भली कही कह्यो लषणहूं हँसि बने सकल बनाय॥ दई दोनहि दादि सो सुनि सुजन सदन बधाय। मिटे संकट शोच पोच प्रपञ्च पाप निकाय॥ पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुण अनघ अमाय। दासतुलसी कहत मुनिगण जयति जय उरराय॥ २२१॥

हे रामजी! अब से संभारिये मुझे नामका अवलम्ब छोड़ कर दूसरी जगह और दूसरा शरण भी नहीं है। अपनी समझ में अपने हितकारी आप हैं, हमको पिता माता नहीं हे रामजी! आपका नाम देवता गुरु मित्र और न तो स्वामी सहायक कोई है। रामराज्य में मलीन मनकी कपटकी छाया नहीं चलती। उस पर क्रोध कर कायर कलिकाल मंघावों को मारता है। जैसे सिंह से वैर लेते हुए स्यार मेढक को मारे वैसे ही राम का सेवक मुझे जानकर निकम्मा बुराई का दांव देता है। इसके छल की करतूत और छिपी हुई अनेक प्रकार की अनीति सुनके सुख पूर्वक वैकुण्ठ में रहनेवाले परीक्षित को भी पछतावा होगा। हे दयानिधि! सेवक की मानसिक पीड़ा समूह को देखिये। हे देव! हे दीन दयालु! मैं तो चरणों के दर्शनकी शरण में आया हूं। उसे पास बुला न तो वराजियेगा और न तो मारियेगा बलिजाऊं हाय होगी। हनुमान ही गौके सामने सिंह के समान देखेंगे। लालमुख टेढ़ी भौंह पीले नयन क्रोध से लाल शरीरवाले वायु के वीर (हनुमान) को याद करने से चंचल चित्त का उमंग दूर होगा। बिनती सुन श्रीरामजी लक्ष्मणजी से हंस कर इस बचन के अभिप्राय को कहे। लक्ष्मणजी भी हंसकर कहे कि खूब

कहा यह सब बना बनाया है। दीन को शरण दिये उसे सुन कर साधुओं के घर बधाई बज गई। शोक सोच क्षुद्र छल तथा पापों के समूह नष्ट हो गये। निर्गुण निष्पाप माया से रहित राम के भक्त में प्रेम और विश्वास देख कर तुलसीदास कहते हैं मुनियों के मन के राजा की जय हो जय हो॥ २२१॥

नाथ कृपाही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति। हो धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति॥ सुगुण ज्ञान विराग भक्ति सुसाधननि को पांति। भजे विकल विलोकि कलि अघ अवगुणनि को थाति॥ अति अनीति कुरीति भई भुइँ तरणिहूं ते ताति। जाउँ कहँ बलिजाउँ कहूं ना ठाउँ मति अकुलाति॥ आप सहित न आपनो कोउ बाप कठिन कुभांति। श्यामघन सींचिये तुलसी शालि सफल सुखाति॥ २२२॥

हे प्रभु! मैं दीन दया ही का मार्ग दिन रात देखता हूं कि किस समय होगी। हे दीनदयालु! समझ में नहीं आती, अच्छे गुण ज्ञान वैराग्य भक्ति और अच्छी साधनाओं के समूह तो कलिकाल के पाप और अवगुणों की स्थिति को देख कर व्याकुलता से भाग गये। कुरीतियों के अधिक अन्याय से पृथिवी सूर्य से भी अधिक गर्म हो गई। बलिजाऊँ कहां जाऊँ कहीं स्थान नहीं है अति व्याकुल है। इस शरीर सहित अपना कोई नहीं है हे पिता! यह बुरी तरह की कठिनाई हैं। हे घनश्याम! सींचिये तुलसी फले हुए धान के समान सूखता है॥ २२२॥

बलिजाउँ और कासों कहों।

सद्‌गुणसिंधु स्वामी सेवकहित कहुं न कृपानिधि सों लहौं॥ जहँ जहँ लोभ लोल लालचवश निजहित चित चाहनि चहौं। जहँ तहँ तरणि तकत उलूक ज्यों

भटकि कुतरुकोटर गहौं ॥ कालस्वभाव करम विचित्र फलदायक सुनि शिर धुनि रहौं। मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसहदाह दारुण दहौं ॥ उचित अनाथ होइ दुखभाजन भयो नाथ किङ्कर न हौं अब रावरो कहाय न बूझिये शरणपाल सांसति सहौं ॥ महाराज राजीवविलोचन मगन पाप संताप महौं ॥ तुलसी प्रभु जब तब जेहि तेहि विधि रामनिबाहे निर्बहौं ॥२२३॥

बलि जाऊं दूसरे किस से कहूं अच्छे गुणों के समुद्र सेवक के हितकारी कृपानिधान के समान कहीं नहीं पाता हूं। जहां जहां लोभ से मन चञ्चल हो लालच वश अपनी भलाई की इच्छा से चाहता हूं। वहां वहां उल्लू पक्षी के समान सूर्य के भय से वृक्षकी अंधेरा खोढ़रे के पास जाता हूं। वहां काल स्वभाव कर्म विचित्र फल देनेवाले हैं यह सुन के सिर पीट के रह जाता हूं। वह सब मुझ को सदा एकही तरह दुःख देनेवाले हैं इस से दारुण तपनि से तपता हूं। बिना प्रभुके दुखों का पात्र होना तो योग्य है परन्तु प्रभुका सेवक होने पर दुःखों का नाश है अतः सुखी हूं। अब आपको शरणागत के रक्षक कहा कर ऐसा न चाहिये कि दुःख को सहूं। हे महाराज! कमलनयन पापों की तपनी में डूबा हूं। हे तुलसी के प्रभु! राम जब जिस भांति निबाहोगे तब वैसेही निर्वाह करूंगा ॥ २२३ ॥

आपनो कबहूं करि जानिहो।

राम गरीबनेवाज राजमणि विरद लाज उर आनि हो ॥ शीलसिन्धु सुन्दर सबलायक समरथ सदगुण खानि हो। पाल्यो है पालत पालहुगे प्रणत प्रेम पहिचानि हो ॥ वेद पुराण कहत जग जानत दीनदयालु दीनदानि हो। कहि आवत बलि जाउँ मनहुं मेरो बार बिसारे बानि हो ॥

आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हो। है परिणाम भलो तुलसी को शरणागत भय भानि हो ॥ २१४ ॥

कभी अपना करके जानेगे, हे गरीबनिवाज राम ! हे राजा ओं में शिरोमणि अपनी कीर्ति की लज्जा अपने मनमें लाओगे तो शील के समुद्र सब प्रकार सुन्दर सबमें योग्य और समर्थ और अच्छे गुणों की खानि हो। रक्षा किये हो और करते हो तथा करोगे शरणागत के प्रेम को पहचानते हो। वेद पुराण और लोक से प्रसिद्ध है कि दीनों के लिये दानी हो। बलिजाउं कहने ही आता है कि मानों हमारी बार अपने स्वभाव को भुला दिये। आरत दीन और अनाथों के हितकारि होके लोक मर्याद मानते हो तो अन्त में तुलसी का भी अच्छा है कि शरणागत के भय को नष्ट करते हो ॥ २२४ ॥

रघुबरहि कबहुं मन लागिहै।

कुपथ कुचाल कुमति कुमनोरथ कुटिल कपट कब त्यागि है ॥ जानत गरल अमिय विमोह वश अमिय गनत करि आगि है ॥ उलटी रीत प्रीति अपने को तजि प्रभुपद अनुरागि है ॥ आखर अर्थ मंजु मृदु मोदक राम प्रेमपाग पागिहैं ॥ ऐसे गुण गाय रिझाय स्वामि सों पाइहैं जो मुँह मांगिहैं ॥ तु यहि विधि सुख शयन सोइहै जियको जरनि भूरि भागि है ॥ रामप्रसाद दासतुलसी उर रामभक्तियोग जागिहै॥२२५॥

कभी राम ही में मन लगेगा कुमार्ग में कुबुद्धि की कुचाल कुमनोरथ कुटिलता और छल कब छूटेगी। मोह के बश हो विषको अमृत को अग्नि के समान जानता हूं। उलटी रीतिसे अपनपौका ममत्व छोड़ कर प्रभु के चरणों में अनुराग करेगा। मनोहर भाव से अक्षर रूपी (राम) को कोमल लड्डू के समान

भक्ति रूपी पाग से पागेगा। इस भांति गुण का गान कर मुझ को प्रसन्न कर जो मुंह से मांगेगा सो पावेगा। फिर तू इस प्रकार सुख का नींद में सोवेगा कि चित्त की ज्वाला अत्यन्त दूर भाग जावेगी और राम की प्रसन्नता से तुलसी के हृदय में भक्ति की जागृति होवेगी ॥ २२५ ॥

भरोसो और आइहै उर ताके।

कै कहूं लहै जो रामहि सो साहिब कै अपनो बल जाके ॥ कै कलिकाल कराल न सूझत मोह मार मद छाके। कै सुनि स्वामि स्वभाव न रह्यो चित जो हित सब अंग थाके ॥ हौं जानत भलि भांति अपनपौ प्रभु सों सुन्यो न शाके। उपल भील खग मृग रजनीचर भले भये करतब काके ॥ मोको भलो रामनाम सुरतरु सो भयो प्रसाद कृपालु कृपा के। तुलसी सुखी निशोच राज ज्यों बालक माय बबा के ॥२२६॥

उसी के हृदय में दूसरा भरोसा आवेगा जोकि कहीं रामहीं के समान स्वामी पावे जिसे कि अपना बल हो। याकि कठिन कलियुग को न देखकर मोह और काम के रस से भराहो, याकि प्रभु के स्वभाव को सुनकर मनमें जानता हो कि सब अंगों के थकने पर वही हितैषी है। मैं भलीभांति अहंत्व (अभिमान) को जानता न हूं और प्रभुके समान शाकावान् किसी को नहीं सुना। अहल्या केवट जटायु मारीच विभीषण किसके काम के लिये भले हुए मुझे तो रामनाम ही कल्प वृक्ष भला है वह राम-की कृपाका प्रसाद हुआ अबतो तुलसी छोटे बच्चाका भांति माता पिता के राज्य में बेखटके सुखी है ॥ २२६ ॥

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्याण फरो ॥

कर्म उपासन ज्ञान वेद मत सो सब भांति खरो। मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥ चाटत रह्यों श्वान पातरि ज्यों कबहुं न पेट भरो। सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो॥ स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुञ्जरो नरो। सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो॥ प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहँ ताको काज सरो। मेरे तौ माय बाप दोउ आखर हौं शिशु अरनि अरो॥ शंकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो। अपनो भलो जो राखि कहौं कछु तौ जरि जोह गरो। अपनो भलो रामनामहिं ते तुलसिहि समुझि परो॥ २२७॥

जिसे दूसरी भरोसा हो वह करे। मुझे तो राम का नाम ही कल्पवृच्छ हो के कलिमें कल्याणरूप होकर फला है। कर्म उपासना ज्ञान वेदकी राय से भी सब प्रकार से ठीक है परन्तु मुझे तो सावन के अंधियारे के समान सदा हराही रंग सूझता है। पहिले कुत्ता के समान पत्तल चाटता था और कभी पेट नहीं भरा, वही मैं नाम के ध्यान से अमृत के समान रस देखता हूं। परोसा रखा है स्वार्थ परमार्थ वो (सत्य असत्य से मिला) 'नरो वा कुञ्जरो, नहीं है। सुनता हूं कि समुद्र में पत्थरों का सेतु बना कर बानरों की सेना को समुद्र पार कराये। जिस का जहां विश्वास से प्रेम है वह उसी का काम होता है। मेरे माता पिता दोनों अच्छर (राम) हैं मैं बालक के समान हठ करता हूं इस में शिव जी शाच्छी हैं। जो कुछ गोप्य करके करूं तो जीभ जल कर गिर पड़े अपना भला राम के नामही से तुलसी का समझ पड़ा है॥ २२७॥

नाम राम रावरोई हितु मेरे। स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहौं टेरे॥ जननीजनक तज्यो जन्मि कर्म

बिनु विधिहूं सृज्योहा अबहेरे। मोह से कोउ कोउ कहत रामहिं को सो प्रसंग केहि केरे ॥ फिर्‌यों ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे । नाम प्रसाद लहत रसाल फल अबहौं बबुर बहेरे ॥ साधत साधु लोक परलोकहु सुनि गुनि जतन घनेरे। तुलसी को अवलम्ब नाम को एक गांठि कइ फेरे ॥ २२८ ॥

हे राम जी! आपका नाम ही मेरा हितकारी है। स्वार्थ परमार्थ के साथियों के समान हाथ उठा कर पुकार कर कहता हूं कि मुझ कर्महीन को उत्पन्न कर माता पिता ने मुझे अब छोड़ दिया। और दैवने भी मुझे जन्म देकर फन्दे में डाल दिया। परन्तु कोई कोई भ्रम से मुझे राम जी का कहते हैं। प्रसंग से जिसके नाम के विना पेट के लिये पहिले ललाते फिरते थे कि मुझे देख दुःख भी दुःखित होता था। अब नाम की कृपा से मैं बबुर बहेरा में भी आम के फल को पाता हूं। लोक और परलोक के लिये सज्जनों से सुन कर और समझ कर अनेक उपायों का अभ्यास करता हूं। परन्तु तुलसी को नाम ही का भरोसा है जैसे एक गिरह (गांठि) में ही कई फल रह सकते हैं ॥ २२८ ॥

प्रिय राम नाम ते जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहु आदि मध्य परिणामो ॥
सकुचत समुझि नाम महिमा मद लोभ मोह कोह कामो ॥
राम नाम जप निरत सुजन पर करत छांह घोर घामो ॥
नाम प्रभाव सहो जो कहै कोउ शिला सरोरुह जामो ॥
जो सुनि सुमिरि भाग भाजन भई सुकृतशील भीलभामो ॥
बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ॥ उलटे पलटे नाम महातम गुञ्जनि जितो ललामो ॥ राम ते अधिक

नाम करतब जेहि किये नगर गत गामो ॥ भये बजाइ दाहिन जो जपि तुलसिदास वामो ॥ २२६ ॥

जिसे रामनामसे अधिक रामजी प्यारे हैं। उसे कठिन कलियुग में भी आदि मध्य अवसान में न भलाइही है, नामका माहात्म्य समझ कर ईर्षा लोभ मोह क्रोध काम भी सकुचाते हैं। रामनाम के जप में लगे हुए सज्जन पर कठिन घाम भी छाया करता है। नामके प्रताप को जो कोई ठीक कहे तो पत्थर में कमल हुआ। जिसको सुन कर ध्यान से भिलनी भी पुण्य स्वभाव और भाग्य की पात्र हो गई। बाल्मीकि अजामिल की कुछ भी साधन की सामग्री नहीं थी उलटे सीधे नामका महिमा रूपी चिरमिटी ने सुन्दरता विजय करली, राम से भी ज्यादा नाम में युक्ति है कि जिसने ऊसर को भी नगर कर दिया। और जिसका भजन कर तुलसीदासके समान टेढ़ाभी नगारा बजा के सीधा हो गया२२६

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।

जानकी जीवन जन्म जन्म जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं॥ तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं। तुम सों कपट करि कल्प कल्प कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं॥ कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि किये भुरुट भौंर को हौं। तुलसिदास शीतल नित यहि बल बड़े ठिकाने ठौर को हौं॥ २३० ॥

जीभ गल जावे जो कहूं कि दूसरे का हूं। क्योंकि हे रामजी! संसार में जन्म जन्म से आपही के टुकड़े से जिलाया गया हूं। तीनों लोकमें तीनोंकालमें आपके पराक्रमका मित्र नहीं देखता हूं तुमसे छल करके मैं कल्प भर कराल नरक का कीड़ा होऊंगा। क्या हुआ जो मन का मिल कलियुगने भंवर का भौतुआके तुलसीदास इस बलसे सदा ठण्ढा है कि बड़े ठौर ठिकाने में हू ॥ २३०॥

अकारण को हितू और को है।

बिरद गरीब निवाज कौन का भौंह जासु जन जोहै ॥ छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो विरंचि विरचो है। कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ॥ काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुणनि बिछोहै। का कुलसी से कुसेवक संग्रह्यो शठ सब दिन साँई द्रोहै ॥२३१॥

बिना मतलब के हितकारी दूसरा कौन है। जिसका नाम गरीबनिवाज हो कि जिसके भौंह को भक्त देखते हैं। जिस बड़े छोटे की ब्रह्मा ने रचना किया है वह सब स्वारथी हैं। कपटी केवट बानर भालुओं के पालन करनेवाले राम के समान कौन है। जिसके नामको अलसयुक्त लेने से क्रोध पाप तथा अवगुणों के समूह नाश हो जाते हैं। उन्होंने तुलसी के समान दुष्ट नौकर को रखा जो दुष्ट सेवक सब दिन मालिक की बुराई चाहता हो २३१

और मोहिं को है काहि कहिहौं।

रंकराज ज्यों मनको मनोरथ जेहि सुनाय सुखलहिहौं ॥ यमयातना योनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं। मोको अगम सुगम तुम को प्रभु तउ फल चारि न चहिहौं ॥ खेलिबे को खग मृग किङ्कर ह्वै रावरो रामहों रहिहौं। यहि नाते नरकहु सचुपैहौं या बिनु परमपदहु दुख दहिहौं ॥ इतनी जिय लालसा दास के कहत पानहों गहिहौं। दीजै वचन कि हृदय आनिये तुलसो के पन निर्बहिहौं ॥२३२॥

दूसरा मेरा कौन है किससे कहूंगा। गरीबों में राजा के समान जो मेरे मनका मनोरथ है जिसे सुन कर सुख लाभ करूं नरक की यातना और जन्म के कठिन दुख मैंने सभी सहे हैं और सहूंगा। मुझे दुर्लभ और तुमको सरल है तो भी हे प्रभु ! चार फल मैं नहीं चाहूंगा हे रामजी ! मैं आपके खेलने का पक्षी पशु वृक्ष और सेवक होकर रहूँगा। परन्तु इसके विना मुक्त होकर

भी दुःखों से जलूँगा । सेवक के चित्त में इतनी इच्छा है और कहता है कि आपके जूतों को लिये रहूंगा । कह दीजिये अथवा मन में रखिये कि तुलसी की प्रतिज्ञा पूरी करूंगा ॥ २३२ ॥

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावों ।
को तम बिनु पर पीर पाइ है केहि दीनता सुनावों ॥ प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहि डुलावों । इहै समुझि सुनि रहौं मौनही कहि भ्रम कहा गँवावों ॥ गोपद बुड़िवे योग करम करों बातनि जलधि थहावों । अति लालची काम किङ्कर मन मुख रावरो कहावों ॥ तुलसी प्रभु जिय की जानत सब अपनो कछुक जनावों । सो कीजै जेहि भांति छांड़ि छल द्वार परो गुण गावों ॥ २३३ ॥

दीनों के सखा दूसरा कहां पाऊंगा । तुम्हारे बिना कौन पराई पीर पावेगा और किससे दीनता सुनाऊं । सामर्थ्यवाले को दया नहीं है और जिनको दया है वे असमर्थ हैं । जहां जहां चित्तको डुलाता हूं यही सुन समझ के मौनहीं रहता हूं कि कह कर क्यों सन्देह करूं । गौ के खुरमें डूबने लायक तो कर्म करता हूं और बातों से समुद्र का थाह लगाना चाहता हूं मन तो लोभी होकर काम का दास है और मुखसे आपका नाम लिवाता हूं हे नाथ ! तुलसी के अन्तर्यामी हो तो भी कुछ अपनी बतलाता हूं कि वही करिये जिसमें कपट छोड़कर द्वार पर पड़ आपका यश गाता रहूं ॥ २३३ ॥

मनोरथ मन को एकै भांति ।
चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाति । कर्मभूमि कलि जन्म कुसंगति मति विमोह मदमाति । करत कुयोग कोटि क्यों पैयत परमारथपद शांति ॥ सेइ साधु गुरु

सुनि पुराण श्रुति बूझेउ राग बाजी तांति । तुलसी प्रभु स्वभाव सुरतरु सों ज्यों दर्पण मुखकांति ॥ २३४ ॥

मनकी अभिलाषा तो एक ही तरह की है । पुण्य फल की इच्छा तो मुनियों के मनसे भी अधिक है चित्त तो पापों से भी नहीं अघाता । कर्म भूमि और कलिकाल में जन्म कुसंग से मिली बुद्धि मोह मद से मतवाला और करोड़ों अवगुणों से मेल रखता हूं । मोक्ष की शान्ति क्यों कर मिल सकती है साधु और गुरु की सेवा से और वेद पुराणों को सुनकर तांत बाजी से राग को समझा । हे तुलसी ! प्रभुका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है जैसा आइना होगा वैसा ही मुख की शोभा होगी ॥ २३४ ॥

जन्म गयो बादिहि वर बीति । परमारथ पाले न पर्‍यो कछु अनुदिन अधिक अनीति ॥ खेलतखात लड़क-पन गोचलि यौवन युवतिन्ह लियो जीति । रोग वियोग शोक श्रम संकुल बड़ी वय वृथहि अतीति ॥ राग रोष ईर्षा विमोह वश रुची न साधु समीति । कहे न सुने गुणगण रघुपति के भइ न रामपद प्रीति ॥ हृदय दहत पछिताय अनल अब सुनत दुसह भव भीति । तुलसी प्रभु ते होइ सो कीजिय समुझि विरद की रीति ॥२३५॥

यह उत्तम जन्म वृथाही चला गया, उत्तम अर्थ तो कुछ भी पाले नहीं पड़े दिनों दिन अधिक अन्याय ही हुआ । खाते खेलते तो बचपन चला गया और युवती स्त्रियों ने युवाको जीत लिया रोग वियोग चिन्ता और परिश्रम से भरी बुढ़ापा वृथाही चली गई । भ्रम के बश राग द्वेष और क्रोधसे साधु सभाकी शोभा नहीं रामकी कीर्ति को समूह को सुने नहीं और रामके चरणों में प्रेम

नहीं हुआ अब कठिन संसार का भय सुनकर पछिताते हुए हृदय अग्नि के समान जलता है। तुलसी को जो प्रभु से हो वह करिये परन्तु यशकी रीति समझ कर उद्धार कीजिये ॥ २३५ ॥

ऐसेहि जन्म समूह सिराने। प्राणनाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरण बिराने॥ जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने। सूखत वदन प्रशंसत तिन्ह कहँ हरिते अधिक करि माने॥ सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पायँ पिराने। सदा मलीन पन्थके जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने॥ यह दीनता दूरि करिबे को अमित यतन उर आने। तुलसी चित चिन्ता न मिटै बिनु चिन्तामणि पहिचाने॥ २३६ ॥

इस प्रकार के जन्म बहुतेरे बीत गये। प्राणनाथ राम के समान प्रभुको छोड़कर दूसरे के चरण की सेवा किये और जो प्राणी मूर्ख कपटी कायर और दुष्ट कलिकाल के पापों में लगे हैं। उनकी बड़ाई करते मुख सूख गया और रामसे भी अधिक माना। सुख के लिये करोड़ों उपाय सदा करते हुए पैर नहीं दुखे। रास्ते के जल के समान सदा मलीन रहते कभी थिर नहीं हुए। इस दीनता को दूर करने को बहुत उपाय मनमें लाये परन्तु हे तुलसी! बिना चिन्तामणि (राम) को पहिचाने चित्त की चिन्ता नहीं जावेगी॥ २३६ ॥

जोपै जिय जानकीनाथ न जाने। तौ सब कर्म धर्म श्रमदायक ऐसेइ कहत सयाने॥ जे सुर सिद्ध मुनीश योगविद् वेद पुराण बखाने। पूजा लेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने॥ काको नाम धोखेहु सुमिरत पातकपुञ्ज सिराने। विप्र बधिक गज गृध्र कोटि खल कौन

के पेट समाने ॥ मेरु से दोष दूरि करि जनके रेणु से गुण उर आने । तुलसिदास तेहि सकल आशतजि भजहि न अजहुँ अयाने ॥ २३७ ॥

जो चित्त से रामको नहीं जानोगे तो संपूर्ण कर्म धर्म और परिश्रम ही करने को देवेंगे ऐसेही चतुर जन कहते हैं । जो देवता सिद्ध मुनि योगी आदि योग जानने हैं वेद पुराण का उपदेश है कि पूजा लेकर बदला में सुख देते हैं । वह भी लाभ हानि के बिचार से जिसका नाम धोखे से भी ध्यान करते भर में पापों के समूह नाश होगये । अजामिल व्याध गज गीध करोड़ों कपटी मनुष्य किसके हृदय में मिल गये । जो सेवक के दुःख को पर्वत के समान हटा कर रेणु (किनका) के समान गुण मन में लावे, हे तुलसीदास ! सब भरोसा छोड़ उन्हें नहीं भजता क्या आज भी मूर्ख बना है ॥ २३७ ॥

काहे न रसना रामहिं गावहि । निशि दिन पर अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ॥ नर मुख सुन्दर मन्दिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि । शशि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकरजल कहँ धावहि ॥ काम कथा कलि कैरवचन्दिनि सुनत श्रवण दै भावहि । तिनहिं हटकि कहि हरि कल कीरति कर्ण कलंक नशावहि ॥ जातरूप मति युवति रुचिर मणि रचि रचि हार बनावहि । शरणसुखद रविकुल सरोज रवि राम नृपहि पहिरावहि ॥ वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि सरल चरित चित लावहि । तुलसिदास भव तरहि तिहुँ पुर तू पुनीत यश पावहि ॥ २३८ ॥

अरे जीभ ! क्यों नहीं रामके गुणों को गाती है । रात दिन पराई निन्दा में वृथा रट रटके प्रीति को बढ़ाती है । मनुष्यका मुख सुन्दर घर है और वह पवित्र है वहां रहकर उसको लज्जित मत करो । चन्द्रमा के पास रह कर अमृत छोड़कर क्यों मृगतृष्णा के समान दौड़ती है । विषय की कहानी कालिरूपी चांदनी रात्रि है कान देकर उनके भावों को सुनते हुए उनसे हटाकर रामजी का सुन्दर यश कहकर कानों के कलंक को दूर करो । बुद्धि रूपी स्त्री द्वारा सोना और मणियों को छांट छांट कर सुन्दर हार बनावे और शरण से सुखदायी सूर्यवंश रूपी कमलों के सूर्य श्रीरामको पहिचाना तर्क कुतर्क के आनन्द को छोड़ श्रीरामजी को भजो और उनके सरस चरित्र में चित्त को लगाओ इससे हे तुलसी-दास ! संसार से तीनों लोक पार होंगे और पवित्र कीर्ति पावोगे ॥ २३८ ॥

आपनो हित रावरे सों जोपे सूझै । तौ जनु तनु पर अछत शीश सुधि क्यों कबन्ध ज्यों जूझै ॥ निज अवगुण गुण राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै । रहनि कहनि समुझनि तुलसीकी को कृपालु बिनु बूझै ॥ २३९ ॥

अपनी भलाई तुमसे जो समझ पड़े तो मानो देह पर सिर है उस सुधि से इस विचार में क्यों कबध राक्षस के समान लडूं । अपने अवगुण से आप के गुण को देख और सुनकर हे रामजी ! बुद्धि और मन इस फन्दे में न पड़े तुलसी की स्थिति कहने का भाव और उनकी समझ को कौन बिना कृपालु राम के समझेगा ॥ २३९ ॥

जाको हरि दृढ़ करि अंग करेउ । सोइ सुशील पुनीत वेदविद विद्या गुणनि भरेउ ॥ उत्पति पाण्डुसुतन

की करणी सुनि सतपंथ डरेउ। ते त्रैलोक्य पूज्य पावन यश सुनि सुनि लोक तरेउ॥ जो निज धर्म वेदबोधित सो करत न कछु बिसरेउ। बिन अवगुण कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधरेउ॥ ब्रह्म विशिख ब्रह्माण्डदहन क्षम गर्भ न नृपति जरेउ। अजर अमर कुलिशहु नाहिन बध सो पुनि फेन मरेउ॥ विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगरेउ। उनको कियो सहाय बहुत उर को सन्ताप हरेउ॥ गणिका अरु कन्दर्प ते जग महँ अघ न करत उदरेउ। तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदिभवन धरेउ॥ केहि आचरण भलो मानैं प्रभु सो तो न जानि परेउ। तुलसिदास रघुनाथ कृपा को चितवत पन्थ खरेउ॥ २४०॥

रामजी ने जिसको दृढ़ता से स्वीकार किया वही सुशील पवित्र वेदों का जाननेवाला विद्या और गुणों से भरा हुआ है। पाण्डवों के जन्म कर्म को सुनकर उत्तम मार्ग भी डरते हैं। वे तीनों लोक में पूज्य और पवित्र हुए जिनका यश सुन २ के लोग तर गये। और जो अपना धर्म वेदों से जान के उसे करते हुए कुछ भी त्रुटि न हुई। बिना अवगुण के गिरागिट हो कुएं में पड़े कि हाथ पकड़ कर कृष्ण ही ने उद्धार किया। संसार को भस्म करने में समर्थ जो ब्रह्मबाण उससे गर्भ में राजा (परीक्षित) नहीं जले। और बज्र से भी अजर अमर अवध्य वृत्रासुर फिर भी फेना से मारा गया। ब्राह्मण अजामिल और इन्द्र से क्या बाकी जो न बिगड़ा हो उनकी अति सहायता करके हृदय के ताप का हरण किये। वेश्या और कामदेव से संसार में पापकरने से नहीं बचे उन्हें शुद्ध चरित्र समझ कर रामजी ने अपने चित्त

रूपी घर में स्थान दिया। किस चाल चलन से राम अच्छा मानते हैं यह तो जान हीं नहीं पड़ता तुलसीदास राम की कृपा को देखता हुआ उसी मार्ग में खड़ा है ॥ २४० ॥

सोइ सुकृती शुचि सांचो जाहि राम तुम रीझे। गणिका गीध बधिक हरिपुर गये ले काशी प्रयाग कब सीझे ॥ कबहुँ न डिग्यो निगममग ते पगनृगजग जानि जिते दुख पाये। गजधौं कौन दीक्षितजाके सुमिरत लै सुनाम वाहन तजि धाये ॥ सुर मुनि विप्र विहाय बड़े कुल गोकुल जन्म गोपगृह लीन्हों। बांयो दियो विभव कुरुपतिको भोजन जाइ विदुरघर कीन्हों ॥ मानत भलहि भलो भक्तनि ते कछुक रीति पारथहि जनाई। तुलसी सहज सनेह राम-वश और सबै जलकी चिकनाई ॥ २४१ ॥

वही पुण्यात्मा शुद्ध और सच्चा है हे रामजी! जिस पर तुम प्रसन्न हुए वेश्या जटायु बहेलिया भी वैकुण्ठ को गये। और कब काशी प्रयाग में जलशयन किया। राजा नृग के पैर वेद मार्ग से कभी नहीं हटे तोभी संसार जानता है जितने दुःख पाये। गजेन्द्र ने कौन यज्ञ किये जिसका नाम ले ध्यान करते सवारी छोड़ कर दौड़े। देवता मुनि ब्राह्मण उत्तम कुल छोड़ गोकुल में ग्वालों के घर जन्म लिया दुर्योधन के ऐश्वर्य का तिरस्कार करके विदुर के घर जाकर भोजन किया अच्छे भक्तों से भलाई ही मानते हो इसकी कुछ रीति अर्जुन को बतलाया है हे तुलसी! सादे प्रेमसे रामजी वश में होते हैं बाकी सभी जल के समान चिकने हैं ॥ २४१ ॥

तो तुम मोहू से शठनि हठि न गति देते। कैसहु नाम लेत कोउ पामर सुनि सादर आगे ह्वै लेते ॥ पाप खानि जिय जानि अजामिल यमगण तमकिताइता-

कोभेते । लिये छोड़ाय चले कर मींजत पोसत दांत गये रिसि रेते ॥ गौतमतिय गज गृध्र विटप कपि है नाथहि नीके मालुम तेते । तिन्ह तिन्ह काजनि साधु समाज तजि कृपासिन्धु तब तब उठि गेते ॥ अजहुं अधिक आदर यहि द्वारे पतित पुनीत होत नहिं केते। मेरे पासंगहुं न पूजिहैं ह्वै गये हैं होने खल जेते ॥ हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते । अब तुलसी पूतरो बांधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते ॥ २४२ ॥

तो तुम हमारे समान दुष्टों को हठ से मुक्ति नहीं देते। अब तक कैसाही कोई नीच नाम लेवे तो सुन के आदर से आगे से जा लेते थे। पापों की खानि मन में जान अजामिल को यमदूत क्रोधकर उसे बांध चुके थे। परन्तु उनसे उसे छुड़ा लिया, वह दूत हाथ मींजते दांत पीसते क्रोध से भरे खाली चले गये। अहल्या गजराज जटायु यमलार्जुन हनुमान आदि वे प्रभु को ही खूब मालूम है कि उनके काम में सज्जनों की सभा छोड़ दया निधिही तब तब उठके गये थे। और अब भी इस द्वार पर आदर अधिक है कि कितने भ्रष्ट पवित्र नहीं होते हैं। मेरे पसंगे में भी पूरे न होंगे। जितने दुष्ट कि हो चुके हैं होगें मैं अब तक तुम्हारी ही करतूत देखता था परन्तु आपने ध्यान नहीं दिया। अब तुलसी पुतला बांधेगा मुझसे इतनी हंसी सही नहीं जाती ॥ २४२ ॥

तुम सम दीनबन्धु दीन कोउ मो सम सुनहु नृपति रघुराई । मोसम कुटिल मौलिमणि नहिं जग तुम सम हरि न हरण कुटिलाई ॥ हौं मन वचन कर्म पातकरत तुम कृपाल पतितनि गतिदाई । हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथ हित चित यह सुरति कबहुं नहिं जाई ॥ हौं आरत आरतिनाशक

तुम कीरति निगम पुराणनि गाई। हौं सभीत तुम हरण सकल भय कारण कौन कृपा बिसराई ॥ तुम सुखधाम राम श्रमभंजन हौं यह अति दुखित त्रिविध श्रम पाई। जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु शरण समुझि प्रभुताई ॥२४३॥

तुम्हारे समान दीन दुखियों को हितकारी और मेरे समान गरीब दूसरा कोई नहीं है। हे राजा राम! सुनिये। मेरे सरीखा कपट का शिरोमणि संसार में नहीं और तुमारे समान छलको नाश करनेवाला कोई नहीं। मैं मन बचन कर्म से पापों में लगा हूं। हे रामजी! तुम पापियों को मुक्ति देते हो हे प्रभु! मैं अनाथ हूं और तुम अनाथों का उद्धार करनेवाले हो। यह ध्यान चित्त से कहीं न जावे, दुःखी मैं दुःखनाशक आपका यह यश वेद पुराणों ने गाया है मैं भय का स्वरूप हूं आप भय को नाश करनेवाले हैं फिर क्या कारण कि कृपा को भुला दिये। हे रामजी! आप आनन्द के धाम और श्रम के नाशक हो और मैं जन्म मरण से बड़ा दुःखी हूं। यह चित्त में जानकर प्रभु के प्रभुताई का ध्यान किया कि शरण अब में रख लीजिये ॥ २४३ ॥

यहै जानि चरणनि चित लायो। नाहिन नाथ अकारण को हित तुम समान पुराण श्रुति गायो ॥ जननि जनक सुत दारा बन्धुजन भये बहु जहँ तहँ हौं जायो। सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित काहू नहिं हरि भजन सिखायो ॥ सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर मैं तनु धरि सिर काहि न नायो। जरत फिरत त्रय ताप पापवश काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ॥ यत्न अनेक किमुख कारण हरिपद विमुख सदा दुख पायो। अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत विपति जाल जग छायो ॥ मो कहँ नाथ बूझिये यह गति

सुखनिधान निज पति बिसरायो। अब तजि रोष करहु करुणा हरि तुलसिदास शरणागत आयो ॥ २४४ ॥

यही समझ चरणों में मन लगाया है कि हे प्रभु! बिना कारण तुमारे समान हितैषी और कोई नहीं है यह पुराण और वेदों ने कहा है। जहां जहां से मेरा जन्म हुआ माता पिता पुत्र स्त्री भाई कुटुम्ब अनेक हुए परन्तु सब स्वार्थ के सखा मनमें कपट रूपी स्नेह भरा था, किसीने राम की सेवा नहीं बतलाई। देवता मुनि मनुष्य दैत्य सर्प किन्नरों को भी मैंने इस देह से सिर नहीं झुकाया वरन् पाप के वश हो तीनों ताप से जलता फिरा। परन्तु हे रामजी! किसीने कृपासे शान्त नहीं किया। सुख भोगने के लिये बहुत उपाय किये परन्तु रामजी के चरणों से विमुख हो सदा दुःखही भोगा। जैसे विना जलके नाव नहीं चलती तैसे ही देखता हूं कि संसार दुःख जाल से भरा है। हे प्रभु! मेरा यह हालत देखिये कि आनन्दस्वरूप अपने प्रभुको भुला दिया, अब हे रामजी! क्रोध छोड़ कर कृपा करिये तुलसीदास शरण में आया है ॥ २४४ ॥

याहि ते मैं हरि ज्ञान गंवायो। परिहरि हृदयकमल रघुनाथहि बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥ ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मर्म नहीं पायो। खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल परम सुगन्ध कहाँते धौं आयो ॥ ज्यों सर विमल वारि परिपूरण ऊपर कछु सिवार तृण छायो। जारत हियो काहि तजिहौं शठ चाहत यहि विधि तृषा बुझायो ॥ व्यापत त्रिविध ताप तनु दारुण तापर दुसह दरिद्र सतायो। अपनेहि धाम नाम सुरतरु तजि विषय बबूर बाग मन लायो ॥ तुम सम ज्ञान निधान

मोहि सम मूढ़ न आन पुराणनि गायो । तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥ २४५॥

इसी से तो हे राम जी ! मैं ज्ञान को खो बैठा कि हृदय कमल श्री रामजी को छोड़ बाहर व्याकुलता से दौड़ता फिरता हूं । जैसे मृग के अपनी देह में कस्तुरी है परन्तु अज्ञानता से भेद को नहीं पाता किन्तु पर्वत वृक्ष लता पृथिवी आदि के कन्दरों में ढूंढ़ता है कि अति सुगन्ध जानें कहां से आती है । जैसे तालाब स्वच्छ जल से भरा हो और सिवार तथा पत्ता आदि से ढका हो उस जल को छोड़ कर मैं मूर्खता से प्यास से हृदय को जलाता हूं इसी प्रकार प्यास बुझाना चाहता हूं । कठिन तीन प्रकार के ताप की तपन देहमें व्याप्त है उसमें भी असह्य लालच दुःख देता है अपने ही घर में कल्पवृक्ष रूपी नाम है उसे छोड़ कर बबूर की बगीचों में मन लगाया है । इससे आप के समान ज्ञान के निधि और मेरे समान मूर्ख दूसरा पुराणों ने नहीं कहा है इसलिये हे प्रभु ! तुलसीदास के लिये चित्त में समझ कर जो उचित हो वही करिये हे नाथ ! मन को भवना ऐसीही है ॥ २४५ ॥

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो । याके लिये सुनहु करुणामय मैं जग जन्म जन्म दुख रोयो ॥ शीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो । बहु भांतिन श्रम करत मोहवश वृथहि मन्दमति वारि विलोयो कर्म कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो । तृषावन्त सुरसरि विहाय शठ फिरि फिरि विकल अकाश निचोयो ॥ तुलसिदासप्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहि गोयो । डासतही गइ बीति निशा सब कबहुं न नाथ नींद भरि सोयो ॥ २४६ ॥

हे मूढ़ मन ! तूने मुझे बहुत बहकाया । हे दयावान् ! सुनिये

मैं इसके लिये संसार में जन्म २ दुखों से रोता फिरा और ठण्ढा मीठा तथा अमृत के समान स्वाभाविक आनन्द समीपही रहता हुआ मानों दूर खो बैठा। और अनेक तरह के परिश्रम करते अज्ञानता वश बिना प्रयोजन अज्ञानी मैं जल को मथता रहा। बुद्धि से कर्मों को कीचड़ के समान जानकर चित्त लगाकर उसमें उलटी बुद्धि रख मैले से ही मैला साफ किया चाहता हूं। प्यासा होकर गंगाजल छोड़कर मैं मूर्ख व्याकुल हो घूम घूम कर आकाश को निचोया। हे प्रभु! तुलसीदास पर अब कृपा करिये मैं अपने दोष को कुछ भी नहीं छिपाये, हे प्रभो! आसन बिछाते ही सारी रात बीत गई मैं नींद भर कभी नहीं सोया ॥ २४६ ॥

लोक वेदहूं विदित बात सुनि समुझि मोह मोहित विकल मति थिति न लहति। छोटे बड़े खोटे खरे मोटेहु दूबरे राम रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥ होती जो आपने वश रहती एकही रस दुना न हरष शोक सांसति सहति। चहतो जो जोइ जोइ लहतो सो सोइ सोइ केहु भांति काहु की न लालसा रहति ॥ कर्म काल स्वभाव गुण दोष जीव जग माया ते सो सभै भौंह चकित चहति। ईशनि दिगीशनि योगीशनि मुनीशनिहूं छोड़ति छोड़ायेते गहा-येते गहति ॥ शतरंज को सो राज काठ को सब समाज महाराज बाजी रची प्रथम न हति। तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ बहु वेष बहु मुख शारदा कहति ॥ २४७ ॥

लोक वेद से विदित बात सुन समझकर अज्ञान से मोहित व्याकुल बुद्धि स्थिर नहीं होती। नीच ऊँच दोषी निर्दोषी अमीर गरीब हेरामजी! आपके निबाहे निभ जाती। यदि अपने वश

होती तो एक समान बुद्धि रहती तो फिर संसार सुख दुःखकी पीड़ा को न सहता। जो जिसको चाहता वह उसको ही पाता है किसी प्रकार किसीकी इच्छा व्यर्थ नहीं जाती। कर्म काल स्वभाव गुण दोष जीव संसार माया से है वह माया उससे चकित हो तुम्हारी भौंह चाहती हुई ब्रह्मा इन्द्रादि और कपिलदेव आदि वसिष्ठ आदि को भी तुम्हारे छुड़ाने से छोड़ती पकड़ाने से पकड़ लेती है। इसका राज्य शतरंज के समान है कि सब सामान काठका (जड़) और महाराज [ब्रह्मत्व] की बाजी बनाई गई है। इसकी उत्पत्ति और नाश नहीं है। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभुके हाथही जीतना हारना है हे प्रभु! इस बातको अनेक रूप धारण करके अनेकों मुखसे सरस्वती जी कहती हैं ॥ २४७ ॥

राम भजु जीह जानि प्रीतिसों प्रतीति मानि राम-नाम जपे जैहै जियकी जरनि। राम नाम सों रहनि रामनाम की कहनि कुटिल कलिमल शोक संकट हरनि॥ राम नाम को प्रभाव पूजियत गणराव कियो न दुराव कही आपनी करनि। भवसागर को सेतु काशीहूं सुगति हेतु जपत सादर शम्भु सहित धरनि॥ बालमीकि व्याध हे अगाध अपराधनिधि मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि। रोक्यो विन्ध्य सोख्यो सिन्धु घटजहूं नामबल हान्यो हिय राखो भयो भूसुर डरनि॥ नाम महिमा अपार शेष शुक बार बार मति अनुसार बुध वेदहु बरनि। नामरति कामधेनु तुलसी को कामतरु रामनाम है विमोह तिमिर तरनि॥ २४८ ॥

समझ के जीभ से राम को जप विश्वास मान प्रेम से राम नाम जपने से जीव की जलन शान्त होगी। रामनाम में स्थिति

राम नाम में ध्वनि जो है वह विषम कलिकाल के दोष दुःख और क्लेशों को हरती है। राम नाम ही का प्रताप है कि गणेश जी पूजे जाते हैं इन्होंने कपट नहीं किया अपनी करणी कह दिये थे। नाम संसार समुद्र का सेतु है काशी में भी मुक्ति का कारण है शिवजी पार्वती सहित आदर से जपते हैं। बाल्मीकि बहेलिया थे और पापों के अगाध सागर थे उलटा नाम जपने से मुनि हुए और देवताओं ने उनकी पूजा की। अगस्त्य ने भी नाम के प्रताप से बिन्ध्यगिरि को रोका समुद्र को पीगये कि मनमें द्विज अगस्त्य के भय से समुद्र खारा हो गया। नाम का अनन्त माहात्म्य शेष नाग और शुकदेव ने अनेकों बार कहा और बुद्धि के अनुसार पण्डितों ने तथा वेदों ने वर्णन किया है। तुलसीदास को तो नाम का प्रेम कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान है रामजी का नाम अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने में सूर्य के समान है ॥ २४८ ॥

पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचन्द्र सुयश श्रवण सुनि आयो हौं शरण। दीनबंधु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुण दुसह दरप हरण ॥ जब जब जगजाल व्याकुल करम काल सब खल भूप भये भूतल भरण। तब तब तनु धरि भूमिभार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आश्रम वरण ॥ वेद लोक सब साखी काहूकी रती न राखी रावण की बन्दि लागे अमर मरण। ओकदै विशोक किये लोकपति लोकनाथ रामराज भयो धर्म चारिहु चरण ॥ शिला गुह गृध्र कपि भील भालु रातिचर ख्यालही कृपालु कीन्ह तारण तरण। पील उद्धरण शीलसिन्धु ढील देखियत तुलसी पै चाहत गलानिही गरण ॥ २४६ ॥

हेरामजी! रक्षा करिये ऐसा तीन बार कहा। हेमंगल स्वरूप से रमण करनेवाले राम! तुम्हारी कीर्ति कानों से सुनकर शरण

में आया हूं। हेदीनबन्धु! दीनता दरिद्रता ताप पाप दुःख दारुण भय और अभिमान का नाश करनेवाले हो। जब संसार माया से व्याकुल हुआ और कर्म तथा काल के अनुसार जब सब राजा दुष्टता से पृथिवी का पालनेवाले हुए तब तब आपने देह धारण कर पृथिवी का भार दूर किये और मुनि देवता सज्जन वर्ण आश्रम तथा धर्म को पालन किये इस में वेद और संसार साक्षी है किसी को कुछ भी नहीं रक्खी। रावण के कैदखाने में देवगण मरने लगे तो भरोसा देकर उन सबों को दुःख से छुड़ाये और दिक्पालों को अपने २ लोक का राजा बनाये। फिर राम राज्य में चारो चरण से धर्म खड़ा हो गया। अहल्या निषाद जटायु सुग्रीव शबरी जाम्बवान् विभीषण को खेलते से ही कृपालुने कृपा किया। तरण तारण गज का उद्धार करनेवाले शील के सागर तुलसीपर विलम्ब दिखाई पड़ता है वह तो निज की ग्लानि से ही गल जावेगा तब दर्शन देकर क्या करोगे ॥ २४९ ॥

भलीभांति पहिचाने जाने साहब जहांलों जग जूड़े होत थोरेहो थोरेहो गरम। प्रीति न प्रवीन नीतिहीन रीतिके मलीन मायाधीन सब किये कालहूं करम ॥ दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूढ़ चढ़े जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम। रीझि रीझि दिये वर खीझि खीझि घाले घर आपने निवाजे की न काहूके शरम ॥ सेवा सावधान तू सुजान समरथ सांचो सदगुणधाम राम पावन परम। सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहिं विदित विशेषि घट घटके मरम ॥ तोसों नत-पाल न कृपाल कंगाल मोसें दया में बसत देव सकल धरम। राम कामतरु छाँह चाहै रुचि मन माहँ तुलसी विकल बलि कलि कुधरम ॥ २५० ॥

संसार में जहां तक राजा हैं उन्हें अच्छी तरह जान पहचान लिया वे तो थोड़ेही में ठण्ढे और थोड़ेही में गर्म होजाते हैं

प्रीति में चतुर नहीं हैं। न्याय के बिना उनके कायदा साफ नहीं हैं समय और कर्म से माया सबको स्वाधीन किये है। दैत्यदानव जो श्रेष्ठ हुए वे महामूर्ख सिरपर चढ़े दिक्पालों को जीत लिया हे प्रभु! वह अपने बलमें भूल गये ब्रह्मा आदिने प्रसन्न होकर वर दान दिया फिर क्रोधकर के उस घर को नष्ट कर दिया परन्तु अपनी कृपा करने की किसीको लज्जा न आई। हे प्रभु! तुम्हीं सेवा को भली भांति जानते हो सच्चे समर्थ और अच्छे गुणों के धाम हो हे रामजी! अति पवित्र हो प्रसन्न मुखसे अच्छे रुखवाले सदा एकरस और एकरूप हो। तुम्हें अच्छी भांति घटघट के भेद मालूम हैं तुम्हारे बराबर गरीब निवाज दूसरा कोई नहीं है हे कृपालु! मेरे समान कंगाल भी नहीं है हे देव! सभी धर्म दयामें रहते हैं इसीसे बलि जाऊं तुलसीदास कलिके अधर्मसे व्याकुल है मनमें रुचिसे रामरूप कल्पवृक्ष की छाया चाहता है ॥ २५० ॥

तो हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न जो पै मोको होतो कहूं ठाकुर ठहर। आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम अवध शहर ॥ सेये न दिगीशन दिनेश न गणेश गौरी हितकै न माने विधि हरिऊ न हर। रामनामही सों योग क्षेम नेम प्रेमपण सुधा सों भरोसो यह दूसरो जहर ॥ समाचार साथ के अनाथनाथ कासों कहौं नाथही के हाथ सब चोरऊ पहर। निजकाज सुरकाज आरत के काज राज बूझिये विलम्ब कत कहुं न गहर ॥ रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों डरत हौं देख कलिकाल को कहर। कहेही बनेगी कै कहाये बलि जाउँ राम तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहर ॥ २५१ ॥

मैं तो बारम्बार प्रभुको पुकार कर कष्ट न देता हे स्वामिन्! जब कि मुझे कहीं जगह होती। मुझसे आलसी अभागियों को

हे रामजी ! तुम्हींने पालके पुष्ट किये इससे मेरे राजा तो राजा राम हैं और शहर अयोध्या है। न तो इन्द्रादि दिक्पालों की सेवा किये और न तो सूर्य गणेश पार्वती और न तो ब्रह्माको ही अच्छा समझा। और न तो शिव विष्णु को भी रामनाम ही से योग के नियम का कुशल होना प्रेमकी प्रतिज्ञा से इसीमें अमृत के समान भरोसा किया, दूसरे को जहर समझना हूं। हे अनाथों के नाथ! साथवाले सब चोर (कामादि) और पहरेवाले (बिचार आदि) प्रभुके हाथमें हैं किससे उनका हाल कहूं अपने काम देवताओं के काम और दुःखियो के काममें हे राजन् ! समझिये तो कहीं देरी नहीं की, फिर अब क्यों देर है। आपकी रीति सुनके विश्वास से प्रेम आपही में है पर कलियुग का कहरा देखके डरता हूं। बलि जाऊं हे राम ! कहतेही कहलाइये कि तुलसी तू मेरा है मनमें घबड़ा के हार मान मत हो ॥ २५१ ॥

राम रावरो स्वभाव गुण शील महिमा प्रभाव जान्यो हर हनुमान लषण भरत। जिनके हिये सुथल राम प्रेम सुरतरु लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ आप माने स्वामी के सखा सुभाइ पति ते सनेह सावधान रहत डरत। साहब सेवक रीति प्रीति परमिति नीति नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥ शुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं राम की भगति बड़ी विरत निरत। जाने बिनु भक्ति न जानिबो तिहारे हाथ समुझि सयाने नाथ पगनि परत ॥ छमत विमत न पुराण मत एक पथ नेति नेति नित निगम करत। औरन की कहा चली एकै बात भले भली रामनाम लिये तुलसीहु से तरत ॥ २५२ ॥

हे रामजी ! आपका स्वभाव गुण शील महिमा प्रताप इसको शिव हनुमान लक्ष्मण और भरत जानते हैं। जिन के हृदय रूपी अच्छे थाले में राम का प्रेमरूपी कल्पवृक्ष है ब्रह्मानन्द रूपी फल

और फूल लगे हुए हैं और आप तो प्रभु ! मित्र और भाई करके मानते हैं वे प्रभु करके प्रेम में शान्त रहते डरा करते स्वामी सेवक की अन्तिम मर्यादा यही है कि न्याय से नियम का निर्वाह एक समान होकर हटता नहीं शुकदेव सनकादि प्रह्लाद नारद आदि कहते हैं कि राम की भक्ति बहुत वैराग्य से होती है बिना जाने भक्ति नहीं जानना तुम्हारे हाथ है। हे प्रभु ! यही समझ के चतुर जन आपके चरणों में पड़ते हैं। छ शास्त्रों का एक मत नहीं है और पुराणों का मत भी एक मार्ग पर नहीं यह नहीं यह नहीं यह नहीं सत्य स्वरूप वेद कहा करता है तो दूसरी की क्या चलेगी, इससे एकही बात में भलाई है कि राम नाम के लिये से तुलसी के समान भी तर जाते हैं ॥ २५२ ॥

बाप अपने करत मेरी घनो घटि गई। लालची लबार की सुधारिये बारक बलि रावरी भलाई सबहीकी भली भई ॥ रोग वश तनु कुमनोरथ मलिन मन पर अपवाद मिथ्या वाद बाणी हई। साधन को ऐसी विधि साधन विना न सिधि बिगरी बनावै कृपानिधि कृपा नई ॥ पतितपावन हित आरत अनाथ न को निराधार को आधार दीनबन्धु दई। इनमें न एको भयो बुझि न जूझे न जयो ताही ते त्रिताप तयो लुनियत बई ॥ स्वांग सूधो साधुको कुचाल कलिते अधिक परलोक फांको मति लोकरँग रई। बड़े कुसमाज राज आजलों जो खोये दिन महाराज केहि भांति नाम ओट लई ॥ रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप मोको गति दूसरी न विधि निरमई। खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ २५३ ॥

हे पिता ! अपने से तो मेरी बहुत घटती हुई अब मुझ लोभी अन्यायी की बलि जाऊं एक बार बना दीजिये आपकी भलाई करने

से सभी की भलाई हुई है देह तो रोगों के वश में है और मन बुरी इच्छाओं से मैला है पराये दोष और झूठ कहने से वाणी मैली है। साधन की विधि तो ऐसी है और विना साधन के सिद्धि नहीं। इससे कृपानिधान की कृपाही बिगड़े हुए को नया बनावेगी। पतितों का उद्धार करेगी अनाथ और पीडितों की पीड़ाको हरेगी। बिना आधार को दीनबन्धु ने आधार दिया पर इनमें मैं एक भी न हुआ समझ के इनसे न लड़ा और न जीता इससे तीनों तापों से तपता हू जैसे बोया वैसे काटता हूं। वेष तो सीधे साधुके समान और कुचाल कलियुग से भी अधिक परलोक से फीकी बुद्धि और संसार के रंग से रंगी है। बड़े कुसमाज सामान का राज्य है जो दिन आजतक बीते व्यर्थ हे राजन्! किसी प्रकार अब नाम की आड़ लिया है। और राम नाम का प्रभाव आप अच्छी तरह जानते हैं मुझे दूसरी शरण भी ब्रह्माने नहीं बनाई। नाराज होने लायक काम मेरे करोड़ करोड़ खराब हैं। और प्रसन्न होने योग्य तुलसी की निर्लज्जता है ॥ २५३ ॥

राम राखिये शरण राखि आये सब दिन। विदित त्रिलोक तिहूं काल न दयाल दूजो आरत प्रणतपाल को है प्रभु बिन ॥ लाले पाले पोषे तोषे आलसो अभागी अघी नाथ पै अनाथनि सो भये न उऋन। स्वामी समरथ ऐसो हों तिहारो जैसो तैसो काल चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥ रीझि खीझि बिहँसि अनख क्योहूं एक बार तुलसी तू मेरो बलि कहियत किन। जाहिं शूल निरमूल होहि सुख अनुकूल महाराज राम रावरो सों तेहि छिन ॥ २५४ ॥

हेरामजी! शरण में रखिये सब गरीबों को रख आये हो। तीनों लोक में जाहिर है तीनों काल में दूसरा दयालु गरीब शरण आये गरीबों का रक्षक प्रभु के बिना कौन है। आलसी अभागी पापियों को प्यार से पालनेवाले पुष्ट और सन्तुष्ट किये परन्तु हेप्रभु! अनाथों से उऋण नहीं हुए हो। स्वामी तो ऐसे समर्थ

और मैं तो जैसे तैसे तुम्हारा हूं। समय की चाल देख मनमें बड़ी लज्जा होती है खुशी ना खुशी हँस के और क्रोध से किसी प्रकार एक बार बलि जाऊं तुलसी ! तू मेरा है क्यों नहीं कहते हो। हे राजन् राम ! आपकी सौगन्ध उसी क्षण जड़ सहित पीड़ा नष्ट हो जावे और सब सुख सामने आ जावे ॥ २५४ ॥

राम रावरो नाम मेरो मातु पितु है। सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद रामनाम प्रेम अविचल बितु है ॥ शत कोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि वामदेव राम नाम घृतु है। नाम को भरोसो बल चारिहूं फल को सुमिरिये छांड़ि छल भलो क्रतु है ॥ स्वारथ साधक परमारथ दायक नाम रामनाम सारिखो न और हितु है। तुलसी स्वभाव कही सांचिये परैगा सही सीतानाथ नाम नित चतहूं को चितु है ॥ २५५ ॥

हे रामजी ! आपका नाम मेरा माता पिता है। परिवार प्रेमी गुरु स्वामी मित्र सज्जन और अचल धन रामनाम का प्रेमही है शिवने सौ करोड़ राम को अनन्त चरित्र दही के समुद्र को मथ के नाम रूपी घी को निकाल लिया है, नामका भरोसा और बल चारों फलों का फल है कपट को छोड़ कर ध्यान करिये यही उत्तम यज्ञ है। नामही स्वार्थ और सिद्धि को देनेवाला है रामनाम के बराबर दूसरी भलाई नहीं है। तुलसी ने तो स्वभाव से ही कहा परन्तु सत्यही सत्य होगा कि रामनाम सदैव चित्त को चिद्रूप है ॥ २५५ ॥

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है। सुमिरि त्रिविध धाम हरत पूरत काम सकल सुकृत सरसिजको सर है ॥ लाभहू को लाभ सुखहू को सुख सरबस पतित पावन डरहू को डर है ॥ नीचेहू को ऊंचेहु को रंकहू को रायहू को सुलभ

सुखद आपनो सो घर है ॥ वेदहूं पुराणहूं पुरारिहूं पुकारि कह्यो नाम प्रेम चारि फलहू को फर है। ऐसे राम नाम सों न प्रीति न प्रतीति मन मेरे जान जानिबो सोई नर खर है॥ नाम सों न मातु पितु मीत हित बन्धु गुरु साहब शुभी सुशील सुधाकर है। नाम सों निबाह नेह दीनको दयालु देह दासतुलसीको बलि बड़ो वर है ॥ २५६ ॥

हे राम! आपका नाम सज्जनों को कल्पवृक्ष है ध्यान करते ही तीनों ताप दूर होकर इच्छा पूर्ण होती है। सब पुण्य रूप कमलों को तालाब है। लाभ को भी लाभ है सुख को भी सुख पतितों को पवित्र करनेवाला भय का भी भय स्वरूप है। नीचों को ऊंचों को गरीबों को राजाओं को सरलता से प्राप्त सुख देनेवाले अपने घर समान है। वेद और पुराणों ने तथा शिवजी ने भी पुकार कर कहा है कि नाम का प्रेम चारों फलों का फल है ऐसे राम नाम से जिसके मनमें न प्रेम हो न विश्वास हो मेरी समझ में उसी को जानिये कि गदहा है। नाम के समान माता पिता मित्र बन्धु गुरु स्वामी शुभचिन्तक शीलवान् चन्द्रमा यह सब कोई नहीं हैं। हे दीनदयालु! बलि जाऊं तुलसीदास का बड़ा वरदान यही है कि नाम से प्रेम का निर्वाह हो यही दो ॥२५६॥

कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम रस न रहत। तुमसे सुसाहब की ओट जन खोटो खरो काल की करम की कुसांसति सहत ॥ करत विचार सार पैयत न कहूं कछू सकल बड़ाई सब कहां ते लहत। नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर हेरिकै हारि हहरि हृदय दहत ॥ सखा सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप माय बाप तुहीं सांची तुलसी कहत। मेरी तो थोरी है सुधरेगो बिगरियो बलि राम रावरी सों रही रावरो चहत ॥ २५७ ॥

हेरामजी ! कहने से रस नहीं रहता तो भी बिना कहे रहा नहीं जाता । तुम ऐसे प्रभु की आड़ ले यह सेवक बुरे समय की और कर्म की व्यथा का सहन करता है । बिचार करने से तो मत्व कहीं कुछ भी नहीं मिलता ।पूर्ण उत्तमता सब को कहां से मिलती प्रभु का माहात्म्य सुन और समझ कर अपनी ओर देख के हार और घबड़ा के हृदय जलने लगता है मित्र ! अच्छा सेवक नहीं है । न अच्छी स्त्री और न स्वामी आपही माता पिता हो और तुमहीं से तुलसी सच्चा कहता है मेरी तो थोड़ी इज्जत है बने या बिगड़े परन्तु बलि जाऊं रामजी ! आपकी सौगन्ध आपही की इज्जत रखना चाहता हूं ॥ २५७ ॥

दीनबंधु दूरियो किये दीन को न दूसरो शरण । आप को भलो है सब आपने को कोऊ कहूं सबको भलो है राम रावरे चरण ॥ पाहन पशु पतंग कोल भोल निशिचर कांचते कृपानिधान किये सुवरण । दण्डक पुहुमि पायँ परसि पुनीत भई उकटे विटप लागे फूलन फरण ॥ पतितपावन नाम वामहूं दाहिनो देव दुनों न दुसह दुख दूषण दरण । शील-सिंधु तोसों ऊंची नोचियो कहत शोभा भलो तोसों तुही तुलसी की आरतिहरण ॥ २५८ ॥

हे रामजी ! दूर करने पर भी गरीबों को दूसरी गति नहीं है । अपना को भला करनेवाला तो सब है और अपने नौकर आदिका कोई ही कहीं है । हे रामजी ! परन्तु सभी की भलाई आपके चरणहीं में हैं । अहल्या सुग्रीव जटायु केवट शबरी विभीषण इन्हें कृपानिधान ने कांचसे सोना बना दिया । और दण्डकवनकी भूमि चरण छूके पवित्र होगई । सत्वहीन वृक्षभी फूलने फलने लगे । पतितों को पवित्र करनेवाला आपका नाम है असाधुको भी साधु बनानेवाले हो हे देव ! संसार में फिर कठिन दुःख नहीं होते किन्तु दोषों को नष्ट कर देता है । हे शीलसागर ! तुमसे

भला बुराभी कहने में शोभा ही है क्योंकि तुलसी के दुख हरने वाले तुमारे समान तुम्हीं भले हो ॥ २५८ ॥

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरिहौं । करत यतन जासों जोरिये को योगीजन तासों क्योंहू जुरी सो अभागो बैठे तोरिहौं। मोसे दोष कोष को भुवन कोष दूसरो न आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरिहौं । गाड़ी के श्वानकी नाईं माया मोह की बड़ाई क्षणहिं तजत क्षण भजत बहोरिहौं । दूरि कीजै द्वारते लबार लालची प्रपंची सुधासो सलिल शूकरी ज्यों गृहडोरिहौं ॥ राखिये नीके सुधारि नीचको डारिये मारि दुहूं ओर को विचारि अब न निहोरिहौं । तुलसो कही है सांची रेख बारबार खांची ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥ २५९ ॥

समझ बूझ के मैं ही भुलाया हूं । हेरामजी ! इतना तो अहंकार से ढीठ होके उलटा दोष देता हूं योगीजन जिससे योग करने का उपाय करते हैं उससे कैसाही योग है भी उसे अभागी मैं बैठे तोड़ना चाहता हूं । हा! मेरे समान दोषों का घर ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है । अपनी समझ बूझ भर मैं ढूंढ़ आया हूं । गाड़ी के पीछे चलते कुत्ते की तरह माया मोह की ज्यादती को क्षण भर में छोड़ता और क्षण में फिर सेवन करता हूं । प्रभु का बड़ा शत्रु हूं मेरी बराबरी का दूसरा नहीं है । प्रभु का करोड़ों सौगन्ध किये कहता हूं मुझे दरवाजे से हटा दो अन्यायी लोभी और द्वैतबुद्धी हूं । अमृत के समान जल को सुअर की भांति गदीला करता हूं। इससे अच्छे प्रकार सीधा करके राखिये । नहीं तो नीच को मार डालिये दोनों ओर सोच लो अब नहीं कहूंगा । बारबार रेखा खींच के तुलसी ने यह सच कह दिया कि देरी करने से नाम की महिमा रूपी नाव को डुबा दूंगा ॥ २५९ ॥

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरेगो मेरी कहौ बलि वेद किन लोक कहा कहैगो। प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव दुहू भांति दीनबन्धु दीन दुख दहैगो ॥ मैं तो दियो छाती पवि लयो कलिकाल दवि सांसति सहत परवश को न सहैगो। बांको बिरदावलि बनैगो पालेही कृपालु अन्त मेरो हाल हेरो यों न मन रहैगो ॥ करमी धरमी साधु सेवक विरत रत आपनो भलाई थल कहां को न लहैगो। तेरे मुँह फेरे मोसों कायर कपूत कूर लटे लटपटनि को कौन परिगहैगो ॥ काल पाय फिरत दशा दयालु सबही को तोहि बिनु मोहिं कबहूं न कोऊ चहैगो। बचन करमहिये कहौं राम सौंह किये तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥ २६० ॥

आप के बनाने से भी जो मेरे बिगाड़ने से बिगाड़ेगा तो बलि जाऊं कहिये वेद अथवा संसारही क्या न कहेगा। प्रभु का उदासीन होना और सेवक में पापों का प्रभाव पड़ना दोनों भांति से हेराम! गरीब दुःखों से जलेगा, मैंने तो स्वयं छाती में पत्थर लगा लिया उस पर भी कलि ने दबा लिया कि पीड़ा सहता हूं पराधीन होकर कौन नहीं सहन करूंगा। आपकी कीर्ति बड़ी है हेदयालु! रक्षा करते ही बनैगी। आखिर मेरा हाल देख ऐसा मन नहीं रहेगा, कर्म सेवी धर्मिष्ठ सज्जन भक्त वैराग्य में लगे हुए अपनी भलाई की जगह कहां कौन पावैंगे व तुम्हारे मुंह से मेरे सदृश कायर कुपुत्र दुष्ट भ्रष्ट आदि निकम्मे को कौन स्वीकार करेगा। समय पाके तो सभी की दशा पलटती है परन्तु हेदयालु! बिना तुम्हारे मुझे कोई भी नहीं चाहेगा। हेरामजी! मन बचन कर्म से सौगन्ध करके कहता हूं कि तुलसी का तो प्रभु के निबाहे निबहेगा ॥ २६० ॥

साहब उदास भये दास खास खोस होत मेरी कहा चला हौं बजाय जाय रह्यो हौं। लोक में न ठाऊं परलोक को भरोसो कौन हौं तो बलिजाऊं रामनाम ही ते लह्यो हौं॥ करम स्वभाव काल काम कोह लोभ मोह ग्राह अति गहनि गरोब गाढ़े गह्यो हौं। छोरिबे को महाराज बांधिबे को कोटि भट पाहि प्रभु पाहि तिहुं पाप ताप दह्यो हौं॥ रीझि बूझि सबकी प्रतीति प्रीति येहि द्वार दूध को जरयो पियत फूंकि २ मह्योहौं। रटत २ लटयो जाति पांति भांति घटयो जूठनि को लालची चहा न दूधौ घ्योहौ॥ अनत चह्यों न सुपथ सुचाल चलयो नीके जिय जानि इहां भलो अनचह्यौ हौं। तुलसो समुझि समुझायो मन बारबार अपनो सों नाथहूं सों कहि निरबह्यो हौं॥ २६१॥

प्रभु की उदासीनता से खास सेवक की हानि होती है। मेरी क्या चलेगी मैं तो डंका दे जाता हूं। संसार में स्थान नहीं स्वर्ग का भरोसा ही क्या मैं तो हे रामजी! बलिजाऊं नाम ही से भरोसा पाया था। कर्म स्वभाव काल काम क्रोध लोभ मोह रूप गरीब दृढ़ पकड़ा हुआ हूं। छुड़ने को तो राजन्! आप और बांधने को करोड़ों बार हैं। हे प्रभु! रक्षा करो तीनों ताप और पापों से जल रहा हूं सबकी प्रसन्नता जान चुका अब इसी द्वार पर प्रेम और विश्वास है तौ भी दूध का जला मठा फूंक फूंक पीता हूं कहते कहते थक गया जाति की पंगति इज्जत भी कम हो गई जूठा खाने को ललचा हूं दूध घी नहीं चाहता, दूसरी जगह चाहा जाऊं तो भी उचित नहीं। अनचाहे भी अच्छा हूं यह चित्त में उत्तम समझ कर मनको बारबार समझाया और स्वयं भी प्रभु से कह के पार हो चुका॥ २६१॥

मेरी न बने बनाये मेरे कोटि कल्प लौं राम रावरे बनाये

बने पल पाउ मैं। निपट सयाने हौ कृपानिधान कहा कहौं लिये बेर बदलि अमोल मणि आउं मैं॥ मानस मलीन करतब कलिमलपीन जीहहू न जप्यो नाम बक्यो आउ बाउ मैं। कुपथ कुचाल चल्यो भयो न भूलिहू भलो बालदशाहू न खेल्यो खेलत सुदाउं मैं॥ देखीदेखा दम्भते कि संग ते भई भलाई प्रकटि जनाई कियो दुरित दुराउ मैं। राग रोष दोष पोष गोगण समेत मन इनकी भगति कीन्हीं इनही को भाउ मैं॥ आगिलो पाछिलो अबहीं को अनुमान ही ते बूझियत गति कछु कीन्हों तो न काउ मैं। जग कहे राम को प्रतीति प्रीत तुलसीहू झूठे सांचे आश्रय साहब रघुराउ मैं॥२६२॥

करोड़ो युगों तक मेरे बनाये से मेरी न बनेगी। हे रामजी आपके बनाने से मैं पाव पलमें बन जाऊंगा। आप बड़े चतुर हो हे दयानिधि! क्या कहूं अमूल्य रत्न के समान उसको मैं न बदल के देरकी मन तो मैला और कलियुग के पापों सा भरा जीभ से भी नाम का जप नहीं हुआ। व्यर्थही मैं बकता रहा कुमार्ग में बुरी चाल चली भूल से भी भलाई नहीं हुई। लड़कपन में खेलते हुए मैंने निश्छल खेल नहीं खेली दूसरों को देख पाखण्ड से या संग से जो भलाई हुई उसे तो कहके प्रसिद्ध किया और पापों को मैंने छिपा रखा राग द्वेष आदि दोषों को पुष्ट किया, इन्द्रियों के सहित इसी की भक्ति किया और इन्हीं की भावना किया। पहिले पीछे और अब के भी अनुमान से सोचता हूं तो कुछ भी गति कोई तो मैंने नहीं किया परन्तु संसार राम का कहता है इससे तुलसी का भी विश्वास और प्रेम है कि झूठा सच्चा जो हो परन्तु मेरा भरोसा प्रभु में ही है॥ २६२॥

कह्यो न परत बिनु कह्यो न रह्यो परत बड़ो सुख कहत बडे सों बलि दीनता। प्रभुकी बड़ाई बड़ी आपनी

छोटाई छोटी प्रभु को पुनीतता आपनी पापपीनता । दुहूं ओर समुझि सकुचि सहमत मन सम्मुख होत सुनि स्वामी समीचीनता । नाथ गुणगाथ गाय हाथ जोरि माथ नाये नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥ यहि दरबार है गरब ते सरब हानि लाभ योग क्षेम को गरीबी मिसकीनता । मोटो दशकंध सों न दूबरो विभीषण सों बूझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता ॥ यहां की सयानप अयानप सहस सम सूधो सतिभाय कहे मिटती मलीनता । गृध्र शिला शबरी की सुधि सब दिन किये होयगी न सांई सो सनेह हित-हीनता ॥ सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु सुमिरत होत कलिमल छल छीनता । करुणानिधान बरदान तुलसी सीतापति भक्ति सुरसरिनीर मीनता ॥ २६३ ॥

यद्यपि कहना नहीं पड़ता परन्तु बिना कहे रहा भी नहीं जाता बलिजाऊं बड़ों से गरीबी कहने में सुख होता है । कहां प्रभु की बड़ाई और कहां मेरी छोटाई कहां प्रभु की पवित्रता और कहां मेरी पापिष्ठता यह दोनों ओर समझ के संकोच से मन सूखता है परन्तु प्रभु की भलाई सुन सन्मुख होता है कि प्रभु के चरित्र को कहने से और हाथ जोड़ कर सिर झुकाने से नीचों का भी उद्धार हुआ । यह प्रीति की रीति की सुजनता है इस सभा में घमंड से पूरी हानि है और गरीबों तथा सीधे पन से योग और क्षेमका लाभ होता है। रावण के समान घमंडी न था और विभीषण के समान गरीब इसी से प्रेम की पराधीनता समझ पड़ी है । यहां की होशियारी हजार ना समझी के बराबर है सीधे सच्ची बात कहे तो मैल दूर हो जाती है । जटायु अहल्या शबरी की याद सब दिन किये रहते हो प्रेम से भलाई हानी न होगी तुम्हारा नाम कल्पवृक्ष है ध्यान करते ही सब कामना

सिद्ध होता है कलि के पाप और छल नष्ट हो जाते हैं। हे दया-निधान! तुलसी रामकी भक्ति रूपी गंगा जीके जल में मछली होने का वरदान पाया है ॥ २६३ ॥

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन जीयकी। रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेम नेम लियो रुचिर रहनि रुचि गति मतितीयकी ॥ दुष्कृत सुकृत वश सबही सों सङ्ग पर्‌यो परखि पराई गति आपनेहूं कीयकी। मेरे भले को गोसाईं पोचको सकुच भाव हौं हूं किये कहौं सौंह सांचो सीय पीयकी ॥ ज्ञानहूं गिराके स्वामी बाहर अन्तर्यामी यहां क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीयकी। तुलसी तिहारो तुमहीं पै तुलसी के हित राखिकै कहेते कछु ह्वै हैं माखी घीयकी ॥ २६४ ॥

हे प्रभु! सेवक के मन की ठीक अच्छी तरह जानते हो मन बुद्धिरूपी स्त्री के नेक चलनी और अच्छी शरणरूपी पति आप ही के भरोसे प्रेम का नियम लिया है। पाप और पुण्य के आधीन होकर सभी से संगति हुई उसमें दूसरे के हाल देखे और अपने भी किये कि प्रभु मेरा लाभ करने को हैं मैं सब बात से नीच हूं सत्यही सीता पति की सौगन्ध खाकर मैं कहता हूं, तुम बाणी और ज्ञान के भी स्वामी हो बाहर भीतर की सब हाल जानते हो मुख की और हृदय की बात क्यों छिपेगी। तुलसी तुम्हारा है और तुम्हीं से तुलसी की भलाई है यदि कुछ छिपा कर कहूं तो घी की मक्खी होऊं ॥ २६४ ॥

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहिं करि सो। चारिहुं विलोचन विलोक तु तिलोक महँ तेरो तिहुं काल कहुं को है हितु हरिसो ॥ नये २ नेह अनुभये देह गेह बस परिखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। सुहृद समाज दगाबाजही को सौदा सत जब जाको काज

तब मिलो पायँ परि सो ॥ बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके देत एक गुण लेत कोटि गुण भरि सो। करम धरम श्रम फल रघुवर बिनु राख को सो होम है ऊसर को बरिसो ॥ आदि अन्त बीच भलो भलो करै सबही को जाको यश लोक बेद रह्यो है बगरि सो। सीतापति सारिखो न साहब शीलनिधान कैसे कल परै शठ बैठो सो बिसारि सो ॥ जीव को जीवन प्राण प्राण को परमहित प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो। तुलसी तोको कृपाल जो कियो कोशलपाल चित्रकूट को चरित्र चेतु चितकरिसो ॥ २६५ ॥

मेरा कहना सुन और तुझे अच्छा लगे वह कर। चारों आंख भीतर से तू तीनों लोक में देख, तीनों काल में कहीं तेरा हित कारी रामके समान कौन है। देह और घरमें बास करके नये नये प्रेम पीछे से हुए और वह पहचाने गये तो छलका प्रेम उभड़ गया मित्र समाज दगाबाजी काव्यबहार करते जब किसी का काम हो तब मिलकर पैरौं पड़ते। देवता भी चतुर क्या अच्छी तरह पहिचाना नहीं वह एक गुणा देते हैं तो करोडों गुनाभर लेते हैं इससे विना राम कर्म धर्मका फल परिश्रमही है। जैसे राख में हवन और ऊषर में वर्षा रामजी पहिले पीछे बीचमें सभी का भला करते हैं जिसका यश लोक वेदमें फैल रहा है। रामके सदृश शील का स्थान प्रभु नहीं है, रेमूर्ख! कैसे कल पड़ती है उसे भूल के बैठा है। जीवों को जिलानेवाला प्राण है और प्राणोंका परम हितकारी है। नीचों को पवित्र करनेवाला है उस परम प्रियका निरादर करता है। हे तुलसी! तुझे कृपालु रामने जो किया याने चित्रकूट के ध्यान धारण कर उसे विचार करो ॥ २६५ ॥

तन शुचि मन रुचि मुख कहौं जन हौं सियपीको। केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होय नाथ सों नातो नेह न नीको॥ जल चाहत पावक लहौं विष होत अमी को। कलि कुचाल सन्तनि कही सोइ सही मोहिं कछु फहम न तरनि तमीको॥ जानि अन्ध अञ्जन कहै वनबाधिनि घी को। सुनि उपचार विकारको सुविचार करौं जब तब बुद्धि बल हरै हीको॥ प्रभु सों कहत सकुचत हौं परौं जनि फिरि फीको। निकट बोलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जी को॥ २६६॥

शुद्ध देह और मन की इच्छा से और मुख से कहता हूं कि राम का सेवक हूं। परन्तु नहीं जानता कि क्या अभाग्य है, जो प्रभु से अच्छी तरह प्रेम का संबंध नहीं होता तो चाहता जल और मिलती आग अमृत का विष होता है कलि के बुरे चालवाले सज्जनों ने कहे हैं वे ठीक हैं। मुझे सूर्य और अंधेरे का बिचार कुछ नहीं है। मुझे अन्धा जानकर बन की शेरनी के घीका आंजन बतलाता है। रोग का यह प्रयत्न सुनकर जब सोचता हूं तब बुद्धि घट जाती है। यह प्रभु से कहते सकुचता हूं कि फीका न होजाऊं बलि जाऊं कि पास बुला के डाट दीजिये कि अब जड़ जीव तुलसीदास का ख्याल छोड़ देवे॥२६६॥

ज्यों २ निकट भयो चहौं कृपालु त्यों २ दूरि पन्यो हौं। तुम चहु युग रस एक राम हौं हूं रावरो यदपि अघ अवगुणनि भन्यो हौं॥ बीच पाइ नीच बीचही छरनि छन्योहौं। हौं सुवरण कुवरण कियो नृपते भिखारि करि सुमतिते कुमति कन्यो हौं॥ अगणित गिरि कानन फिन्यो

बिनु आगि जऱ्योहौं । चित्रकूट गये मैं लखी कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डऱ्योहौं माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खऱ्योहौं । चीन्हो चोर जिय मारि है तुलसी सो कथा सुनि पभुसों मुदरि बऱ्योहौं ॥ २६७ ॥

जिस जिस प्रकार पास आना चाहता हूं उसी २ भांति दूर चला जाता हूं । हेरामजी ! तुम चारों युग में एक समान हो और मैं हीं आपका हूं । यद्यपि पाप और दोषों से भरा हूं । नीच ने फरक पाके बीचही में छल से छल लिया है । मुझ सुवर्ण को दुर्वर्ण कर दिया राजा से भिखारी बनाकर सुबुद्धि से कुबुद्धि कर दिया गया हूं । अन गिनति पर्वत बन घूमे और बिना आग के जलता रहा जब मैं चित्रकूट गया तो देखा कि कलि की सब बुरी चाल है, अब बुरे चाल से डरता हूं सिर झुका कर प्रभु से कहता हूं और हाथ जोड़े खड़ा हूं कि पहचान लेने से चोर प्राणसहित मार डालता है तुलसी वह कथा सुन प्रभु से गुजारिश कर निपट चुका ॥ २६७ ॥

प्रण करि हौं हठि आजते राम द्वार पऱ्यो हौं । तू मेरो यह बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि प्रभुकी सौं करि निबऱ्यो हौं ॥ दै दै धक्का यमभट थके टारे न टऱ्योहौं । उदर दुसह सांसति सही बहुबार जनमि जग नरक निदरि निकऱ्योहौं ॥ हौं मचला लै छाड़ि हो जेहि लागि अर ेहौं । तुम दयालु बनिहै दिये बलि बिलम्ब न कीजिये जात गलानि गऱ्यो हौं ॥ प्रकट कहत जो सकुचिये अपराध भऱ्योहौं । तौ मनमें अपना-इये तुलसिहि कृपाकरि कलि विलोकि हहऱ्योहौं ॥२६८॥

मैं प्रण कर हठ से आज मैं हेरामजी ! द्वारपर पड़ा हूं तू मेरा

है यह बिना कहे जन्म भर नहीं जाऊंगा। प्रभु की सौगन्ध खाकर निपट चुका हूं यमदूत भी धक्का देते थक गये मैं हटाये नहीं हटा गर्भ की कठिन पीड़ा भी सही संसार में अनेक बार जन्म ले नरक को भी तुच्छ कर आया हूं। मैं मचला हूं लेकर ही छोडूंगा जिसके लिये हठ करता हूं तुम कृपालु हो देते ही बनेगा बलि जाऊं देर न करिये। ग्लानि से गला जाता हूं। जो खुल के कहने में संकोच हो क्योंकि मैं पापों से भरा हूं तो तुलसी को कृपाकर मनमें ही अपना कर लो कलियुग को देख सखता हूं॥ २६८॥

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै। जेहि स्वभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथसों नेह छांड़ि छल करिहै॥ सुत की प्रीति प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै॥ अपनो सो स्वारथ स्वामी सो चहुं बिधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै। हरषि है न अति आदरै निदरै न जरि मरि है॥ हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलिकुचाल परिहरि है॥ प्रभु गुण सुनि मन हरषि है नीर नयननि ढरिहै। तुलसिदास भयो रामको वश्वास प्रेम लखि आनन्द उमँगि उर भरिहै॥ २६९॥

तुमनें अपना लिया है। यह समझूंगा जब कि मन लौट पड़ेगा। जिस स्वभावसे मन विषयों में लग रहा है छलको छोड़ कर उसी अभ्यास से प्रभु से प्रेम करेगा तब जानूंगा पुत्र के समान प्रेम होगा मित्र के समान विश्वास होगा राजा के समान भय होगा अपना वह स्वार्थ चारों प्रकार प्रभु से ही हो और पपीहा के समान एक ध्वनि हो उससे हटे नहीं। बहुत आदर से प्रसन्नता न हो और निरादर से जल न मरे। हानि लाभ सुख दुःख सभी में चित्त बराबर हो। शत्रुता मित्रता और कलियुग का कुचाल छोड

देवे और प्रभु के गुणोंको सुनकर मन प्रसन्न हो आनन्द से आंखों से आंसू बहें, तब तुलसीदास प्रेम देख के विश्वास करेगा कि राम का हुआ और आनन्द की लहरें हृदय में भरेंगी ॥ २६९ ॥

राम कबहुं प्रिय लागि हौ जैसे नीर मीन को। सुख जीवन ज्यों जीवको मणि ज्यों फणिको हित ज्यों धन लोभलीन को ॥ ज्यों स्वभाव प्रियलगति नागरी नागर नवीन को। त्यों मेरे मन लालसा करिये करुणाकर पावन प्रेम पीन को ॥ मनसा को दाता कहैं श्रुतिप्रभु प्रवीन को तुलसिदास को भावतो बलि जाऊँ दयानिधि दीजे दान दीनको ॥ २७० ॥

हे रामजी ! कभी प्यारे लगोगे, जैसे मछली को जल और जीव को सुखसे जीवन और जैसे सर्प को मणि में प्रेम जैसे लोभ में आसक्त को धन जैसे नवीन युवा पुरुष को स्वभाव से ही स्त्री प्यारी लगती है। वैसेही कृपा करके मेरे मन में दृढ़ता से शुद्ध प्रेमकी इच्छा कीजिये। वेदतो चतुर प्रभु कोही मनोकामना को देनेवाले कहते हैं बलि जाऊं हे रामजी ! तुलसीदास की इच्छानुसार दान दो ऐसा गरीब दूसरा कोई नहीं है॥२७०॥

कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहूं चितैहो। भलो बुरो जन आपनो जियजानि दयानिधि अवगुण अमित वितैहो॥ जन्म २ हौं मन जित्यो अब मोहिं जितैहौं। हौं सनाथ ह्वैहौ सही तुमहूं अनाथपति ज्यों लघुतहि न भितैहो ॥ विनय करौं अपभयहु ते तुम परम हितैहो। तुलसिदास कासो कहै तुमहों सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितैहो ॥२७१॥

कभी कृपा करके हे राम ! मुझे भी देखोगे । भला बुरा अपना सेवक मनमें समझ के हे राम ! असंख्य दोषों को दूर करोगे जन्म जन्म तो मनने जीत लिया अब मुझे भी जिताओगे

मैं तो सनाथ होऊंगा तुम भी ठीक अनाथों के स्वामी हो आगे जो निचाई से नहीं डरोगे। बुरे भयसे बिनती करता हूं तुम परम हितकारी हो फिर तुलसीदास किससे कहे तुम्हीं तो मेरे स्वामी हो और गुरु पिता माता सब कुछ हौ ॥ २७१ ॥

जैसो हौं तैसो हौं राम रावरो जनि परिहरिये। क्षमासिन्धु कोशलधनी शरणागत पालक ढरनि आपनि ढरिये ॥ हौं तो बिगरायल और को बिगरो न बिगरिये। तुम सुधारि आये सदा सबकी सबहि विधि अब मेरियो सुधरिये ॥ जन हँसिहैं मेरे संग रहे कत यहि डर डरिये। कपि केवट कीन्हे सखा जेहि शील सरल चित तेहि स्वभाव अनुसरिये ॥ अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिये। टूट्यो बांह गरे परै फूटेहू विलोचन पीर होत हित करिये ॥ २७२ ॥

जैसा हूं वैसा हूं हे राम! आपही का सेवक हूं छोड़िये मत हे दयानिधान! अवधराज राम! शरण आये को रक्षा करते हो। अपनी ही चाल चलिये, मैं तो बिगड़ा हुआ दूसरों का हूं बिगड़े को मत बिगाड़िये। क्योंकि सबकी सब प्रकार से तुम सदा बनाते आये हो अब मेरी भी सुधारिये। मेरे साथ रहने से संसार हँसेगा क्या इस डरसे डरते हो जिस सीधे स्वभाव और मनसे निषाद और बानरों को मित्र किया उसी स्वभाव पर चलिये, दोषी हूं तोभी आपही का हूं तुलसी को मत भूलिये टूटाभी हाथ गले पड़ता है व फूटी भी आंख में पीड़ा होने से उपचार किया जाता है ॥ २७२ ॥

तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो। सुनहु राम बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूं हितु मेरो ॥ अगुण अलायक आलसी जानि अघन अनेरो। स्वारथ के

साथिन्ह तज्यो तिजरा कैसो टोटक औचट उलटि न हेरो ॥ भक्तिहीन वेद बाहिरो लखि कलि मल घेरो । देवनिहूं देव परिहर्यो अन्याय न तिनको हौं अपराधो सब केरो ॥ नाम को ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो । जगत विदित बात है परी समझिये धौं अपने लोक की वेद बड़ेरो ॥ ह्वै है जब तब तुमहिं ते तुलसी को भलेरो । दीन दिनहूं दिन बिगरि है बलि जाउँ बिलंब किये अपनाइये सबेरो ॥२७३॥

तुम मनको मैला मत करो आंखे मत फेरो । हे रामजी ! सुनिये आप के बिना लोक परलोक मे मेरा कोई हितैषी नहीं है । गुणहीन नालायक आलसी मन्द और पापी जान दूर कर दिया गया स्वार्थ के साथियों ने साथ छोड़ दिया । जैसे तिजारी काट डाला, कि जिसे धोखे से भी फिर कर नहीं देखा है । भक्ति हीन वेद से वाहिष्कृत देख कलियुग के पापों ने घेर लिया हे प्रभु ! देवताओं ने भी छोड़ दिया उनका अन्याय नहीं मैं ही सबका अपराधी हूं । अब नामकी आड़ में पेट भरता परन्तु कहलाता तुम्हारा सेवक यह बात संसार में प्रसिद्ध होगई अपनेही तक समझ तो लोक बड़ा या वेद, तुलसी की भलाई जब होगी तब तुम्हीं से बलि जाऊं विलम्ब किये इससे यह दीन अनाथ प्रति-दिन बिगड़ेगा इसे शीघ्र तुम अपना करलो ॥२७३॥

तुम तजि हौ कासों कहौं और को हितु मेरे । दीन-बन्धु सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ॥ बहुत पतित भवनिधि तरे तरनी बिनु बेरे । कृपा कोप सति-भावहुँ धोखेहुँ तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ॥ जो चितवनि सौंधी लगे चितइये सबेरे । तुलसिदास अपनाइये कीजै न ढोल अब जीवन अवधि अतिनेरे ॥२७४॥

तुमको छोड़ मैं किससे कहूं मेरा हित दूसरा कौन है । हे राम!

सेवक सखा अनाथों पर स्वभाव से ही दया किसको है। दया से क्रोध से सच्चे भाव से धोखे से भी आपकी तिरछी निगाह से तुम्हारेही अनेकों पतित विना नाव बेड़ा के संसार सागर से पार होगये। इससे जो दृष्टि सीधे लगे उससे शीघ्र देखिये, तुलसीदास को अपनाइये अब बिलम्ब नहीं कीजिये जीवन का अन्त अति नगीच है ॥२७४॥

जाऊं कहां ठौर है कहां देव दुखित दीन को। को कृपालु स्वामी साखिो राखे शरणागत सब अंग बल विहीन को॥ गुणिहि गुणहि साहब लहे सेवा समीचीन को अधम अगुण आलसिन्ह को पालिबो फबि आयो रघुनायक न नवीन को॥ मुखके कहा कहैं। विदित है जी को प्रभु प्रवीन को। तिहुं काल तिहुं लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को॥२७५॥

हे प्रभु! दीन अनाथ को कहां जगह है कहां जाऊं। प्रभु के समान दयालु कौन है। जो कि सब प्रकार से अंगहीन शरणागत में रखेगा। गुणवानों का गुण देखकर राजा लोग रखते और उनकी सेवा से भलाई पाते परन्तु नीचे गुण हीन आलसी का पालन करना तो श्री रामजी को ही शोभा है। नया कौन है मुख से क्या कहूं बुद्धिमान् प्रभु को चित्तकी वृत्ति मालूम है। तीनों काल और तीनों लोक में तुलसी के समान मलीन मनवालों के एक आपही का भरोसा है ॥२७५॥

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूं। है दयालु दुनि दश दिशा दुख दोपदलन क्षम कियो न संभाषण काहूं॥ त्वचा तजत कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूं। काहे को रोपदोप काहिधौं मेरेही अभाग मोसों सकुचत सब छुइ छांहू॥ दुखित देखि सन्तन कह्यो शोचै

जनि मन माहूं । तोसे पशु पामर पातकी परिहरे न शरण गये रघुवर और निबाहूं ॥ तुलसी तिहारो भये भयो सुख प्रीति प्रतीति विनाहूं । नामकी महिमा शील नाथ को मेरो भलो विलोक अबते सकुचाहु सिहाहूं ॥२७६॥

दांत काढ़ पैरों पड़ द्वार द्वार दीनता कही, दुःख दोषों को हरने में समर्थ संसार सभी दयालु है तो भी किसी ने बात नहीं किया। जैसे सर्प केचुल छोड़ता है माता पिता ने भी वैसेही छोड़ दिया इसमें रोषही क्या और दोष किसका सब मेरे ही अभाग्य हैं मुझसे सब छाया छूतेही संकोच हुआ। साधुओं ने दुःखित देखकर कहा कि चिन्ता मत कर तुझसे भी नीच पशु और पापियों को रामकी ओर शरण जाने से निर्वाह होता है वे हटाते नहीं तो तुलसी तुम्हारा होके सुखी हुआ कि प्रेम और विश्वास के विना नाम का माहात्म्य प्रभुका स्वभाव और अपनी भलाई देख अब लज्जित होकर सकुचाता हूं ॥२७६॥

कहा न कियो कहां न गयो शीश काहि न नायों। राम रावरो बिनु भये जन जन्मि जन्मि जग दुख दशहू दिशि पायों ॥ आश विवश खास दास ह्वै नीच प्रभुति जनायों। हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बारबार परी न छार मुंह बायों ॥ अशन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायों। महिमा अति प्रिय प्राणते तजि खोलि खलनि आगे खिन खिन पेट खलायों ॥ नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायों। सांच कहौं नाच कौनसो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायों ॥ श्रवण नयन मन मग लगे सब थल पतितायों। मूंड़ मारि हिय हारिकै हित हेरि हहरि अब चरणशरण तकि आयों ॥ दशरथ के समरथ

तुम्ही त्रिभुवन यश गायो। तुलसी नमत अवलोकिये बलि बांह बोलदै बिरदावली बुलायो ॥२७७॥

क्या नहीं किया कहां नहीं गया किसको शिर नहीं झुकाया हे रामजी ! बिना आपका सेवक हुए संसार में जन्म लेके चारों ओर दुःखही पाये। आशा से ग्रस्त खास दास होकर भी नीच राजाओं को हाहाकार दीनता सुनाई बार बार द्वार पर मुंह फैलाया परन्तु उसमें किनका भी न पड़ा। बिना भोजन वस्त्र के पागल के समान जिधर तिधर उठ दौड़ा और प्राणों से भी अति प्यारी महिमा छोड़ मूर्खों के आगे खोल कर क्षण क्षण में पेट खलाया परन्तु हे प्रभो! हाथ कुछ भी न लगा। लालच से ललचाता ही रहा। सच कहता हूं कौन सी नाच है जो कि नीच लोभ ने मुझ निर्लेज्ज को न नचाया हो। कान आंख मन के मार्ग में लग कर सब जगह राजाओं की परीक्षा किये। सिर पीट और चित्त से हारमान कर व्याकुलता से सब प्रकार की हित देख सीधे आपके चरण शरण में आया हूं। हे दशरथ के ! तुमही सब प्रकार से समर्थ हो तुम्हारा यश तीनों लोक में विख्यात है झुके हुए तुलसी को देखो तुम्हारी कीर्ति को बलि जाऊं बांह बोल देकर बुलाया है ॥२७७॥

राम राय बिनु रावरे मेरे को हितू सांचो। स्वामी सहित सबसों कहों सुनि गुणि विशेषि कोउ रेख दूसरी खांचो ॥ देह जीव योग के सखा मृषा टांचन टांचो। किये बिचार सारकदली ज्यों मणिकनक संग लघु लसत बीच बीच कांचो ॥ बिनयपत्रिका दीन की बापु आपु ही बांचो। हिये हेरि तुलसी लिखी सो स्वभाव सही करि बहुरि पूछियेहि पांचो ॥ २७८ ॥

हे राजाराम ! बिना आपके मेरा सच्चा हितकारी कौन है प्रभुके सहित सबसे कहता हूं सुनके अधिक सोचिये कोई हो तो

दूसरी रेखा खींचो। देह और जीव के संयोग के मित्र झूठे टांकी से जुड़े हैं विचार करने से केले के गूदा के समान झूठे हैं। मणि और सोने के संग नीच कांचभी बीच बीच चमकता है मुझ अनाथ की यह विनयपत्रिका है पिता! आपही पढ़िये। चित्तसे खोजकर तुलसी ने लिखा है उसे स्वाभाविक ठीक करके फिर पंचों से पूछियेगा॥ २७८॥

पवनसुवन रिपुदवन भरत लाल लषण दीन की। निज निज अवसर सुधि किये बलि जाऊँ दास आस पूजि है खास खीन की॥ राजद्वार भलो सब कहै साधु समीचीन की। सुकृत सुयश साहब कृपा स्वारथ परमारथ गति भये गति विहीन की॥ समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की। प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपाlुहि परमिति पराधीन की॥ २७९॥

हे हनुमान! शत्रुघ्न! भरत! लक्ष्मण प्यारे! दीन की बात अपने अपने समय पर सुधि किये रखना बलि जाऊं दासकी आशा घट रही है खासकर पूरी होगी। राजद्वार में अच्छे सज्जनोंकी भलाई तो सभी कहते हैं परन्तु विना पहुंचवाले की पहुंच हुए पुण्य कीर्ति प्रभुकी कृपा स्वार्थ परमार्थ सभी होता है पापी तुलसी की बात समय पाकर संभाल के सुधारना। भक्त रक्षक राम को मेरी पराधिनता की हद और प्रेम की रीति समझा देना॥ २७९॥

मारुति मन रुचि भरत की लखि लषण कही है। कलिकालहू नाथनामसों प्रतीति प्रीतिएककिंकरकोनिबही है॥ सकल सभा सुनि लै उठि जानी रीति रही है। कृपा कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीबको साहब बांह गही है॥

विहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूं लही है । मुदितमाथ-नावतबनी तुलसीअनाथकी परी रघुनाथ हाथ सही है ॥ २८० ॥

हनुमान् और भरत के मनकी अभिलाषा देख लक्ष्मण जी ने कह दिया कि हे प्रभु ! कलियुग में भी नाम में विश्वास है, इस विश्वास की प्रीति से एक सेवक की निभाई यह सुन के सब सभा बोल उठी और मेरी रीत रह गई गरीबनिवाज की कृपा हुई कि देखतेही प्रभुने गरीब का हाथ पकड़ लिया । राम ने हंस के कहा सत्य है मैं भी सुधि पाई है, अब तुलसी प्रसन्न हो कर प्रणाम करता है कि अनाथ की बनाई विनयपत्रिका में रामके हाथ से सही (निशानी) पड़ी है ॥ यह विनयपत्रिका के सच्ची होने के बाबत् तो स्वयं भगवान के हस्ताक्षर हो गये हैं और इसी के प्रभाव से भगवान ने प्रसन्न होकर तुलसी को कृतार्थ कर दिया यह तुलसीदास के अन्तःकरण की सत्य भावना हुई ॥ २८० ॥

इष्टदेव गुरुदेव को चरण युगल शिरनाई ।
सकल लोक उपकार हित रामेश्वर रचि पाई ॥
भूवसु अङ्क अग्नि में सित फाल्गुन शुभ मास ।
गुरुदिन अरु तिथि अष्टमी भाषा विनय विकास ॥

* इति *